

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी-टीका-सहित)



रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या

काल न०

खण्ड

पढ़ना चाहिये ?

पुस्तक है।

। से प्राचीन पुस्तक है।

विष्णु, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि
तम गुणांशलो है, सबका वेदमें बड़ा है।

प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-

... धर्म, यज्ञ-रहस्य आदि आदिको दर्पण-
की तरह दिखाता है।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक
मुसलमान कुरानको, गाढ़ और सुदाकी विमल बाणी जानकर
अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश समझ-
कर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका, इङ्ग्लैण्ड आदि,
के विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें
एक भी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं। इसी अभावकी पूर्तिके लिये
हमने "वैदिकपुस्तकमाला" द्वारा सरल सरल हिन्दीमें चारों वेदोंका
अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका द्वितीय पुष्प आपके
सामने है। इसका मूल्य केवल सात भर २) ५० रु० रखा गया है;
क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारतवासि वनैलीराज्यके अधीश्वर हैं।

॥) देकर 'वैदिक-पुस्तकमाला' के भागी ग्राहक बननेवालोंकी आगे
कभी भी डाकग्रन्थ नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते ही,
सूचना देकर, बी० पी० से, भेज दी जायगी।

बैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुतलामगंज, ...

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

द्वितीय अष्टक

टीकाकार

प० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपूजा", "राजर्षि प्रह्लाद", "महामती मन्त्रालया" आदिके लेखक,
"मेनापति", "विश्वदूत" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के
जन्मदाता, "दक्षिण अर्धाकन सनातनधर्म-महामण्डल" (हरबन, नेटाल) के आजीवन
सभापति, "गंगा" के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महापदेशक)

- श्री ॥

प० गौरीनाथ झा व्याकरणनौर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनेरो राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द
मिश्र प्रदातृ तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला" के
अन्यतम जन्मदाता और सम्पादक)

प्रकाशक

प० गौरीनाथ झा व्याकरणनौर्थ,

संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ, सुलतानगंज, भागलपुर

मूल्य २०

ज्येष्ठ, १९८३ विक्रमाय

{ प्रथम संस्करण

१९७७

ऋग्वेद-संहिता



—ॐ नमो नमो—

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी०

॥ समर्पण ॥

जिनका हिन्दी-साहित्य-प्रेम भारत-प्रसिद्ध है, जो वैदिक धर्मके अनन्य
भक्त हैं, जिनकी विद्वत्ता और लेखनकलाकी प्रशंसा
शत मुखसे की जाती है, जिनकी राजशासन-
निपुणता, सरलता, दानपरायणता और
सृजना-प्रवीणता आदर्श और
अनुकरणीय हैं, उन

— ❦ —

— बनेलो-नरेश, ब्राह्मण-रत्न —

राजा कीर्त्यानिन्द सिंह बहादुर बी० ए०

— ❦ —

कमनीय कर कमलोंमें

— ❦ सादर समर्पित ❦ —

— ❦ —

— रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा



॥ प्रेमोपहार ॥



प्राक् कथन

संसारके प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ तीन गिने जाते हैं—वेद, चीनियोंका शुकिंग और पारसियोंको गाथाएँ अथवा अवस्ता। प्रबल विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने इन तीनोंका यथेष्ट मन्थन किया है। इनपर, उन्होंने, लाखों रुपये खर्च किये हैं, कितने ही आलोचनाएँ—प्रत्यालोचनाएँ और भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। कह्योंने तो एक-एक शब्दका विश्लेषण और निर्वाचन करनेमें महीनों बिना डाले हैं! इन ग्रन्थोंके बलपर उन्होंने तुलनात्मक देवता-विज्ञान और भाषा-विज्ञान नामक नवीन शास्त्रोंको आविष्कृत अथवा पुष्पित किया है।

मबकी तो नहीं; परन्तु अधिकांश विद्वानोंका राय है कि, उक्त तीनोंमें वेद सबसे प्राचीन हैं। वेदोंमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। मानवजातिके प्राथमिक समाजकी नाड़ी परखनेके लिये ऋग्वेदसे बढ़कर कोई घेरा नहीं है। मनुष्यका क्रमिक-विकास-रहस्य जाननेके लिये ऋग्वेद कुञ्जी है। संसारकी सर्व-प्रथम विजेता जाति (आर्यजाति, जिसे यूरोपियन भी अपना पूर्वज कहते हैं) को तो सारी युद्धविद्या, निखिल धर्म-कर्म, आचार-विचार और सभ्यता-संस्कृतिका ऋग्वेद प्रामाणिक कोष ही माना जाता है। बल्कि संसारका सच्चा आदिम इतिहास जाननेके लिये ऋग्वेद दीप-स्तम्भ है।

ये ही सब कारण हैं, जिनसे प्रेरित होकर प्रचण्ड विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने ऋग्वेदके लिये, उसका तत्त्व जाननेके लिये, समय, श्रम, शक्ति और द्रव्यका अपार और सार्थक व्यय किया है। राय और ब्रूमफिल्ड जैसे कितने ही विद्वानोंने तो वेद-परिशोधनमें अपना जीवन ही खपा दिया था! यूरोपियनोंके सिवा संसारके अन्य देशों और भारतके भी कितने ही विद्वान्, उक्त कारणोंसे ही, ऋग्वेदके सामने सिर नवाते हैं। परन्तु हिन्दुओंके लिये इन कारणोंके सिवा एक और भी कारण है, जिसके लिये हिन्दू वेदोंको प्राणके समान मानते हैं। वेद हमारे धर्म-ग्रन्थ भी हैं। हमारे दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि इन वेदोंको व्याख्याएँ हैं—“वेदा मूलम्”—मूल धर्म-ग्रन्थ वेद ही हैं। इस नाते भी जो श्रद्धा ईसाइयों और मुसलमानोंकी बाइबिल और कुरानपर है, वेदोंपर वह प्रत्येक हिन्दूकी है। परन्तु वेदोंकी बराबरी अन्य ग्रन्थोंसे नहीं की जा सकती; क्योंकि वेद मूल धर्म-ग्रन्थ होनेके सिवा विश्वकी सर्व-श्रेष्ठ आर्यजातिका वास्तविक इतिहास भी हैं। यही कारण है कि, मीमांसा, सांख्य आदि जैसे अनीश्वरवादी शास्त्र भी, अपनी अछछेछाँ श्रद्धाके कारण, वेदोंको अपौरुषेय और नित्यतक मानते हैं। धर्म-शास्त्र-ग्रन्थोंमें तो वेदज्ञानशून्य हिन्दूका सामाजिक बहिष्कारतक लिखा हुआ है। प्रत्येक द्विजके लिये वेदाध्ययन अनिवार्य माना गया है।

शोक है कि, ऐसे अमूल्य ग्रन्थके ज्ञानसे हम वञ्चित हो रहे हैं। यही कारण है कि, हम हर तरहसे परावर्त्तनी, दूरिद ओर दुःखी बन गये हैं। क्या न रहे, वेदके अध्ययन और प्रचारकी ओरसे हमारी यह उदासीनता हमें रसातल भेज देगी।

१।१६४।४४—क्षौरकर्मकर्ताकी चर्चा ।

१।१६४।४५—ब्राह्मणका उल्लेख ।

१।१६४—यह समस्त सूक्त पढ़ने योग्य है । यह सूक्त अथर्ववेदमें भी है । इस सूक्तकेसे विचार दशम मण्डलमें ही अधिक हैं ।

१।१९१।—१४ और १५ में मयूर और नकुलका उल्लेख ।

२।२।१०—चार वर्णोंका उल्लेख । १।७।९ में भी चारो वर्णोंका उल्लेख है ।

२।३।६—झिपोंका कपड़े बुनना । दो झिपों ताना-बाना भी करता था ।

२।७।१—भारत शब्दका उल्लेख ।

२।११।१७—दादीमें लगे सोमरसको श्राद्धना ।

२।१२।१२—सूर्यका मात किरणों या गोंका चर्चा ।

२।१५।५—पुरुषा, इन्द्रधुनि अथवा इरावता नदीका उल्लेख ।

२।१५।५—अन्धे और लंगड़े परावृज ऋषिका कई कन्याओंके साथ विवाह । १।११२।८ भी देखिये ।

२।१७।७—आजाघन अविवाहिता कन्याका पितृसम्पत्तिका अधिकारिणा बनना ।

२।१९।५—एतश ऋषिका चर्चा । १।६१।१५ भी देखिये ।

२।२०।७—काले रंगका द्रविड़जातिका उल्लेख ।

२।२३।२—वृत्र असुरके लिये देव शब्दका प्रयोग । १।३२।१२ भी देखिये ।

२।२३।३—१७—कोलों (आदि द्रविड़ों) और द्रविड़ोंके उपद्रव तथा क्षात्रताका उल्लेख ।

२।२७।१—छ सूर्यका नाम—द्वादशका नहीं । १।१४।३ भी देखिये ।

२।२७।१—सौ वर्षकी परमायु ।

२।२८।९—ऋण-प्रस्तका परिताप ।

२।२७—२९—दोनों सूक्त भगवद्गीताके लिये पठनाय हैं ।

२।२९।१—गुप्त-पुसविनी स्त्रोका उल्लेख ।

२।३०।८—असुर-पुरोहित क्षण्डामर्कका उल्लेख ।

२।३२।४—कपड़े पर बेल-झूटे काढ़ना ।

२।३४।३—मोनेके मुकुट या शिरस्त्राणका वर्णन ।

२।३४।३—क्षोणी (धीणा-विशेष) नामके बाजेका उल्लेख ।

२।३५।६—इन्द्रके उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेका उल्लेख ।

२।३८।४—कपड़े बुननेवाला स्त्रियाँ ।

२।३९।३—चक्रवाकका उल्लेख ।

२।३९।४—कवचका उल्लेख । १।२५।१३ भी देखिये ।

२।४१।५—सदसू स्तम्भवाले भवनका उल्लेख ।

२।४२—४३—सूक्तोंका देवता शकुनि या कपिशूल-रूपा इन्द्र हैं । पक्षियोंका अशुभ छानि सुननेपर इन दोनों सूक्तोंका जप किया जाता है ।

३।१।१०—स्वर्ग और पृथिवीके पति सूर्यदेव हैं ; इसलिये छायापृथिवी सपत्नी कहे जाते हैं ।

३।४।८—भारता और सारस्वत शब्दोंका उल्लेख ।

३।६।९—तेतास देवोंका उल्लेख । १।३४।११ और १।४५।२ भी देखिये ।



सायणाचार्यके मतानुसार द्वितीय अष्टकमें पौराणिक कथाएँ

द्वितीय अष्टकमें प्रथम मण्डलके १२० से १९१ सूक्त, द्वितीय मण्डलके सब (४३) सूक्त और तृतीय मण्डलके ६ सूक्त तक हैं। हर एक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मंत्रकी संख्याएँ दी गयी हैं।

१ कृष्णरोग-प्रस्ता वीषा	११२२२।५
२ इष्टावध और इष्टरश्मि नामक राजाकी शत्रुतारक नेताओं (वरुणादि) से शत्रुता	११२२२।१३
३ महाभारि राजाके और अयवस राजाके पुत्रोंका उपद्रव	११२२२।१५
४ कक्षीवानका विवाह	११२२५।१
५ स्वनय राजा द्वारा कक्षीवानको प्रदत्त दहेज	११२२६।३-५
६ लोमशाके साथ स्वनयका सम्भोग	११२२६।६-७
७ शम्बरके विनाशके लिये इन्द्रका विषादासके लिये साहाय्य	११२३०।७
८ अंशुमतीके तटपर इन्द्रने कृष्णाक्षरकी काली चमड़ी उधेड़ी	११२३०।८
९ उंटपर चढ़कर युद्ध करना	११२३८।२
१० ऋषियोंका दीर्घ जीवन	११२३९।९
११ गम्भीणी दीर्घतमाकी माताके साथ वृद्धस्पतिका सम्भोग	११२४७।३
१२ गतहव्यकी दुग्धशून्या गौका दुग्धवती होना	११२५३।३
१३ घामनावतार	११२५४।१
१४ अश्विनाकुमारोंका औषध-ज्ञान	११२५७।६
१५ आनार्यों द्वारा एक वृद्धकी बोटी-बोटी काटा जाना	११२५८।५ और ११२५९।२
१६ सुधन्वाके पुत्रोंद्वारा चममका बनाया जाना	११२६१।१
१७ अश्वमांसका उपयोग	११२६२ पूरा सूक्त
१८ इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जक संलाप	११२६५ पूरा सूक्त
१९ मरुद्गणकी शृंगार-प्रियता	११२६६।१०
२० पृथिवी द्वारा महासंधामके लिये मरुद्गणका प्रसूत होना	११२६८।९
२१ इन्द्र द्वारा अत्यन्त बड़ सात पुरियोंका तोड़ा जाना	११२७४।२

२२ दुर्योनि राजाके लिये इन्द्र द्वारा कुयवका वध	११२७४।७
२३ अगस्त्य और लोपामुद्राका कामपूण सम्भाषण	११२७९ पूरा सूक्त
२४ दूषते दुष्प तुषपुत्रके लिये अश्विनीकुमारोंने समुद्रमें मौका दौड़ाया था	११२८२।५-६
२५ विषाक्त सरिसृपगण	११२९१ पूरा सूक्त
२६ इन्द्रने त्रितके बन्धुत्वमें त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया	११२९१।९
२७ इन्द्रका दस सौ घोड़ोंपर प्रभुत्व। दम्भोति ऋषिका दस्युओं द्वारा त्राण पाना	११२९१।९
२८ निन्यान्वे बाहुबाला उरण	११२९४।४
२९ शुष्णका स्कन्ध-हीन होकर मरना	११२९५।९
३० चर्वीके सौ हजार पुत्र	११२९६।६
३१ इन्द्रने सिन्धुको उत्तरबाही किया	११२९६।६
३२ अन्धे और लंगड़े परावृजके विवाहके लिये कन्याएँ आर्थी; पर परावृजको इस प्रकारका देखकर भाग गया; पीछे परावृज भी दौड़े - इसी क्षण इन्द्रकी कृपासे वे सुन्दर अङ्गवाले हो गये	११२९७।७
३३ इन्द्रने सुमुर्षि और धुनि अश्वरोंको दीर्घ-निद्रित करके विनष्ट किया	११२९९।९
३४ इन्द्र द्वारा पर्वतोंका परास्त होना	११३०५।९
३५ अनेकानेक घोड़ोंवाले इन्द्र	११३०५।५-६
३६ अगिरा लोगोंको गो-प्राप्ति	११३०५।५
३७ गौओंका अन्वेषण करते समय अगिरा लोगोंके विकट मार्ग	११३०६।७-७
३८ रुद्रदेवका दवा तैयार करना	११३१७।७
३९ रुद्र द्वारा पृथ्वीके उदरसे मरुतोंका जन्म	११३१८।८
४० रुद्र द्वारा पृथ्वीके अधोभागका दोहन	११३१८।१०
४१ समुद्रसे उच्छ्वःश्रवाका जन्म	११३१९।६
४२ स्त्री द्वारा वस्त्रका धुना जाना	११३२०।४
४३ पक्षियों द्वारा शकुन	११३२०।३
४४ जन्मके साथ ही अग्निने सुवर्णोंकी प्रकाशित किया	११३२०।७



देव-विवरण

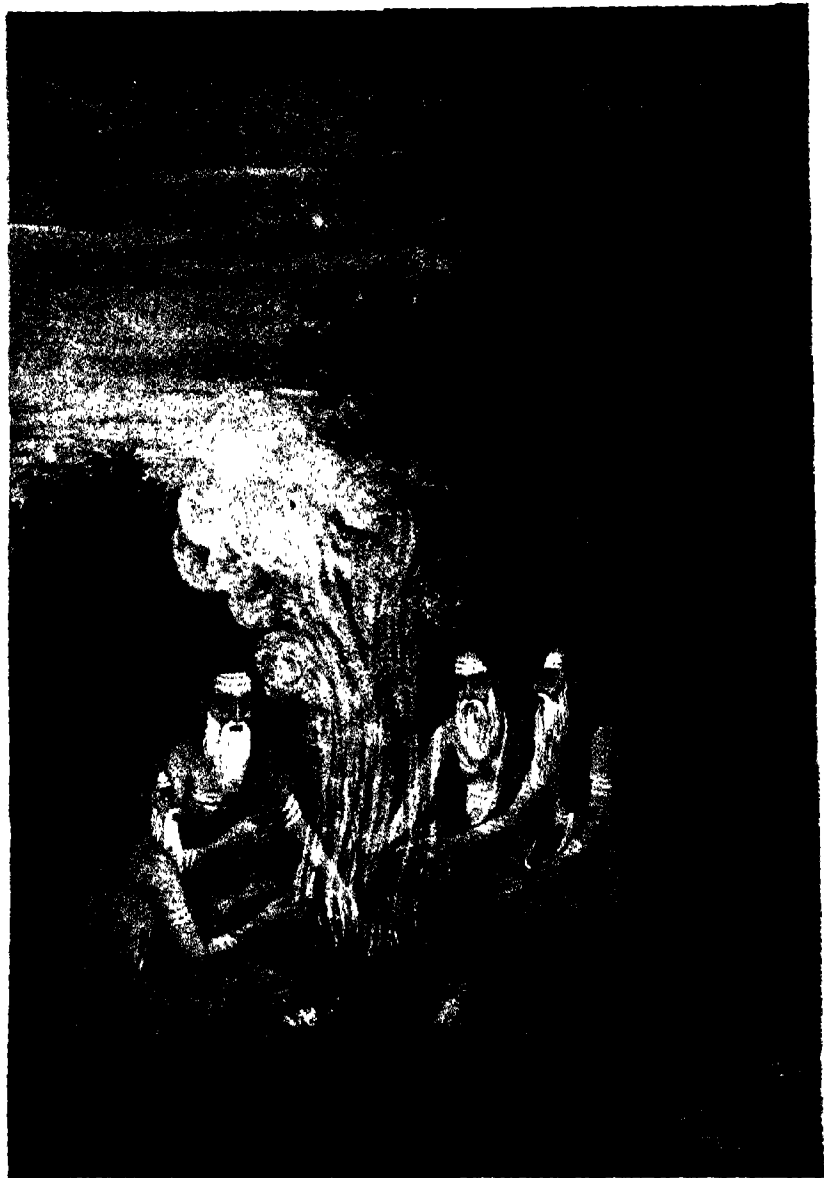
इला (भू-देवी)	११२८१	अमुला	११८६१०
	११४२१९	इन्द्र और त्वष्टाकी वाद्यता २।१११९। तैत्तिरीय संहिता (२।५।१)	
	११८६११	और वसुध आह्वान (१।६।३)	
	११८८१८	में भी यह कहा है।	
	२।११११		
आसी देवता	३।११३	राका, सिनीवालो, गुंगु	२।३२।५-८
	३।४।८	मस्तोका बाइन पृथ्वी वा	
	११४४ सूक्त	बिन्दु-चिह्नित मृग	२।३४।३ । प्रथम अष्टक (१।३।२)
श्रित और श्रैतन	१।५८।४-५ । प्रथम अष्टक		भी देखिये।
	(१।५८।५) भी देखिये।		
रोदसी (विद्युद्देवता)	१।१६।७	गरुत्मान् (गरुड़)	१।१६।४६
इन्द्रके साथ मरुद्गण	१।७।४	अधर	१।२२।१
अद्विष्टन [रुद्र] वा अष्टि	१।१८६।५ । रुद्रके सम्बन्धमें		(१।१३९ और
	१।४३ सूक्त देखिये।	३३ देवता	(३।१।५
	२।३।१६		

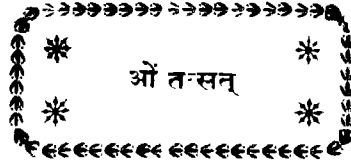
वैदिकपुस्तकमाला की नियमावली

- (१) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-बहिर्न चार्ग वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायेंगे।
- (२) १) भंजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और "पांगा" के पाहकोंको किसी भी पुस्तक पर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा।
- (३) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा।
- (४) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वो० पो० से, मंजी जायेंगी।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णागढ़, मुलतानगंज, भागलपुर

ऋग्वेद-संहिता



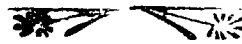


ऋग्वेद-संहिता

(द्वितीय टंक और द्विपनियोंसे संयुक्त)



२ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १८ अनुवाक ।



१२२ सूक्त । विश्वदेव देवता । यहाँसे १२५ सूक्त तक कक्षीवान् ऋषि और त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्रवः पन्तं यद्मन्योन्यो यत्रां रद्राय मंहुषे मरध्वम् ।

दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषु येन मनतो रोदर्याः ॥१॥

[क्रोध-विरहित ऋषिोंको, तुम लोग कर्म फलदाता रुद्रदेवको पालनशील और यज्ञ-साधन वृन्त अर्पण करो । मैं भी उन पृथुलोकके अक्षर (देव) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवीके मध्यस्थवासी मरुद्वगणकी स्तुति करता हूँ । जैसे तूणीर द्वारा यज्ञोंको निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर महर्षिके द्वारा यज्ञोंको निरस्त करते हैं ।

पत्नीव पूर्वहतिं वावृधध्या उपासानत्ता पुरुधा विदाने ।
 स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्व श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२॥
 ममस्तु नः परिज्मावसर्हा ममस्तु वातो अपां वृषणवान् ।
 शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३॥
 उतत्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
 प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४॥
 आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै प्रापेव शंसमर्जुनस्य नशे ।
 प्र वः पूष्णे दावनअँ अच्छा वोक्षेय वसुतामिमघेः ॥५॥
 श्रुतं मे मित्रावरुणात्वेमोत श्रुतं रुदने विश्वतः सीम् ।
 श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुश्रुवा सिन्धुरग्निः ॥६॥
 स्तुपे सा वां वरुण मित्र रातिर्गोः शता पृक्षशमेपु पजे ।
 श्रुतरथे प्रियगथे दधानाः श्वयः पुष्टि निरुध्वानासो अरमन ॥७॥

२ जैसे स्तोमीक प्रथम आह्वानपर स्त्री शीघ्र आती है, वैसे ही अहोरात्र-देवता नादादि स्तुतियों द्वारा स्तुत होकर हमारे प्रथम आह्वानपर शीघ्र आवे। और जिन सूर्यकी तरफ उस देवी हिरण्यवर्ण किरणोंमें युक्त होकर और विशाल रूप धारण कर सूर्यकी शोभासे शोभन लगे।

३ वसनयोग्य और सवेतोगामी सूर्य हमारी प्रसन्नता बढ़ावे। वाग्नि-वर्षक वायु हमारा आनन्द बढ़ावे। इन्द्र और पर्वत (मेघ) हमारी बुद्धिको बढ़ावे। विभवेदेवता हमें पौष्टिकता देनेकी चेष्टा करो।

४ मैं उशिजका पुत्र हूँ। श्रुतिबोध, मेरे मित्र मित्रावरुण और स्तुति-भाजक अग्नि-कुमारोंको, संसारको प्रकाशित करनेवाली उषाके समय, बुलाओ। जलक नामक पवित्रता स्तुति करो तथा मेरे सहस्र स्तोता मनुष्योंके मानव-स्थानीय अहोरात्र-देवताओंको भी स्तुति करो।

५ देवता, मैं उशिजका पुत्र कभीधान हूँ। मैं तुम्हारे सम्बन्धमें कहने योग्य स्तोत्रका, आह्वानके लिये, पठ करता हूँ। अश्विद्वय, जैसे अपने शरीरगत श्वेतवर्ण त्वचा-रोगके चिकित्से लिये घोंघा नामक ब्रह्मवादिनी महिलाने तुम्हारी स्तुति की, वैसे ही मैं भी स्तुति करता हूँ। देवो, फलदाता पूषा देवकी भी स्तुति करता हूँ और अग्नि-सम्बन्धी धनकी भी स्तुति करता हूँ।

६ मित्र और वरुण, मेरा आह्वान सुनो। यज्ञ-सुहृदों समस्त आह्वान सुनो। प्रसिद्ध धनशाली जलाभिमानि देव खेतोंमें जल बरसाकर हमारा आह्वान सुनो।

७ मित्र और वरुण, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जिस स्तोत्रसे अन्नका नियमन होता है, वही स्तोत्र पढ़ा जाता है; इसलिये वक्षीवान् (श्रुति) को अपनी प्रसिद्धि गी दो। प्रसिद्ध और सुन्दर रथमें युक्त वक्षीवान्के प्रति प्रसन्न होकर तुम लोग आओ तथा आकर मुझे पोषण करो।

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सत्ता सनेम नहुषः सुवीगः ।
 जनो यः पञ्चेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८॥
 जनो यो मित्रावरुणावभिधृगपो न वां सुनीत्यक्षण्याधुक् ।
 स्वयं स यक्ष्मं हृदये निधत्त आप यदी होत्राभिर्भृतावा ॥९॥
 स ब्राधतो नहुषो दंसुतूतः शर्धस्नरो नरां गूर्तश्रवाः ।
 विसृष्टरातिर्बानि बाह्वमृन्वा विश्वासु पृतसु सधमिच्छुरः ॥१०॥
 अधगमन्ता नहुषो हवं सूरिः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
 नभो जुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्मणे महिना रथवते ॥११॥
 एतं शर्द्धं धाम यस्य मूर्गेरिण्यवोवन् दशतयस्य नंशे ।
 द्युस्त्रानि येषु वसुतातो रागन् विश्वे सन्तन्तु प्रभृधेषु पाजम् ॥१२॥
 मन्द्रामहे दशतयस्य धामेर्द्विर्यन् पञ्च विध्रतो यन्त्यन्ता ।
 किमिष्टाश्च इष्टगश्मिरेत ईशानासनामस्तरुप ऋज्वेन नृन् ॥१३॥

८ मैं महान् घनबाले देवोंके धनकी स्तुति करता हूँ । हम मनुष्य हैं; इसलिये शोभन पुनः-पौन आदिसे संयुक्त होकर पुनः पुनः धनका संभोग करें । जो देव अङ्गिरा गोमर्ते उत्पन्न कक्षीवान्के लिये अन्न प्रदान करते हैं, अश्व और रथ देते हैं, उनकी स्तुति करता हूँ ।

९ हे मित्र और वरुण, जो तुम्हारा दोही है, जो किसी तरह भी तुम्हारा दोह करता है, जो तुम्हारे लिये सोम रसका अभिषेक नहीं करता, वह अपने हृदयमें यक्षा राग धारण करता है । जो व्यक्ति यज्ञ करता और स्तुति-वचनोंसे सोमरस तैयार करता है—

१० वह व्यक्ति ज्ञान्तर अश्व प्राप्त करता, मनुष्योंको पालत करता और समान मनुष्योंमें अन्नके लिये प्रसिद्ध होता है । अतिथियोंको घन देता है और सारे युद्धोंमें हिंसक मनुष्योंकी ओर निःशङ्क होकर सदा जाता है ।

११ सर्वाधिपति, आनन्द-वर्द्धक, तुम मरण-रहित स्तोत्रकारी मनुष्यके (अर्थात् मेरे) आत्मानको क्षण और आओ । तुम आकाशव्यापी हो । तुम अन्य-रक्षक-रहित रथसे संयुक्त यजमानकी समृद्धिके साधन इष्ट्यकी प्रशंसा करना पसन्द करते हो ।

१२ “जिस यजमानके दसो इन्द्रियोंके बलकारक अन्नकी प्राप्तिके लिये हम आये हैं, उसे यह मनुष्य-विजेता बल दिया”—देवोंने ऐसा कहा । इन देवोंका प्रकाशमान अन्न और घन अत्यन्त शोभा पाता है । उत्तम यज्ञमें देवता लोग अन्न दान करें ।

१३ चूँकि इन्द्रियाँ दस प्रकारकी हैं; इसलिये श्रुतिद्विक लोग, दस अवयवोंसे युक्त अन्न धारण करके गमन करते हैं । हम विश्वदेवोंकी स्तुति करते हैं । इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामके राजा शत्रुतारक नेताओं (धृष्ट्यादि) का क्या कर सकते हैं ।

रिश्यकर्णं मणिप्रीवमर्णस्तन्नो विश्वेऽरिस्थन्तु देवाः ।
 अर्यो गिः सद्य आ जग्मुषीरोन्वाश्च ननुमयेष्टस्मे ॥१४॥
 चत्वारो मा मशर्शास्य शिष्वस्त्रयो राज्ञ अ ययसस्य जिष्णोः ।
 रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगमस्तिः सूरौ नादाद्यौत् ॥१५॥



१२३ सूक्त उषा देवता ।

पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अभुतासो अस्थुः ।
 कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चित्तपन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥
 पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादवोषि जयन्तो वाजं बृहती सनुत्री ।
 उक्तावरुण्यदुवतिः पुनर्भूरीषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥
 ददद्य भारं विमजासि नृभ्य उषो देवि मर्यात्रा सुजाते ।
 देवो नो अत्र सविता दक्षुना अनन्तासो वोचति सूर्याय ॥३॥
 गृहं गृहमहना या यच्छा दिर्दिदेव अधिनामा दधाना ।
 सिपासन्ती द्योतनाशशदाभादग्रमग्रमिद्वजने वसूनाम् ॥४॥

१४ विश्वदेव हमें दिश्यकर्णों, मणिप्रीव और रूपवान् पुत्र प्रदान करें । अष्ट विश्वदेवगण सद्योनिर्गत स्तुति और हव्यकी आर्क्षा करें ।

१५ मशर्शा राजाके चार पुत्र और विजयी अवदस राजाके तीन पुत्र मुझे बाधा देते हैं । मित्रावरुण, तुम्हारा अति विस्तृत और शोभन दोसिणाली रथ सूर्यकी तरह कास्ति प्राप्त किये हुए है ।

१ दक्षिणा या उषाका रथ अश्व-संयुक्त हुआ । अमर देव लोग उस रथपर सवार हुए । कृष्णवर्ण अन्धकारसे उत्पन्न, पूजनीय, बिचित्र-गतिमती और मनुष्यके निधासस्थानोंका रोग दूर करनेवाली उषा उदित हुई ।

२ सब जीवोंके पहले ही उषा जागी । उषा अन्धकारिणी, महती और संसारको सुख देनेवाली हैं । वह युवती हैं, बार-बार आविर्भूत होती हैं । ऊर्ध्वस्थिता उषा देवी हमारे कुलनेपर पहले ही आती हैं ।

३ सजाता उषा देवी, तुम मनुष्योंकी पालिका हो । तुम अभी मनुष्योंको जो प्रकाशाण प्रदान करती हो, उसीको प्रदान कर दानशील सविता या प्रेरक देव, सूर्यके आगमनके लिये, हमें पाप-रहित कड़क स्वीकार करें ।

४ अहना या उषा प्रतिदिन नम्र भावसे हर एक घरको ओर जाती हैं । भोगेच्छाशालिनी और द्युतिमती प्रतिदिन आगमन करती और हव्यरूप धनका अष्ट भाग ग्रहण करती हैं । ॥

॥ अहना ही कदाचित् ग्रीकोंकी Athena या Minerva हैं ।

भवस्य सत्ता वरुणाय जामिरुपः सूनूने प्रथमा जग्गः ।
 पश्चाद्दध्या यो अघाय जना जयेम तं द्रविणया रथेन ॥५॥
 उदीरतां सूनूत उ-वुत्त गीरुदग्रयः शुशुवाताका अस्थुः ।
 स्प र्हा वसूनि तमसा गूहा विष्कृण मस्युवसो विमानीः ॥६॥
 अपानपदेवमथन्यदेति विष्कुरूपे अहन्ति सञ्चरन्ते ।
 परिक्षिप्तोस्तमो अन्या गुहाकग्यैदुपाः शोशुवता रथेन ॥७॥
 सदृशीरथ सदृशरिदुशो दीर्घ सनन्ने वरुणस्य धाम ।
 अनवद्यास्त्रिंशन् योजनान्येकैका कर्तुं परिशन्ति सद्यः ॥८॥
 जानत्यहः प्रथमस्य न य शुकादण्णादजनिष्ट शिवतीची ।
 ऋतस्य थोषा न मिनन्ति धामा रर्द्धनिष्कृता परन्ती ॥९॥
 कन्येय तन्ना आशदन्तौ पपे र्हि देवमियभमागम् ।
 संरमन्माना युवतिः पुस्तदाविर्वक्षांसि कणुपे विभाती ॥१०॥

५ सूनूता उषा, तुम अघाय सूनूकी यमिनो और वरुण या प्रकाशोवरी सहजाता हो । तुम झेष्ठ हो । सब देवता तुम्हारी स्तुति करें । इसके अनन्तर जो दुःखका जगदकरी, वह अघे । तुम्हारी सहायता पाकर उसे रथ द्वारा हम जीतेगे ।

६ सन्धी बातें अही जायें । प्रज्ञा प्रबुद्ध हो । अन्यन्त प्रकाशमान आगे प्रज्वलित हो । इससे विचित्र प्रभावतो उषा अन्धकारावृत्त स्पृहणीय धन आविष्कार करती है ।

७ विलक्षण रूपवान् दोनों अहोरात्र-देवता व्यवधान-रहित होकर चलते हैं । एक जाते हैं, एक पाते हैं । पर्यायगामी दोनों देवताओंमें एक पदार्थोंको द्विपाते हैं, दूसरे (उषा) अतीव क्षीतिवान् रथ द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं ।

८ उषा देवी ऐसे आज हैं, वैसे ही अल भी वे विशुद्ध हैं । प्रतिदिन वे वरुण या सूर्यके अवस्थिति-स्थानसे तीस योजन आगे अवस्थित होती हैं । एक एक उषा उद्य-कालमें ही गमन-आगमनरूप कार्य सम्पादित करती हैं । *

९ उषा दिनके प्रथमांशके आगमनका काल जावती हैं । वह सूर्य की दीप्त और श्वेतवर्ण हैं । कृष्णवर्णसे उनकी उत्पत्ति हुई है । वह सूर्य-लोकमें मिश्रित होती हैं, किन्तु उसकी हानि नहीं पहुँचाती; बल्कि उसकी शोभा बढ़ाती हैं ।

१० देवि, कन्याकी तरह अपने अंगोंको विकसित करके तुम दानप्रायण और दीप्तमान् सूर्यके निकट जाओ । अनन्तर युवतीकी तरह अतीव प्रकाश-सम्पन्न होकर, कुछ हँसती हुई, सूर्यके सामने अपना हृदय-देश उघारो ।

* सायणाचार्यके मतानुसार सूर्य प्रतिदिन ५०५६ योजन भ्रमण करते हैं । इस तरह सूर्य प्रत्येक दृक्कर्म, ७६ योजन घूमते हैं । चूँकि उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्व-गामिनी हैं; इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा दण्ड (१) पहले उषाका उदय मनना चाहिये । कुछ यूरोपियनोंके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते हैं ।

सुसङ्घाशा मानमुष्टेय योषाविस्तन्वं रूपेण दृशेकम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युक्तं न तत्ते अन्या उपसो नशन्त ॥१॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववागस्तमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
पराचयन्ति पुनराचयन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥२॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छन्तानां भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मामु रायोमघवत्सु तस्युः ॥३॥



१२४ सूक्त । उषा देवता ।

उषा उच्छन्ती रश्मिधाने अग्रा उद्यन सूर्य उर्विथा ज्योतिश्च त् ।
देवो मो अत्र सवितान्वर्थं प्रासावीदृष्टिपत् प्र सनुषपक्षित्यै ॥१॥
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनतो मनुष्या युगानि ।
ईशुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषाव्यद्यौत् ॥२॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यर्क्षि ज्योतिर्वमाना समन्ता पुग्स्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजाननीच न दिशो मिनाति ॥३॥

११ जैसे माताके देहको धी देनेपर कन्याका रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शनके लिये अपने शरीरको प्रकाशित करो । तुम कल्याणकारी हो । अन्धकारका दूर कर दो । अन्य उषाएँ तुम्हारे कार्यको नहीं ब्याप्त करेंगी ।

१२ अश्व और गौसे सम्बन्ध, सर्वकालीन और सूर्य-रश्मियोंके साथ तथोनिवारणके लिये चेष्टा-चिह्नित उषा-देवियाँ कल्याणकर नाम धारण करके जाती और आती हैं ।

१३ उषा, ऋत या सूर्यको रश्मिका अनुभवन करती हुई जो कल्याणकारिणी प्रजा पक्षान करो । इस तुम्हें बुलाते हैं । अन्धकार दूर करो । इस हविलक्षण धनसे युक्त हैं । हमारा पन्थ धन हो ।

१ अग्निके समिद्धमान होनेपर उषा, अन्धकारका निवारण करती हुई, सूर्योदयकी तरह प्रभुत ज्योति फैलाती है । हमारे व्यवहारके लिये सविता द्विपद और सनुषपक्षके संयुक्त धन देते हैं ।

२ उषा देव-सम्बन्धी व्रतोंमें विघ्न नहीं करती, मनुष्योंकी आयुका हार करती, अतीत और नित्य उषाओंके समान हैं और आगामिनी उषाओंकी प्रथमा हैं । उषा खुसि फैलाती हैं ।

३ उषा स्वर्ग-पुत्री हैं । वह प्रकाश द्वारा आडङ्गादित होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देती हैं । उषा मानो सूर्यका अभिप्राय जानकर ही उनके मार्गपर अच्छी तरह अग्रण करती हैं । वह कभी भी दिवाओंको नहीं मारती ।

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरुद्ध प्रियाणि ।
 अशसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥४॥
 पूर्ध अर्ध रजसो अपत्यस्य गवाँ जनित्र्यकृत प्रकेतुम् ।
 व्युप्रथते वितरं वरीय ओमापृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥
 एवेवेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामि न परिवृणक्ति जामिम् ।
 अरेपसा तन्वा शशदाना नाभादीपते न महो विभाती ॥६॥
 अन्नातेष पुंस एतिप्रतीचां गतारुगिव सनये धनानाम् ।
 जायेव पत्य उशती सुवासा उपाह्रस्व निरिणीते अप्सः ॥७॥
 स्वसा स्वन्न उथापस्यै योनिमारैगैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
 व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याज्ज्यंके समनगा इव वाः ॥८॥
 आसां पूर्वासामहसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
 ताः प्रक्षयन्नव्यस्नानूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उपासः ॥९॥
 प्रबोधयोयः पृणतो मघोन्यवुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
 रेवदुच्छ मघवद्भ्या मघान रेवत् स्तोत्रे सूतृते जागयन्ती ॥१०॥

४ जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करता है और नोधा श्रापने जैसे अपनी प्रिय वस्तुका आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषाने भी अपनेको आविष्कृत किया है । जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, वैसे ही उषा भी मनुष्योंको जगाती है । अभिसारिकाओंके बीच उषा सर्वापेक्षा अधिक आती है ।

५ विस्तृत आकाशके पूर्व भागमें उत्पन्न होकर उषा दिशाओंको चेतनता-युक्त करती है । उषा पितृ-स्थानोय स्वर्ग और पृथिवीके अन्तरालमें रहकर अपने तेजसे देवोंको परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूपसे प्रख्यात हुई है ।

६ इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलतामें वर्धन-निर्मल मनुष्यादि और देवादियोंने किलोको भी नहीं छोड़ती । प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीरमें क्रमशः स्पष्ट होकर छाये या बड़े किसीसे भी नहीं हटती ।

७ भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादिके अभिमुख गमन करती है, गतभर्तृका जैसे धन-प्राप्तिके लिये घर आती है, उषा भी वैसा ही करती है । जैसे पत्नी पतिकी अभिलाषिणी होकर सुन्दर वस्त्र पहनती हुई शास्य द्वारा अपनी वस्त्र-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती है ।

८ भगिनी-रूपिणी रात्रिने बड़ी बहन (उषाको) अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषाको जगा कर स्वयं चली जाती है । सूर्य-किरणोंसे अन्धकार हटाकर उषा त्रिधु वराशिकी तरह जगत्को प्रकाशित करती है ।

९ इन सब भगिनीभावापन्न प्राचीन उषाओंमें पहली दूसरीके पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं । प्राचीन उषाओंकी तरह नयी उषा छविन पैदा करती हुई हमें अभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करे ।

१० धनवती उषा, हविर्दाताओंको जगाओ । पणिलोग न जागकर निद्रामें पड़े । धनशालिनि, धनी यजमानोंको समृद्धि दो । सूतृते, तुम सारे प्राणियोंको क्षोण करती हुई यजमानको समृद्धि दो ।

अवेयमश्वैद्युवनिः पुरस्ताद्युक्ते गवामरुणानामनीकम् ।
 वि नूनमुच्छादसतिः केतुर्गृहं गृहमुपनिष्ठाते अग्निः ॥१॥
 उत्सेद्यश्चिद्वसतेरपसन्नरश्च ये तितुभाजो व्युष्टौ ।
 अमा सते वहसि भूग्वाममुषो देवि दाशुषे मर्याय ॥ २ ॥
 अस्तोद्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेधीवृत्रं मुशतीरूपासः ।
 युष्माकं देवीरवसा स्नेम सहस्त्रिणं च शक्तिनं च वाजम् ॥ ३ ॥

॥२॥ सूक्तः दानं देवता ॥१॥

प्रातःकालं प्रातरित्वा दधति तं निकित्वा नृतिगृहा निधत्ते ।
 तेन प्रजां वर्धयमान आयूरायम्पोषेण सन्तते सुवीरः ॥ १ ॥

११ युवती उषा पूर्व दिशासे आती और सत घोंड़ोंको रखमें जोतती हैं। वह दिनकी सूचना करके रूप-रहित अन्तरिक्षमें अन्धकारका निवारण करती हैं। घर-घरमें आग जलती है।

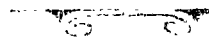
१२ उषा, तुम्हारा उदय होनेपर चिड़ियाँ अपने घोंसलेमें ऊपर उड़ती हैं। अन्न-प्राप्तिमें आसक्त होकर मनुष्य ऊपर मुँह करके जाते हैं। देवि, देव पूजन-गृहमें अवस्थाप्य हाथ-दाया मनुष्यके लिये प्रभुत धन से आओ।

१३ स्तुति-पात्र उषाएँ, मेरे मन्त्र द्वारा तुम स्तुत हो। मेरी समृद्धि की इच्छा करके हमें वृद्धित वरें। देवियो, तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके हम सहस्रसंख्यक और शतसंख्यक धन प्राप्त करें।

१ स्वयं राजाने, प्रातःकाल आकर, प्रातःकाल ही स्नान ला रखा। वक्षीवान्ने उठकर, स्नान ग्रहणकर, स्थापित किया। छवीर दीर्घतमाने उस स्नानगजि द्वारा प्रजा और आयु की वृद्धि करके धन लाभ किया।

॥ 'गुल्फुल'में अध्ययन समाप्त कर रात्रिमें घर आते हुए वक्षीवान् कृषि मार्गमें सो गये। स्वयं नामके राजा, अनुचरोंके साथ, घूमते हुए आये और वक्षीवान्का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये। राजा उन्हें घर लाये और अपनी दस कन्याओंके साथ उन्हें ब्याह दिया। राजाने प्रत्येकको १०० निष्क (तील) छर्जन, १०० घोड़े, १०० वृषभ, १०६० गायें और ११ रथ, दोहेजमें, प्रदान किये। इन सबको वक्षीवान्ने अपने पिता दीर्घतमाको अर्पण कर दिया। — सायणाचार्यने यहाँ यह कथा लिखी है। स्वयं राजाका दान ही इस सूक्त-देवता है अर्थात् उस दातके सम्बन्धमें ही यह सूक्त रचा गया है।

सुगुग्मस्तु सुहिरण्यः स्वर्गो बृहदस्मै यय इन्द्रो दधाति ।
 यस्तथायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिवुत्सिनानि ॥ २ ॥
 आशमय सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टः पुनरुत्सुमता रथेन ।
 अंगोः सुतं पायय मत्स्यस्य ह्ययसीरं जय सुनुताभिः ॥ ३ ॥
 उवाच त्वि शिन्धवो मशोभुव ई तानं तयक्षयमाणं न पतयः ।
 पृथग्येव पपुर्गि न शक्यते वृत्तस्य धाम उपयन्ति शिष्वतः ॥ ४ ॥
 तावस्य गृष्टे आश्रितिच्छति विप्रो यः पृथगति सवदेषु गच्छति ।
 तस्मा आपो वृत्तमर्पन्ति सिन्धु वस्तश्मा इयं दक्षिणा पितृते सदा ॥ ५ ॥
 दक्षिणावतादिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिव्य सूर्यासः ।
 दक्षिणावतो अमृत भावते दक्षिणावताः प्रतिवन्त आयुः ॥ ६ ॥
 सा पुणालो दुर्मितमेतं तावदयं कृषिषुः शृणुः सुवतासः ।
 अनामदेषां पारं प्रवृत्तं कश्चादपृथक्त्वमिदं स्वंवन्तु शोकाः ॥ ७ ॥



२ उन राजाके पास बहुत गोधन है। उनके पास बहुत सोना और बहुत घोड़े हैं। उन्हे इन्द्र बहुत अन्न दे।
 जैसे लोग रस्सीसे पाश, पक्षी जालसे बांध देते हैं, उसी तरह उन्होंने भी प्रा. मत्स्य पश्य ही आकर आगमनकारीको
 घन द्वारा आबद्ध किया।

३ मैं कछुके प्राता शो. राजाको देखनेकी इच्छा करी। छतजिन योग्य बृहस्प, आज उपस्थित हुआ है। दोसि-
 शाली मादृ. सोमके अभिषुत रक्ता पाव करो। प्रमृ. यो. मृ. दि. पतिवृत्ते. नि. आ. मय. वाक्य द्वारा समृद्ध करो।

४ दुग्धवती और कल्याण-दायिनी शायें, यत्नजन और मज्जन्-मृगणादिकि प्राय प्राधर, दुग्ध प्रदान करती हैं।
 समृद्धिके कारणभूत वृत्तधार, तर्पणकारी और हितकारी पुष्पा. प्रा. वसो. नि.ने उपस्थित होती है।

५ जो व्यक्ति देवोंको प्रसन्न करता है, वह स्वर्गके पृथदेणमें अस्थान करता तथा देवोंके बीच यमन करता
 है। प्रवहमान जल, उसके पास, तेजोविशिष्ट साग प्रदान करता है। दृष्टिही शस्य मादो. र. क. होकर उसे सन्तोष प्रदान
 करती है।

६ जो व्यक्ति दक्षिणा प्रदान करता है, उसीकी ये सारी मणि-मुक्तादि वस्तुएँ होती हैं। दक्षिणा दाताके लिये पृ-
 लोकमें शुभ रहते हैं। दक्षिणा-दाता ही जरा-मरण-शून्य स्थान प्राप्त करते हैं। दक्षिणा देनेवाले दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

७ जो देवोंको प्रसन्न रखता है, उसे दुग्ध और पायस के चित्रों, पौ. मज्जन्-मृग. स्तोता भी जरायुस्त नहीं
 होते। देवोंके प्रोक्ष-प्रदाता और समृद्धिकर्तृभि. निम्न पृथका. प्रा. आश्र. से. जो देवोंको प्रसन्न नहीं करते, उन्हें
 शोक प्राप्त हो।

१२६ सूक्त । १ से ५ मंत्र राजा भावयश्यके लिये हैं और इनके ऋषि कक्षीवान् हैं । ६वा मंत्र राजाकी स्त्रीके लिये है और इसके ऋषि उक्त राजा हैं । ७ वाँ मंत्र लोमशाके पतिके लिये है और इसके ऋषि लोमशा हैं । ६ से ५ तक त्रिष्टुप् और अन्तके दो अनुष्टुप्में हैं ।

अमन्दान् स्तोमान् प्रमरे मनीषा सिन्धवधिक्षियतो भाव्यस्य ।

यो मे सहस्रममिमीत सधानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

शतं राक्षोनाधमानस्य निष्काञ्छामश्वान् प्रयतान्त सद्य आदम् ।

शतं कक्षीर्वा असुरस्य गोतां दिवि श्रवो जग्मातनान् ॥ २ ॥

उप मा शशावाः स्वनयेन दन्ता बध्मन्तो दशधासां अस्थुः ।

पष्टिः सहस्रमनुगव्यमागात् रुनन् कक्षीर्वा अभिपित्वे अहाम् ॥ ३ ॥

चत्वारिंशदशथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्त ।

मदच्युतः कृशनागता अन्यन् कक्षीरन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥

पूर्वामनुप्रयतिमादवे वस्त्रीन्नुक्तां अष्टाविधायसां गाः ।

सुबन्धो ये विश्वा इव वाः अतस्सन्तः श्रव ण्यन्त पज्राः ॥ ५ ॥

आगधिता परिगधिता या कक्षीरेव जङ्गहे ।

ददाति मह्यं यादुगी यशूनां भोग्या शता ॥ ६ ॥

१ सिन्धुनिवासी भावयज्य-पुत्र रुनन् के लिये, अर्थात् बुझाने, बहुसंख्यक स्तोत्र सम्पादन (प्रशयन) करता है । इन्सा-विरहित राजाने कीर्त्ति-प्राप्तिकी इच्छामें मेरे लिये हजार सोम-यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ।

२ अष्ट-राजाके ग्रहणके लिये मुझने याचना करनेपर मैं (कक्षीवान्) ने उनमें १०० निष्क (आभूषण या स्वर्णमाप), १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये । स्वर्ग-लोकमें राजा नित्य कीर्त्ति-विरुद्ध करेगा ।

३ स्वनय द्वारा भूरे रंगके अश्ववाले दस रथ मेरे पास आये, तिनपर बहुतेरे आरुढ़ थीं । १०१० गावें भी पोछेसे आयीं । मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब अग्नि पिताको दे दिया ।

४ हजार गावोंके सामने, दसों रथोंमें चालीस (१-१३ ४-४) लोहितवर्ण अश्व पंक्ति-बद्ध होकर चलने लगे । कक्षीवान्के अनुचर उनके लिये घास आदि जुटाकर भक्ष्य और स्वर्णभरण-विशिष्ट एवं ससत गमनशील अश्वोंको मलने लगे ।

५ बध्मगण, पहलेके दानका स्मरण करके तुम्हारे लिये तीन और आठ—सब रथारह रथ मैंने ग्रहण किये हैं । बहुमुख्य गावोंकी लिखा है । प्रजाओंकी तरह परस्पर-अनुराग-समान होकर संकटापन्न अङ्गिरा लोग कीर्त्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करें ।

६ यह सम्भोग-योग रमणी (लोमशा) अच्छी तरह आलिङ्गित होगी, सुतजस्य तकुलीकी तरह, चिर कालतक रमण करती है । बहुतेरतुल्य होकर रमणी मुझे (स्वनय राजाको) बहु बार भोग प्रदान करती है ।

उपांष मे परामृशमामेदन्नाणि मन्यथाः ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामशक्तिका ॥ ७ ॥



५ अनुवाक । १२७ सूक्त । अग्नि देवता । यहाँसे १२६ सूक्तों तकके ऋषि दियोदासके पुत्र परचन्द हैं । छन्द अनिष्टुति ।

अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सनं सहस्रो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वया स्वध्वगे देवा देवाच्या कृपा ।

घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिष जुहानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥

यजिष्ठंत्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्रं मन्मभिविज्रेभिः शुक्रं मन्मभिः

परिजमानमिव द्यां होतारं सर्पणीनाम् ।

शोचिष्केशं वृषणं यमिमाविशः प्राचन्तु जनये विशः ॥ २ ॥

स हि पुरुषिदोअसा विश्वमता दीद्यानां भवति द्रुहन्तरः परशुने द्रुहन्तरः ।

वीलुचिद्यस्य समृन्तौ श्रुवदनेव यत् स्थिरम् ।

निष्पहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

७ (स्वनय राजाके लिये बचन—) मेरे पास आकर मुझे अच्छी तरह स्पर्श करो । यह नहीं जानना कि, मेरे शरीरमें कम लोम हैं । मैं गान्धारी तैषी या गर्भधारिणी रमणीकी तरह लोमपूर्ण और पूर्णावयवा हूँ ।

१ विद्वान् विप्र या ब्राह्मणकी तरह प्रज्ञावान्, बलके पुत्र-स्वरूप, सबके निवास-भूमि-रूप और अत्यन्त दानशील अग्निको मैं होता कहकर सम्मान-युक्त करता हूँ । यज्ञ-निर्वाहकारी अग्नि उत्कृष्ट-देव-पूजा-समर्थ होकर चारों ओर फैली हुई घृतकी दीप्तिका अनुसरण करके अपनी शिखा द्वारा उस घृतको स्वीकृत करते हैं ।

२ मेधावी शुभ्रदीप्ति अग्निदेव, हम यजमान हैं । हम मनुष्योंके उपकारके लिये मननशील और अत्यन्त प्रसन्नता-दायक मन्त्र द्वारा अङ्गिरा लोगोंमें महान् तुम्हें बुझाने हैं । सर्वतोपामो सूर्यकी तरह तुम यजमानोंके लिये देवोंको बुलाते हो । केशकी तरह विस्मृत ज्वाला-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी हो । यजमान लोग अभिमत फल पानेके लिये तुम्हें प्रसन्न करें ।

३ अग्निदेव अतीव दीप्तिले संयुक्त ज्वाला द्वारा भली भाँति दीप्यमान हैं । वह विदोहियोंके श्रेयार्थ परशुकी तरह विनाशमें अमूल्य हैं । उनके साथ मिलनेपर दृढ़ और स्थिर वस्तु भी जलकी तरह शीघ्र हो जाती है । शत्रुओंका विनाश करनेवाला धनुर्धर जैसे नहीं भागता, वैसे ही अग्नि भी शत्रुओंको परास्त करनेसे बाज नहीं आते ।

हृत्वाचिद मा अनुदुर्यथा विदे ते जिष्ठावर्षाणां सदां ष्वसंसेमये दाष्यमवसे ।

अयः पुराणि गच्छते तक्षणेन शोचिषा ।

स्थिरां चिदन्ना विरिणात्वांस्त नि स्विनाण विदो जहा ॥ ४ ॥

तस्य पृक्षमुपगसु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातगदवायुणे दिवातरात् ।

आदस्यागुर्भणवहुयत्तु शर्म न सूनवे ।

सक्तमसक्तमव्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजरा ॥ ५ ॥

य हि शर्धो न माकन न वानिषिप्रतीपर्वणस्त्रिष्टुनिरर्तनास्विष्टनि ।

आदह्व्यान्यदाद्रीदस्य केतुमणः ।

अधस्मारय हर्षतां हृषीवतो रीष्टे जुपन्त पन्थां नमः शुभेन पन्थाम् ॥ ६ ॥

हिता यदीं कीरतासा अग्निघ्नीं नमरयन्त उपवोचन्त भृगवां मथन्तां दाशा भृगवः

अग्निरीशे नूनं शुचिर्यो धर्णिरेषाण् ।

द्वियाँ अग्निधीँ वीजपीष्ट मेधिर आघनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

४ जैसे विद्वान् पुरुषों द्वारा दान किया जाता है, उसी प्रकार अग्निको स्तवमान् हव्य, मन्त्रानुक्रमसे, प्रदान किया जाता है। तेजोविशिष्ट अजरादि द्वारा अग्नि हरायी रक्षण के लिये स्वर्गादि प्रदान करते हैं। यजमान भी रक्षार्थ, अग्निको हव्य देते हैं। यजमानों द्वारा प्रदान हव्यमें प्रवेश करके अग्नि, अपनी ज्योतिर्मत्तवा द्वारा, उसे बलकी तरह जला डालते हैं। अग्निदेव अपनी ज्योति द्वारा अन्नदिवा परिपाक करने और तेजो द्वारा वह द्रव्यको विनष्ट करते हैं।

५ रातमें अग्निदेव दिनमें भी अधिक दर्शनीय हो जाते हैं। दिनमें अग्नि पूरी आयु या तेजस्वितासे शून्य रहते हैं। हम अग्निके उद्देश्यसे वेदोंके पास हव्य दान करते हैं। जैसे पिताके पास पुत्र हट्ट और सखकर गृह प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अन्न ग्रहण करता है। यज्ञ और अन्नको समझकर भी अग्नि दोनोंकी रक्षा करते हैं। हव्य-भक्षण करके अग्नि अजर हो जाते हैं।

६ मरुतोंके बलकी तरह स्तवनीय अग्नि यथेष्ट अर्घ्यसे युक्त है। कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् ओष्ठ भूमिपर अग्निको यज्ञ करना उचित है। मेता-विजय करनेके लिये अग्निको योग करना उचित है। अग्नि हव्य भक्षण करते हैं। वह सर्वत्र दानहीन और यज्ञकी पताका है। वह सर्वत्र पूजनीय है। यजमानोंके लिये हर्षदत्ता और प्रवन्न अग्निके मार्गकी, निर्भय राजपथकी तरह, सुख-लाभके लिये, सश्र लोभ सेवा करते हैं।

७ औषध और स्मार्त्त—उषध प्रकारके अग्निका गुण कहनेवाले, दीप्तिशाली, नमस्कार-प्रवीण और हव्यवाला ऋगुगोत्रज महर्षि लोग, हवि देनेके लिये, अर्घ्य द्वारा अग्निको मन्थन करके स्तुति करते हैं। प्रज्ञोप्त अग्नि सारे धर्मोंके अधीश्वर है। अग्नि यज्ञवाले हैं और मलो भोगि प्रिय हव्य भागनेवाले हैं। अग्नि मेधावी है और वह अन्य देवताओं भी भाग देते हैं।

विश्वासां स्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पति भुजे सख्यगिर्वाहसं भुजे ।

अतिभि मातृपाणां पितुर्न यस्यासया ।

अमी च विश्वे अमृतास आवथी हव्या देवेष्वधय ॥ ८ ॥

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मन्तमो जायसे देवतानये रयिर्न देवतानये

शुष्मन्तमो नि ते मदो यः सन्तम उत क्रतुः ।

अधस्माते परिवर्गस्यजग् श्रुतां वानो नाजग् ॥ ९ ॥

प्र तो महे सहसा सहस्वत उपबृधे पशुषे नाग्रये स्तामो बभूवग्रये ।

अति यदीं हविष्मात्विश्वामु आसु जोगुधे ।

अग्र येन न जग्त् ऋष्यां ज्णिर्होत ऋष्याम ॥ १० ॥

स्तेनेदिष्टं ददृशान आभगाग्ने देवेभिः स्रुनाः सुचेतनः महो रायः सुचेतुमा ।

महि शविष्ठ न स्त्रधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।

महि स्तोतृभ्यो मघनस्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥



८ सारे यजमानों के रक्षक, सारे मनुष्यों के एक-एक गृह-पालक, सर्व-सम्पन्न-फल-विशिष्ट, स्तुति-वाहक और मनुष्य आदिके लिये अतिथिकी तरह पूज्य अग्नि का भोग के लिये, हम बुलाते हैं । जैसे पुत्र लोग पिता के पास जाते हैं, वैसे ही हृदय के लिये ये सारे देवता अग्नि के पास जाते हैं । श्रुतिक लोग भी देवों के यज्ञ-कालमें, अग्नि को हृदय प्रदान करते हैं ।

९ जैसे देवों के यजन के लिये धन पैदा होता है, उसी प्रकार हे अग्नि, तुम भी देवों के यज्ञार्थ उत्पन्न होते हो । अपने बल से तुम शत्रुओं के अभिभवकर्ता और अतीव तेजस्वी हो । तुम्हारा आनन्द अत्यन्त बल-दाता है । तुम्हारा यज्ञ अत्यन्त फल-प्रद है । हे अजर और हे भक्तों के जरा-निवारक अग्नि, इसीलिये यजमान लोग, दूतों की तरह, तुम्हारी पूजा करते हैं ।

१० हे स्तोता लोग, चूँकि हविषा से यजमान दान अग्निके लिये सारी वेदी-भूमि पर बार-बार गमन करते हैं; इस लिये तुम्हारा स्तोत्र इस पूज्य, शत्रु-पराभवकारी, प्राप्तिकालमें जागरणशील और पशु-दाता अग्निकी प्रीति उत्पन्न करने में समर्थ हो । धनवान् के पास जैसे बन्दी स्तव करता है, वैसे ही होता लोग पहले, देवों में श्रेष्ठ, अग्निकी स्तुति करते हैं ।

११ हे अग्नि, यद्यपि तुम्हें पासमें ही हम प्रदीप्त देखते हैं; तथापि तुम देवों के साथ आहार करते हो । तुम अपने शोभन अन्तःकरण से अपने अधीन के लिये अनुग्रह करके पूजनीय धन लाते हो । बलवान् अग्निदेव, हमारे लिये यथेष्ट अन्न प्रदान करो, जिससे हम पृथिवी को देख और भोग सकें । मघवन् अग्नि, स्तोताओं के लिये वीर्यशाली धन प्रदान करो । घरेष्ट हल-सम्पन्न होकर क्रूर व्यक्ति जैसे शत्रु-विनाश करता है, वैसे ही हमारे शत्रु का विनाश करो ।

१२८ सूक्त । अतिधृति छन्द ।

अयं जायत मनुषा धर्मीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनुव्रतमग्निः स्वमनुव्रतम् ।
 विश्वश्रुष्टिः सखीयते गयिरित श्रवस्यते ।
 अदब्धो होता निपदिद्विस्पदे परिवात इडस्पदे ॥ १ ॥
 तं यज्ञसाधर्मणि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
 स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
 यं मातरिश्वा मनषे परावतो देव भाः परावतः ॥ २ ॥
 एवेन सद्यः पर्येति पाथिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिकवदध्वरेतः कनिकवत् ।
 शतं नक्षत्राणो अश्वभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
 सद्यो दधान उपरेषु सानुव्रमिः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥
 स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेप्रियज्ञस्याध्वरम्य चैतति क्रत्वा वज्रस्थ चैतनि
 क्रत्वा वेध्रा इपूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
 यतो धृतधीरनिधिरजायत वह्निर्विधा अजायत ॥ ४ ॥

१ देवोंको बुलानेवाले और अतीव यज्ञशील यह अग्नि फल-प्राप्तियोंके और अपने स्वतः या हविर्भोजनके उद्देश्यसे मनुष्यसे ही उत्पन्न होते हैं । सारे विश्वमें कर्त्ता अग्निदेव बन्धुत्वान्ता और अन्नाभिलाषी यज्ञमानके घन-स्थानीय हैं । वृषिबीमें सार-भूत वेदोपर, यज्ञ-स्थानमें, आहूत, होम-निष्पादक तथा आत्विगुवेष्टित अग्नि बेटे हैं ।

२ हम लोग यज्ञानुष्ठान और घृत आदिसे युक्त तथा नम्रतासे सम्पन्न स्तोत्र द्वारा बहु हव्यवाले और देव-यज्ञमें साधक अग्निकी, परितोषके साध, सेवा करते हैं । वह अग्नि हमारे हव्यरूप अन्नको लेनेमें समर्थ होकर नाशको नहीं प्राप्त होगा । मनुके लिये मातरिश्वाने अग्निको, दूरसे लाकर, पदोत्त किया था । हमी प्रकार, वृत्ते, हमारी यज्ञशालामें अग्नि आवें । *

३ सदा गाये या स्तुति किये जानेवाले, हविः-सम्पन्न, अभीष्ट-फलदाता और सामर्थ्यशाली अग्नि शब्द कनके आते हुए तुरत पाथिव वेदोंकी चारों ओर शब्द करके आते हैं । अग्निदेव स्तोत्र ग्रहण करके अयस्थानीय शिखा द्वारा चारों ओर प्रकाशित हो रहे हैं । उच्च-स्थानीय अग्नि उत्तम यज्ञमें तुरत आते हैं ।

४ होमनकर्मों और पुरोहित अग्नि हर एक यज्ञमानके घरमें नाश-रहित यज्ञको जान सकते हैं । अग्नि कर्म द्वारा यज्ञ जान सकते हैं । वह कर्मोंके विविध फलदाता बनकर यज्ञमानके लिये अन्नको इच्छा करते हैं । अग्नि हव्य आदिको ग्रहण करते हैं; क्योंकि वह घृत-भक्षी अतिथिके रूपमें उत्पन्न हुए हैं । अग्निके प्रवृद्ध होनेपर हव्यदाता विविध फल प्राप्त करते हैं ।

॥ १ मन्त्रक, ६० सूक्त, १ मंत्रसे विहित होता है कि, भूगुके लिये भी मातरिश्वा ही अग्निको लाये थे ।

कृत्वा यदस्य त्रिविषीषु पृथक्तेऽग्नेरग्रेण मरुतां न भोज्येविशय न भोज्या ।
 सहिष्मादानमिन्वति वसूतां च मज्जता ।
 स नस्त्रासते दुग्ितादभिहृतः शंसाद्घादभिहृतः ॥ ५ ॥
 विश्वो विहाया अरतिथिसुर्द्धे हस्ते दक्षिण तर्गणिन शिश्रथश्चक्रवस्यया न शिश्रथत् ।
 निश्चरमा इन्द्रिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
 विश्वस्मा इत् सुकृते वाग्मृणवत्यग्निर्द्वारा व्यूयवति ॥ ६ ॥
 स मानुषे वृजने शन्तमो हिनोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विशपतिः प्रियो यज्ञेषु विशपतिः ।
 स हव्या मानुषाणापिडाकृतानि पत्यते ।
 स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महादेवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥
 अग्निं होतारं मीडते वसुधितिं त्रियं ज्येष्ठिष्ठमरतिं न्येगिरे हव्यवाहं न्येगिरे ।
 विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
 देवांसो रयन्मवसे वसूयवो भीमिग्वं वसूयवः ॥ ८ ॥



५ जैसे मरुत लोग भक्षणीय द्रव्यको एकमें मिलाने इन अग्नि को जैसे भक्ष्य द्रव्य दिया जाता है, वैसे ही यज्ञ-मान लोग कर्म द्वारा अग्निकी प्रबल शिखारमें, तृप्तिके लिये, भक्षणीय द्रव्य मिलाने हैं। अपने धनके अनुसार यजमान हव्य दान करता है। जो पाप हमारा हरण करता है, उस हरणकारी दुःख और हिंसक पापसे अग्नि हमें बचावे।

६ विगवात्मक, महान् और विरामरहित अग्नि सूर्यकी तरह दक्षिण हाथमें धन रखते हैं। उनका दह हाथ यज्ञ-कारीके लिये श्लथ होता है, खुला रहता है। केवल हवि पानेकी आशासे अग्नि उसे नहीं छोड़ते। अग्निदेव, सारे हवि-कामी देवोंके लिये तुम हवि वहन करते हो। सब सुकृत पुरुषोंके लिये अग्नि वरणीय धन प्रदान करते और स्वर्गका द्वार उन्मुक्त करते हैं।

७ मनुष्यके पाप-निमित्तक यज्ञमें अग्नि विशेष हितकारी है। वितथी राजाकी तरह यज्ञ-स्थलमें अग्नि मनुष्यके पाकक और प्रिय है। यजमानोंकी यज्ञवेदीमें रखे हव्यके लिये अग्नि आते हैं। हिंसक यज्ञ-वाघकके भयसे और उन महान् पापदेवकी हिंसासे अग्निदेव हमारा उद्धार करें।

८ धनधारक, सर्व-प्रिय, सुखद्विदाता और विगमरहित अग्निकी, ऋत्विक् लोग, स्तुति करते और उन्हें भली-भांति प्राप्त किये हुए हैं। हव्यवाही, प्राणियोंके प्राण-रूप, सर्वज्ञा-समान्वत, देवोंके बुलानेवासे, यज्ञवीथ और मेघावी अग्निकी ऋत्विक्ोंने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। अथोभलाषी होकर ऋत्विक् लोग, अग्निकी हव्य-रूप अन्न देनेकी इच्छा करते हुए, आश्रय-प्राप्तिके लिये, रमणीय और शब्दकारी अग्निकी प्राप्त हुए हैं।

१२६ सूक्त । इन्द्र देवता ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेघसातये पाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।

सद्यश्चित्तमभिष्टये करोवशश्च वाजिनम् ।

सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसोमिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

सः श्रुधि यः रमा पृतनासु कासुचिदक्षय्य इन्द्र मरुद्वनयं नृभिरसि प्रवृत्तये नृभिः ।

यः शूरेः स्वः सनिता यो विप्रैर्वीजं तरुता ।

तमीशानास इवधन्त वाजिनं पृक्षमयं न वाजिनम् ॥ २ ॥

दम्भा हि ष्मानृपणं पिब्यसि त्वयं कश्चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।

इन्द्रोत तुभ्यं तद्विवेद्रुद्राय स्वयशसं ।

मित्राय वीनं नरुणाय सप्रथः सुमृलीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

अस्माकं य इन्द्रमुश्मसीपत्ये सत्पायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।

अस्माकं वृद्धोतये वा पृतसुषु कासुचिन् ।

नहि त्वा शत्रुः स्तुतो स्तृणोपि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यम् ॥ ४ ॥

विष्णुमर्त्यान्तःसि त्वयस्यान्तस्व जिष्टयेमर्त्याणां तन्मित्राभिः प्रतितिभिः ।

नेषिणो यथा पुगनेनाः शू मर्त्यन्व ।

निश्वाति पूरापयसि प्रहिरासा नहिर्नो अच्य ॥ ५ ॥

१ इन्द्र-सम्पन्न यजमान इन्द्र, यज्ञ-लाभक लिये स्वयं चढ़कर जिस प्रभूत ज्ञान-युक्त यजमानके पास जाते हो और जिसे धन और विद्या में वृद्धि करने में, और तुम्हें सकल-अनोरथ और इन्द्रशाली कर दो। इन्द्र-युग्म इन्द्र, हम पुरु-हितोंमें भी पुरोहित हैं; हमारे स्वयं करनेपर तुम शीघ्रतासे हमारी स्तुति और इन्द्र ग्रहण करते हो।

२ इन्द्र, तुम युद्धके नेता हो। तुम मर्त्योंके साथ प्रधान-प्रधान युद्धोंमें अर्द्धोक्त साथ शत्रु-संहारमें समर्थ हो। बीरोंके साथ तुम स्वयं संग्राम छल अनुभव करते हो। श्रुतिवर्कोंकी स्तुति करनेपर तुम उन्हें अन्न दो। हमारी स्तुति सुनो। प्रार्थनापरायण श्रुतिवक लोग गमनशील अन्नदान इन्द्रकी, अन्नकी तरह, सेवा करते हैं।

३ इन्द्र, तुम शत्रुओंका नाश करनेवाले हो। वृष्टिपूर्ण त्वचारूप मेघका भेदन करके जल गिराते हो और मर्त्यकी तरह गमनशील मेघको पकड़कर और उसे वृष्टि-रहित करके छोड़ देते हो। इन्द्र, तुम्हारे इस कार्यको हम तुमसे और बु, यथोयुक्त हृ, प्रजाओंके सुखदायी मित्र तथा वरुणसे कहेंगे।

४ श्रुतिवको, अपने यज्ञमें हम इन्द्रको चाहते हैं। इन्द्र हमारे सखा, सर्व-यज्ञगामी, शत्रुओंके अभिभवकारी और हमारे सहायक हैं। वह यज्ञ-धर्मकारियोंको पराभूत करते और मर्त्योंमें सम्मिलित हैं। इन्द्र, तुम हमारे पालनके लिये हमारी रक्षा करो। लड़ाईके क्षेत्रमें तुम्हारे विरुद्ध शत्रु नहीं खड़ा हो सकता। तुम्हीं सारे शत्रुओंका निवारण करते हो।

५ उग्र इन्द्र, अपने भक्त यजमानके विश्वाचारीको, उग्र-रक्षणकार्य-रूप तेजोमय उपायोसे, अवगत कर देते हो। जैसे तुम पहले हमारे पूर्वजोंको मार्ग दिखाकर ले गये थे, वैसे ही हमें भी ले जाओ। तुम्हें संसार निष्पाप जानता है। इन्द्र, तुम अगत्पाकक होकर मनुष्यके सारे पापोंको दूर करते हो। हमारे सामने यज्ञ-फल लाकर अनिष्टोंका विनाश करो।

प्रतद्वोच्चैर्य भव्यायेन्द्वे हव्यो न य इषवान् मन्मरेजति रक्षोऽा मन्म रेजति ।

स्वयं सो अस्मदानिदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।

अवस्त्रवेदप्रशंसोऽवतगमय धुद्रमिः स्वयेत् ॥ ६ ॥

घनेम तज्जोत्रया चित्तन्त्या घनेम रयि रयिः सुवयं रगवं सन्तं सुवीर्यम् ।

दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृन्तीमाह ।

आसत्याभिरिन्द्रं द्युस्रह्मातमिर्यजत्रं द्युस्रहनिभिः ॥ ७ ॥

प्रप्रावो अस्मे स्वयशोभिरूनी परिवर्ग इन्द्रो दुर्धतोनां द्रीमन्दुर्मतीनाम् ।

स्वयं सारिपयध्वै यान उपेपे अत्रीः । हनेमपन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथो अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।

सचस्व नः पराक आसनस्वास्तमीक आ ।

याहि नो दूरादारामिष्टिभिः सदा रात्रिमिष्टिभिः ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्र राया तरूपसोमं मित्वा मयिमा सश्वदधरे महे मित्रं नाचमे ।

ओजिष्ठ व्रातरयिता रथं कश्चिदमनः ।

अन्यमस्मद्विन्निः कश्चिद्विद्रो रजिश्चिन्नं निद्रिवः ॥ १० ॥

६ भवनशील चन्द्रके लिये हम इस स्तोत्रका पढ़ेंगे । चन्द्र, आपसके साथ, हमारे कर्मके सहेजते, राक्षस-विनाशी और बुलाने योग्य इन्द्रकी तरह आते हैं । वह स्वयं हमारे चन्द्रके दुर्बलिके वधका उपाय बहुभूत करके उसे हार कर देगे । चोर, चूड़ जलकी तरह, अतीव निकृष्टादि, अपायोन्निह हो ।

७ इन्द्र, हम स्तोत्र द्वारा तुम्हारा गुण-कीर्ति धर्मिक तुम्हें भजते हैं । धनवान् इन्द्र, हम सारथ्यवान्, रमणीय, सदा वर्तमान और पुत्र-भृत्यादि-विशिष्ट धनका उपयोग कर सकते, तुम्हारी महिमा अद्वैत है । हम उत्तम स्तोत्र और अन्न प्राप्त करें । हम यज्ञ निष्पादक इन्द्रको यज्ञाधिकार्य फल देनेवाले और यशस्विक अह्वान द्वारा प्राप्त हों ।

८ क्षत्रिको, तुम्हारे और हमारे लिये हम स्तोत्रका पढ़ेंगे । अश्वमेध द्वारा दुर्बुद्ध लोगोंके विनाशक संग्राममें प्रवृत्त हों और उन्हें विदीर्ण करें । हमारे भक्षक शत्रुओंके हानि मिले, हमारे वाक्षके लिये, जो वेगवती सेना भेजी थी, वह सेना स्वयं हत हो गयी है; हमारे पास पहुँची भी नहीं; शत्रुओंके पाँचों पाँचों लौटी ।

९ इन्द्र, राक्षस-शून्य और पाप-रहित मार्गमें प्रचुर धन लेकर हमारे पास आओ । इन्द्र, तुम दूर देश और निकटसे आकर हमारे साथ मिलो । तुम दूर और निकट प्रदेशों, यज्ञ-विधीके सिद्धि, हमारी रक्षा करो । यज्ञ-निर्वाह करके सदा हमें पालित करो ।

१० इन्द्र, जिस धनमें हमारी आपदाका उद्धार हो सकता है, उसी धनमें हमारा उद्धार करो । तुम उग्र-रूप हो । जैसी मित्रकी महिमा है, हमारी रक्षाके लिये तुम्हारे भी उसी की महिमा हो । हे बलवत्तम, हमारे रक्षक, प्राता और अमर इन्द्र, किसी भी स्थान चढ़कर आओ । शत्रु-रक्षक इन्द्र, मैं तुम्हारे मित्रका याचा दो । शत्रु-भक्षक, अतीव कुर्मी शत्रुको बाधा दो ।

पाहि न इन्द्र सुष्टुत क्षिप्रोऽवयाता सवमिदं मुनीनां देवः सन्बुर्मतीनाम् ।

इन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।

अधाहि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोऽदणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥



११० सूक्त । इन्द्र-देवता । त्रिष्टुप् और अत्यष्टि छन्द ।

एन्द्रयाह्नु प नः परावतो नायमच्छा विद्वथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।

हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।

पुत्रासो न पितरं वाजसातये महिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥

पिबा सोममन्द्रं सुवानमद्रिभिः कोशेन सिद्धमवतं न वंसगस्तृपाणो न वंसगः ।

महाय इयंताय ते तुविष्टमाय धायसे ।

आ त्वा वच्छन्तु हरितो न सूर्यमहाविश्वेव सूर्यम् ॥२॥

अविश्वद्विषो निहतं गुहानिधिं वेन गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।

व्रजं वज्रो गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।

अपावृणोदिय इन्द्रः परीवृताद्वार इयः परीवृताः ॥३॥

११ शोभन स्तुतिसे युक्त इन्द्र, दुःखसे हमें बचाओ; क्योंकि तुम सदा दुष्टोंको नीचा दिखाते हो । हमारी स्तुतिसे ब्रह्मण होकर यज्ञ-विप्रकारियोंको दमन करो । तुम पाप-राक्षसके हन्ता और हमारे समान बुद्धिमानोंके रक्षक हो । जग-निवास इन्द्र, इसीलिये परमेश्वरने तुम्हें उत्पन्न किया है । निवास-प्रद इन्द्र, राक्षसोंके विनाशके लिये तुम्हारे उत्पत्ति हुई है ।

१ जैसे यज्ञशालामें ऋत्विगोंके पति यजमान हैं और जैसे नक्षत्रोंके पति चन्द्र अस्ताचल जाते हैं, वैसे ही तुम भी, पुरोवर्ती सोमकी तरह, स्वर्गसे हमारे पास आओ । जैसे पुत्र लोग, अन्न-भक्षणके लिये पिताको बुलाते हैं, वैसे ही तुम्हें हम सोमाभिषवमें बुलाते हैं । ऋत्विगोंके साथ इष्ट्य ग्रहणके लिये महान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ जैसे शोभनगति वृषभ पिपासित होकर कूप-जलका पान करता है, हे' रमणीयगति इन्द्र, वैसे ही तृप्ति, पराक्रम, महत्त्व और आनन्दोत्पत्तिके लिये प्रस्तर द्वारा अभिषुत और जल-सिक्त अथवा दद्यापवित्र द्वारा शोचित सोमरस पान करो । जैसे हरि नामक अश्व सूर्यको लाते हैं, वैसे ही तुम्हारे अश्वगण प्रतिदिन तुम्हें ले आवें ।

३ जैसे चिड़ियां दुर्गम स्थानमें अपने बच्चोंकी रक्षा करके उन्हें प्राप्त करती वा बच्चोंवाली होती हैं, वैसे ही इन्द्रने भी अत्यन्त गोपनीय स्थानमें स्थापित और अनन्त तथा महान् प्रस्तर-राशिमें परिवेष्टित सोमरसको स्वर्गसे प्राप्त किया । अङ्गिरा लोगोंमें अग्रगण्य वज्रधारी इन्द्रने जैसे पहले, सोमपानकी इच्छासे, गोशालाको प्राप्त किया था, वैसे ही सोमरसको भी पाया । इन्द्रने चारों ओर मेघावृत और अन्नके कारण जलके द्वारोंको खोलते हुए पृथिवीमें चारों ओर अन्न बिस्तार किया ।

दाहृदाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षत्रेव तिग्ममसनाय संश्रयदद्विहत्वाय संश्रयत् ।
 संविध्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्जना ।
 तष्टेव वृक्षं वनिनो निवृक्षसि परश्वेव निवृक्षसि ॥४॥
 त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेच्छा समुद्रमसृजो रथां इव वाजवतो रथां इव ।
 इत ऊतीरयुजत समानमर्थमक्षितम् ।
 धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥
 इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीः स्वपा अतक्षिपुः सुज्ञाय त्वा मतक्षिपुः ।
 शुम्भ्यस्तो जेभ्यं बधा वाजेष क्षिप्र वाजिनम् ।
 अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वाधनानि सातये ॥६॥
 भिन्नत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुपे नृतो वज्रेण दाशुपे नृतो ।
 अतिथिन्वाच शम्बरं गिरिक्रो अवामरत् ।
 महो धनाभि दधमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

४ इन्द्र दोनों हाथोंमें अच्छी तरह वज्र धारण करके, शत्रु के प्रति फेंकने के लिये, वज्र के तीक्ष्ण होनेपर भी, जैसे मंत्रों द्वारा जलको तीक्ष्ण किया जाता है, वेमे ही उमे और भी तीक्ष्ण करते हैं; वृत्र-विनाशके लिये और भी तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र, जैसे वृक्ष काटनेवाले वृक्षको काटते हैं, वेमे ही तुम अपनी शक्ति, तेज और शरीर-बलसे वर्द्धित होकर हमारे शत्रुओंका वध करने हो, मानों फरसेसे काटते हो ।

५ इन्द्र, तुमने, समुद्रकी ओर गमन करनेके लिये, रथकी तरह, नदियोंको अनायास बनाया है। जैसे बौद्धा रथको बनाते हैं, वेमे ही तुमने भी बनाया है। जैसे मनु के लिये गाथें सर्वायुषाता हैं और जैसे समर्थ मनुष्यके लिये गाथें सर्वदुःख-प्रद हैं, वेमे ही हमारी अभिमुखिनी नदियां एक ही प्रयोजनसे जल संग्रह करती हैं ।

६ जैसे कर्म-कृष्णक और धोर मनुष्य रथ बनाता है, वेमे ही धनाभिलाषी मनुष्योंने तुम्हारी यह स्तुति की है। उन्होंने अपने कल्याणके लिये तुम्हें प्रसन्न किया है। जैसे संसारमें दिग्विजयीकी प्रशंसा की जाती है, वेमे ही हे मेघावी और दुर्धर्ष इन्द्र, उन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की है। जैसे संग्राममें अश्वकी प्रशंसा होती है, वेमे ही बल, धनरक्षण और सारे मंगलोंकी प्राप्तिके लिये तुम्हारी प्रशंसा होती है।

७ संग्राम-कालमें नृत्यकर्ता इन्द्र, तुमने इविःप्रद और अमोघ-दाता दिवोदास राजाके लिये नञ्चे नगरोंको गच्छ किया था। नृत्यशील इन्द्र, तुमने वज्र द्वारा नष्ट किया था। उग्र इन्द्र, तुमने अतिविशेषकर दिवोदास राजाके लिये पर्वतसे शम्बर अश्वको नीचे पटक था और दिवोदास राजाके लिये अपनी शक्तिसे अगाध धन दिया था—और क्या, सारा धन दिया था ।

इन्द्रः समस्तु यजमानमार्यं प्रोक्षिष्युः ॥ स्मृतवाजिषु स्वर्मीह वाजिषु ।
 मनवे शासद्वतान् स्वचं कृष्णमवन्धयन् ।
 दक्षन्निष्वं तत्प्राणशोषात् व्यशान्नमायति ॥८॥
 सूश्चक्रं प्रवृहज्जात ओजसा प्राणतये वा समरणा मुपायनीशान् आमुषार्यान्
 उशनायन् परावता जगन्मृतये कृणुः ।
 सुस्रानि विश्वा मनुष्येव मुपायगृहं ॥९॥
 स नो नव्योभिवृषकर्मन्नुक्थः पुरां दतः प्रायुभिः पाहि शर्मैः ।
 दिवोदासंभिरिन्द्रस्तवानां वावृधोश्वा अयोमोयव द्यौः ॥१०॥

१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्याष्ट छन्दः ।

इन्द्राय हि द्यौरसुगो अनस्रतेन्द्राय मन्त्रं वृषिणी वरीममिच्छन्सनाता वरीमसि ।
 इन्द्रं विश्वे सजापसा देवासां दधिर्गं पुर ।
 इन्द्राय विश्वा सवतान् मानुषा रतानि ॥१॥

८- सुब्रह्मे इन्द्र आर्य यजमानकी रक्षा करने हेतु । मनुष्य या यज्ञी का रक्षक इन्द्र मनुष्य युद्धों में उसकी रक्षा करते हैं । छलकारी युद्धों में उसकी रक्षा करते हैं । इन्द्र मनुष्यों के लिये वर-शुभ वृषिणीका शासन करते हैं । इन्द्र ने कृष्ण नामके अक्षरकी काली त्वचा उधाड़कर उसका (अंशुमती नदीक) रक्त पी लिया । इन्द्रने उसे जला डाला । इन्द्रने सारे हिसकोको जला डाला । उन्होंने समस्त निष्पूर व्यक्तियोंको मरानेवादा किया ।

९- सूर्यका रथ-चक्र ग्रहण करनेपर इन्द्र ने शरणागत हो कर छुड़े । इन्द्रने उन चक्रको फँसा और अरुणवर्ण-रूप धारण करके, शत्रुओंके पास जाते हुए उनके चक्रका रक्त पी लिया । समस्तियारक इन्द्रने उनके वाक्पका हरण कर लिया । वीरकर्मा इन्द्र, उशनाकी रक्षा करनेवाला । इन्द्रने मनुष्य-जाति को पाले, धर्म ही हमारे समस्त सुख-साधन धनके साथ हमारे पास शीघ्र आओ । दूधरक्त पालनेवाला इन्द्रने हमारे पास प्रतिदिन आते हो ।

१०- जल-वर्षक और नगर-निर्माता इन्द्र, इन्द्र ने नगर-राज्य के लिये विश्व प्रकारकी रक्षा और सुख देते हुए हमें प्रतिपालित करो । इन्द्र दिवोदासके गोपत्र है, हमें दारुणता से रक्षा करो । हमें, सूर्यका तरह, प्रवृद्ध हो जाओ ।

१ विशाल ध्रुलोक स्वयं इन्द्रके पास नत हुआ है । विष्णुवा पृथिवी वरणीय या स्वीकरीय स्तुति द्वारा इन्द्रके पास नत हुई है । अन्नके लिये यजमान लोग वरणीय द्रव्य द्वारा नत हुए हैं । सारे देवोंने एक मतसे इन्द्रको अपनी किया है । मनुष्योंके सारे यज्ञ और मनुष्योंके सारे दान आदि इन्द्रके सुखके निमित्त हैं ।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।

तं त्वा नाथं नर्पयिषिं शृषस्य धुरि धीमहि ।

इन्द्रं न यज्ञैश्चिन्त्यन्त आयवः स्तोमेभिर्गिन्द्रमायवः ॥२॥

वि त्वा ततस्त्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सश्रन्त इन्द्र निःसृजः ।

यद्गव्यन्ता द्वे जना स्वर्यन्ता समूहसि ।

आविष्करिकद्रूपं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः साव्यहानो अवातिरः ।

शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवस्वरूपे ।

महीममुष्णाः पृथिवामिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥

आदिते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सवीयनो यदाविथ ।

चकथ कारमेभ्यः पृतनासु प्रचन्तव ।

ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णतः श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५॥

२ इन्द्र, तुम्हारे पास अभिमत फलकी प्राप्तिके आशय प्रत्यक्ष मनुष्य यज्ञमन्त्रों द्वारा तुम्हें इव्य प्रदान करते हैं । तुम सबके लिये समान हो । स्वर्ग-प्राप्तिके लिये केवल तुम्हें ही उत्पन्न दिया जाता है । जिनसे नती पत्र होनेके समय नौका खड़ी की जाती है, वैसे ही हम सेवाके आगे तुम्हें खड़ा करते हैं । यज्ञ द्वारा मनुष्य इन्द्रका ही चिन्ता करते हैं । मनुष्य स्तुति द्वारा इन्द्रकी चिन्ता करता है ।

३ इन्द्र, तुम्हारे सेवक और निष्पाप यत्नमान स्त्री-पुरुष, तुम्हारे वृत्तिको इच्छामें, बहुसंख्यक गोधनकी प्राप्तिके लिये, बहुत इव्य दान करते हुए तुम्हारे उद्देश्यमें यज्ञ-विस्तार करते हैं । वे गोधन चाहते हैं और स्वर्ग-गमनके लिये उत्सुक हैं । तुम उनको अभीष्ट प्रदान करो । इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्धक हो । तुमने अपने सहजन्मा और त्रिर-सहचर वज्रका आविष्कार किया है ।

४ इन्द्र, मनुष्य तुम्हारे महिमा जानने हैं । तुमने जिन यज्ञोंका संवत्सर पर्यन्त गार्ह या परिखा आदिते दृढीकृत नगरियोंको नष्ट किया था, उन्हें पराजित कर विनष्ट किया था—बहु कथा अनुपम जानते हैं । तुल्यपति इन्द्र, तुमने यज्ञ-विघातक मनुष्यका शासन किया था । तुमने यज्ञान पृथ्वी और जलराशि का जीता था । तुमने आनन्दसे जल निकाल लिया था ।

५ इन्द्र, सोमपान कर अमन्य होनेपर मनोरथ-दान बना । चूँकि तुम यत्नमानोंको रक्षा किया करते हो; अपने वन्धुताकामी यत्नमानोंको रक्षा किया करते हो; इसलिये य, तुम्हारी वृद्धिके निमित्त, बार-बार इव्य प्रदान करते हैं । बुद्ध-सुखके भोगके लिये तुमने सिंहवाद किया था । यत्नमान लोग तुमने नाना प्रकारकी आर्य वस्तु पाते हैं; अन्धारी होकर तुम्हारे पास प्राप्त होते हैं ।

उतो नो अस्वा उपसो जुपेतह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीममिः स्वर्षाता हवीममिः ।
 यदिन्द्र हन्तवै मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
 आ मे अस्य वेधसो नवोयसो मन्म श्रुषि नवीयसः ॥ ६ ॥
 त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुग्मिन्नयन्तं तुविज्ञात मर्त्यं वज्रेण शूरमर्त्यम् ।
 जहि यो नो अन्धायनि शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
 रिष्टं न यामन्तपभूतु दुर्मनिर्विश्वापभूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥



१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अष्टाष्टि छन्द ।

स्वया वयं मघवन पूढ्य धन इन्द्रतोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुवाम वनुष्यतः ।
 नेविष्टे अस्मिन्नहस्यधियोवानु सुन्वते ।
 अस्मिन् यज्ञे विजयेमामरेकृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥
 सवर्जये भर आप्रस्य वक्रमन्पुषवधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
 अहन्निन्द्रो यथा विदे शीष्णा शोष्णोपवाध्यः ।
 अस्मन्नाने सध्र्यक् सन्तु रानयो भद्राभन्नस्य रानयः ॥ २ ॥

६ इन्द्र, तुम हमारे प्रातःकालमें यज्ञका आश्रित करोगे क्या ? इन्द्र, आह्वान-मंत्र द्वारा प्रदत्त, पूजाके लिये, हव्यको जानो । आह्वान मंत्र द्वारा आहुत होकर छत्र-भोगक स्थानपर उपस्थित हो जाओ । वज्रयुक्त इन्द्र, निम्नकोके विनाशके लिये अमोघवर्षा होकर जाओ । इन्द्र, मैं मेशावो और नया मनुष्य हूँ; मैं स्तुतिवाला हूँ, मेरा मनोहर स्तोत्र सुनो ।

७ अनेक गुण-विशिष्ट इन्द्र, हे शूर, तुमने हमारी स्तुतिमें वृद्धि पायी है और हमारे प्रति सन्तुष्ट हो । जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुताका आचार्य करता है और जो हमें दुःख पहुँचाना चाहता है, उसे वज्र द्वारा विनष्ट करो । हे सुननेके लिये उत्कृष्टतम इन्द्र, सुनो । इन्द्र, मार्गमें अन्त-मार्ग वरुणिका जो दुर्बुद्धि मनुष्य पीड़ा पहुँचाते हैं, उस प्रकारके सारे दुर्मति मनुष्य हमारे पाससे दूर हो जायें ।

१ हे सुल-संयुक्त इन्द्र, तुम्हारे द्वार रक्षित होकर हम प्रबल वृद्धियोंके सम्पन्न शत्रुओंको परास्त करेंगे । प्रहारके लिये प्रबल शत्रुपर प्रहार करेंगे । इन्द्र, पूर्व-अन-संयुक्त यह यज्ञ निष्कटवर्ती है; इसलिये आज हविर्वाता यजमानके उत्साहके लिये कथा कहो । इन्द्र, तुम युद्ध-जयी हो । तुम्हारे उद्देश्यमें हम हव्य लाते हैं । तुम युद्ध-विजेता हो ।

२ शत्रुवधके लिये इधर-उधर दौड़नेवाले चोर पुरुषोंके स्वर्ग-साधन तथा कपटादि-रहित मार्ग-स्वरूप संघामके आगे इन्द्र, प्रातःकालमें जागे हुए याज्ञिकोंके, शत्रुओंका नाश करते हैं । सर्वशक्ती तरह इन्द्रकी अवनत-मस्तक होकर स्तुति करना सबका कर्तव्य है । इन्द्र, तुम्हारा विद्या धन केवल हमारे ही लिये हो । तुम भद्र हो, तुम्हारा विद्या धन स्थिर हो ।

तत्तु प्रथः प्रकथा ते शुशुकनं यस्मिन् यक्षे वारमकृत्वत क्षयमृतस्य वारस क्षयम् ।

वितद्वोषेरध्वितान्तः पश्यन्ति राक्षसिभिः ।

सघा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्व्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

नु इत्या ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योवृणोरपव्रजमिन्द्र शिक्षन्पव्रजम् ।

पभ्यः समान्यादिह्यास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।

सुम्बद्व्योरन्ध्या कष्पिद्व्यतं हृणायन्तं सिद्व्यतम् ॥ ४ ॥

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयदने हिते तरुषन्त श्रवस्यधः प्रयक्षन्त श्रवस्यधः

तस्मा आयुः प्रजावद्विद्वार्धे अचन्त्योजसा ।

इन्द्र ओवयं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ ५ ॥

युवन्तमिन्द्रापेता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपतन्तिमदुतं वज्रेण तं तामिद्व्यतम् ।

दूरे चत्तावच्छन्तस्त्रहनं वदिनक्षत्

अस्माकं शत्रून् परि शूर विद्वतो दमदिपीष्ट विद्वतः ॥ ६ ॥



३ इन्द्र, पूर्वकी तरह इस समय भी अतीव दीप्त और प्रसिद्ध दृश्य-रूप अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञके निवास-स्थान-स्वरूप हो। जिस अन्न द्वारा श्रुत्विक् लोग स्थान सुशोभित करते हैं, वह अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञकी कथा कहो। ऐसा होनेपर संसार आकाश और पृथिवीके बीच सूर्य-किरण द्वारा देख सकेगा। इन्द्र जलकी गवेषणामें तत्पर हैं। वह अपने बन्धु यजमानोंके लिये गौ होजते हैं। वह उन क्रममें सारी कथाएँ जानते हैं।

४ इन्द्र, पूर्व कालकी तरह तुम्हारा बर्म इस समय भी सबकी इनास्के योग्य है। तुमने अङ्गिरा लोगोके लिये मेघका उदघाटन किया था। तुमने उपहत गो-घनका उद्धार करके उन लोगोंको दिया था। इन्द्र, तुम उक्त ऋषियोंकी तरह आयुर्के लिये युद्ध करते और विजयी बनते हो। जो अभिषव करते हैं, उनके लिये यज्ञ-विघ्नकारियोंको अवनत करते हो। जो वज्र-विघ्नकारी रोष प्रकाशित करते हैं, उन्हें अवनत करो।

५ चूँकि शूर इन्द्र, कर्म द्वारा मनुष्योंके विषयमें यथार्थ विचार करते हैं; इसलिये अन्नाभिलाषी यजमानगण अभिमल घन प्राप्त करके शत्रुओंका विनाश करते हैं। वे अन्नाभिलाषी होकर विशाख रूपमें यज्ञ करते हैं। इन्द्रके उद्देश्यसे प्राप्त अन्न पुत्रादि प्राप्तिका कारण है। अपनी शक्तिमें शत्रुके दिवागणके लिये लोग इन्द्रकी पूजा करते हैं। यज्ञकारी लोग इन्द्रके पास वास-स्थान प्राप्त करते हैं, मानों याज्ञिक लोग देवोंके पास ही रहते हैं।

६ हे इन्द्र और पर्वत या मेघके अभिमानी देव, तुम दोनों अग्रगामी होकर, जो शत्रु हमारे विरोधमें सेना-संग्रह करते हैं, उन सबको विनष्ट करो। वज्र-प्रहार द्वारा उन सबको विनष्ट करो। यह वज्र अन्यन्त दूरगामी शत्रुका भी विनाश करनेकी इच्छा करता और अति गहन स्थानपर भी व्याप्त होता है। शूर इन्द्र, तुम हमारे सारे शत्रुओंको त्रिविध उपायों द्वारा विधीर्ण करते हो। शत्रु-विधारक वज्र विविध उपायोंसे विधीर्ण करता है।

१३३ सूक्त । इन्द्र देवता । इन्द्र विष्टुप्, अनुष्टुप्, गद्यत्री, धृति और अन्यष्टि ।

उभे पुनाम शीवसो ऋतेन द्रुहो दहामि संमही निन्द्राः ।

अभिप्लव्य यत्र हनः अमित्रा वैलस्थानं परितृह्या अशेग्न ॥ १ ॥

अभिप्लव्याचिदद्रिः शार्पा यातु मनीनाम् ।

छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

अवासां मभवज्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।

वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतोभिप्लव्योपावपः ।

तन् सुते मनायति तक्तसु ते मनायति ॥ ४ ॥

पिशुनभृष्टिमभृष्टां पिशाचिभिन्द्र संसृणः सन् २३० तिवर्हय ॥ ५ ॥

अवमह इन्द्र वटूरिणा शर्धो नः शुभो नः तिस्रोः शान्तो नः अद्रिवापुषो नः शीर्षा अद्रिवः ।

शक्तिमन्तमो तिस्रः शुष्मिभिन्त्येवमेव तिस्रः ।

अपूरुषाग्रो अ तीत शूरा सन्तभिन्तिस्मोः शूरा सन्तभिः ॥ ६ ॥

१ मैं आकाश और पृथिवी, दोनोंका, यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ । मैं इन्द्र-शुक्ला और विद्रोहिणी पृथिवीको अच्छी तरह दग्ध करता हूँ । जिस-किसी स्थानपर शत्रुगण एकत्र हुए, वहीं सारे गये । अच्छी तरह विनष्ट होकर वे शमशानकी चारो ओर पड़ गये ।

२ शत्रु-भक्षक इन्द्र, इसावली सेनाका स्त्रि एवत्र वर्णों में तुम उसे विशाल पद द्वारा बंदन करो । तुम्हारा पद महाविस्तीर्ण है ।

३ मभवज् इन्द्र, इस इसानती सेनाका कल रूप कर दो और उसे सुतिता अथवा महान् प्रशान्तमें फेंक दो ।

४ इन्द्र, इस तरह तुमने विगुणित पञ्चाश सेनाओंका नाश किया है । तुम्हारे इस कार्यको लोग बहुत पसन्द करते हैं । तुम्हारे लिये यह कार्य सामान्य है ।

५ इन्द्र, कुछ शक्तवर्ण, अति भयंकर और शत्रुकारी पिशाच य अनाथोंको विनाश करो और समस्त राक्षसों या अनाथोंको समाप्त करो ।

६ इन्द्र, तुम विशाल मेघको, निम्न मुख करके, विद्रोण करो । हमारी बात सुनो ! मेघ-युक्त इन्द्र, जैसे धान्य न होनेसे डरके मांग पृथ्वी शोक करती है, वैसे ही स्वर्ग भी शोक करता है । मेघ-संपन्न इन्द्र, पृथिवी और स्वर्गका मध्य दीप्ति अग्नि की मूर्तिकी तरह है । इन्द्र, अपने बलसे तुम महाययी हो; इसलिए तुम अत्यन्त क्रूर बधोपायका आश्रय करते आ रहे हो । यज्ञमन्त्रोंका विनाश नहीं कर सकते । तुम शूर से अत्यन्त तुम्हारे उपर आक्रमण नहीं कर सकते । तुम इकीस अनुवर्गोंसे युक्त हो । १९

७ कदाचित् ये इकीस अनुवर मरुद्गण हैं ।

वनोति हि सुन्वान् क्षयं परीणसः सुन्वानो हिष्मा यजत्यवद्विपो देवानामवद्विपः ।

सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।

सुन्वानयेन्द्रो ददात्याभुवः यि ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥



२० अनुवाक । १३४ सूक्त । वायु देवता ।

आ त्वा जुवो शरदाणा अभिप्रथो वायो वहन्विनः पूर्वपोतये सोमस्य पूर्वपीतये ।

ऊर्ध्वानि अनु सूनृता मनस्विष्ठनु जानतो ।

नियुत्वता रथेनाथाहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायवन्दवोस्मन् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।

यज्ञ क्राणा इरध्यै दक्षे सत्तन्त ऊतयः ।

सधीर्चीना नियुतो दावने धिय उपब्रूवत ईन्धियः ॥२॥

वायुर्युक्ते रोहिता वायुररुणः वायू रथे अजिरा धुरिवोहवे वहिष्ठा धुरिवोहवे ।

प्रबोधतः पुरन्धि जा आससतीमिव ।

प्रचक्षरौदसी वासयोपसः श्रवसे वासयोपसः ॥३॥

७ इन्द्र, अभिषव करवाला यजमान गृह प्राप्त करता है । सोमयज्ञ करनेवाला चारो ओरके शत्रुओंका विनाश करता है । देव-शत्रुओंका भी विनाश करता है । अन्नवाला और शत्रुके आक्रमणसे शून्य अभिषवकर्ता अपरिमित धन प्राप्त करता है । इन्द्र सोमयाजक यजमान चतुर्दिक् उत्पन्न और अति समृद्ध धन प्रदान करता है ।

१ वायुदेव, शीघ्रगामी और बलवान् अश्व तुम्हें, अन्नके उद्देश्यसे और देवोंके बीच प्रथम, सोमपानके लिये, इस यज्ञमें ले आवे । हमारी प्रिय, सत्य और उच्च स्तुति अच्छी तरह तुम्हारे गुणकी व्याख्या करती है । वह तुम्हें अभिमत हो । यज्ञके इन्धकी स्वीकृति और हमें अभीष्ट देनेके लिये नियुत नामक अश्वोंमें युक्त रथपर आओ ।

२ वायु, मादकतोषादक, हर्षजनक, सम्यक् प्रस्तुत, उज्ज्वल और मन्त्र द्वारा हृष्टमान सोमविन्दु तुम्हारे सामने आकर हर्ष उत्पन्न करे; क्योंकि कर्म-कुशल, प्रीतियुक्त, निरन्तर सहगामी नियुत, तुम्हारा उत्साह देखकर, इन्ध ग्रहणके लिये, तुम्हें यज्ञभूमिमें लानेके लिये मिलते हैं; बुद्धिमान् यजमान लोग तुम्हारे पास आकर रथोगत भाव व्यक्त करते हैं ।

३ भारवहनके लिये वायु लोहितवर्ण अश्व योजित करते हैं । वायु अरुणवर्ण अश्व योजित करते हैं । वायु अजिर-वर्ण या शमनशील अश्व योजित करते हैं; क्योंकि, ये भारवहनमें अत्यन्त समर्थ हैं । जैसे थोड़ी निद्रामें आयी स्त्रीको उसका आसक्त जगा देता है, उसी तरह तुम भी बहुयज्ञ-प्रबोधित यजमानको जगाते हो । तुम अश्वों और पृथिवीको प्रकाशित करने हो । उषाको स्थापित करते हो । इन्ध ग्रहणके लिये उषाको स्थापित करते हो ।

तुभ्यमुखासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते वंसुराश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
 तुभ्यं घेनुः सवर्षुं वा विश्वा वसूनि दोहते ।
 अजनपो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आवक्षणाभ्यः ॥४॥
 तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इपणन्त भुवण्यपामिपन्तु भुवर्षणि ।
 त्वात्सारी वसमानो भगमीदृ वक्रवीये ।
 त्वं विश्वस्माद्भवनात् पांसि धर्मणा सूर्यात् पांसि धर्मणा ॥५॥
 त्वं नो वायवेयामपूर्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
 उतो विह्वलमतीनां विशां ववर्जुपीणाम् ।
 विश्वा इत्ते धेनवा दुह आशिरं घृतं दुहत आशिरम् ॥६॥



१३५ सूक्त । वायु देवता । अत्यष्टि छन्द ।

स्तीर्णं बहिरूप नो याहि वीतये सहस्रण नियुता नियुत्वते शस्तिनीभिर्नियुत्वते ।
 तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय योमरे ।
 प्र ते सुतासो मधुमन्ता अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

४ होतियुक्त उपाय, दूर देशमें, तुम्हारे ही लिये, घरांका ठकनेवाला किरणोंसे कल्याणकर वस्त्रका विस्तार करती हैं; नवी किरणोंसे विचित्र वस्त्रका विस्तार करती हैं । अमृत बरसानेवाली गायें तुम्हारे ही लिये समस्त धन दान करती हैं । तुमने वर्षा और नदियोंके उत्पादनके लिये अन्तरीक्षसे मरुतोंको उत्पादित किया है ।

५ बीस, शुद्ध, उग्र और प्रवाहशाली सोम, तुम्हारे आनन्दके लिये आहुवनीय अग्निके पास जाता है और जलभार-बाहक मेघकी आर्काक्ष करता है । वायु, यजमान लोग, अत्यन्त भीत और क्षीणकाय होकर चारोंके हृदयके लिये तुम्हारी पूजा करते हैं । हमारे धार्मिक होनेसे हमें सारे भूतोंसे रक्षा करो । हमें, धर्म-संयुक्त होनेके कारण, अक्षरोंसे रक्षा करो ।

६ वायु, तुमसे पहले किसीने सोमपान नहीं किया है । तुम्ही पहले हमारे इस सोमपानको करनेके योग्य हो; अभिपूत सोमपान करने योग्य हो । तुम इवनकर्ता और निष्पाप लोगोंका हृद्य स्वीकार करते हो । सारी गायें तुम्हारे लिये दूध देती हैं और तुम्हारे लिये घी भी देती हैं ।

१ नियुक्त अन्वयासे वायु, तुम कितने ही नियुतापर चढ़कर, अपने लिये प्रस्तुत हृद्यके भक्षणके लिये, हमारे निज्याये कुशोंपर आओ । असंख्य नियुतापर चढ़कर आओ । तुम नियुतवाले हो । तुम्हारे पहले पान करनेके लिये अन्व देवता पुण हैं । अभिपूत मधुर सोम तुम्हारे आनन्दके लिये है, यज्ञ-सिद्धिके लिये है ।

तुभ्यार्य सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पर्हावसानः परिक्रीशमर्षति शुक्रावसानो अर्पति ।
 तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
 वह वायो नियुतो याहास्मयुर्जृषाणो याहास्मयुः ॥ २ ॥
 आ नो नियुजिः क्षतिनोभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
 तवायं भाग अतिवहः सरश्मिः सूर्य सचा ।
 अध्वर्युर्मिर्मरमाणा अयं सत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
 आवां रथो नियुत्वान्वक्षद्वसेभि प्रयांसि सुचिनानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
 पिबतं मध्वो अश्वसः पूर्वपेयं हि वीहितम् ।
 घायवा चन्द्रेण राधसागतमिन्द्रश्च राधसागतम् ॥ ४ ॥
 आ वां धियो ववृत्युरध्वरा उपेममिन्दं ममृजन्त वाजिनमाशुमर्त्यं न वाजिनम् ।
 तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
 इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्यवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥
 इमे वां सोमा अप्सवा सुता इहाध्वर्युर्मिर्मरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
 एते वामन्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
 युवायवोति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

२ वायु, तुम्हारे लिये, पत्थरसे परिशोधित और आर्काक्षणीय तथा तेजः-सम्पन्न सोम अपने पात्रमें जाता है; शुक्र तेजसे संयुक्त होकर तुम्हारे पास जाता है। मनुष्य लोग देवोंके मध्य तुम्हारे लिये यही छन्दर सोम प्रदान करते हैं। वायु, तुम हमारे लिये नियुक्त अर्वाको जोतो और प्रस्थान करो। हमारे ऊपर अनुग्रह कर और प्रसन्न होकर प्रस्थान करो।

३ वायु, तुम सैकड़ों और हजारों नियुतोंपर सवार होकर अभिमत-सिद्धि और इष्ट भक्षणके किये हमारे यज्ञ-में उपस्थित हो। यही तुम्हारा लेने योग्य हिंसा है; यह सूर्यके तेजसे तेजस्वी है। अतिवहके हाथका सोम लेणर है। वायु, पवित्र सोम लेणर है।

४ हमारी रक्षाके लिये, हमारे सुगृहीत अन्न-भक्षणके निमित्त और हमारे इष्टकी सेवाके लिये, हे वायु, नियुक्ते युक्त रथ तुम दोनों (इन्द्र और वायु) को ले आवे। तुम दोनों मधुर सोमरस पान करो। पहले पान करवा हो तुम लोगोंके लिये ठीक है। वायु, मनोहर घनके साथ आओ। इन्द्र भी घनके साथ आव।

५ हे इन्द्र और वायु, हमारे मन्त्र आदि तुम कावार्त यज्ञमें आनेके लिये प्रेरित करते हैं। जैसे बीजगामी अरवको परिमार्जित किया जाता है, वैसे ही कठपुले लिये हुए सोमको अतिवह-लोग परिमार्जित करते हैं। अध्वर्युओंका सोमपान करो। हमारी रक्षाके लिये यज्ञमें आओ। तुम दोनों अन्नदाता हो; इसलिये हमारे प्रति प्रसन्न होकर, आनन्दके लिये, पत्थरके टुकड़ोंसे अभिवृत्त सोम पान करो।

६ हमारे इस यज्ञ-कार्यमें अभिवृत्त और अध्वर्युओं द्वारा गृहीत सोम निश्चय ही तुम्हीं दोनोंका है। यह वीत सोम निश्चय ही तुम लोगोंका है। यह यथेष्ट सोम निश्चय ही तुम्हारे लिये देव सोमाधार कुशमें परिष्कृत हुआ है। तुम्हारा सोम अश्विन लोगोंको कौंकर प्रभु परिमाणमें जाता है।

अत वायो ससता याहि शश्वनो यत्र प्रधा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
 विष्मन्ता दृष्टे रीयते घृतमापूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥
 अत्राह तद्देह्यं मध्व आहुतिं यमश्चत्यमुपतिप्रन्त जायवोस्मेते सन्तु जायवा ।
 साकां गावः सुवतं पच्यते यवाने त्राय उपदस्यन्ति धेनवोः नापदस्यान्त धेनवः ॥ ८ ॥
 इमे ये ते सुवायो बाह्वजसाः तनूदा न पतयन्त्युक्ष्णो महि बाधन्त उक्ष्णः ।
 धन्वश्चिषो अनाशवो जाराश्चदागरीकसः ।
 सूर्यस्येव षमयां दुनियन्तवो हस्तयादुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥



१३६ सूक्त । मित्रावरुण देवता । अत्यष्टि और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रसुज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्मा हव्यं मतिं भरता मृडयद्भ्यां स्वादिष्टं मृडयद्भ्याम् ।
 ता सघ्राजा घृतासुती यज्ञं यज्ञ उपस्तुता ।
 अथैनाः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषं देवत्वं नृचिदाधृषं ॥ १ ॥

७ वायु, तुम निद्रा में यजमानोंको अधिकम करके उस गृहमें जाओ, जिस गृहमें प्रस्तरका शब्द होता है । इन्द्र भी उसी गृहमें जायें । जिस गृहमें प्रिय और सत्य स्तुतिका उच्चारण होता है, जिस घरमें घृत जाता है, उसी यज्ञस्थानमें मोटे नियुत घोड़ोंके साथ जाओ । इन्द्र, वहाँ जाओ ।

८ हे इन्द्र और वायु, तुम इस यज्ञमें मधुके समान उस आहुतिको धारण करो, जिसके लिये विजेता यजमान पर्वत आदि प्रदेशमें जाते हैं । हमारे विजेता लोग यज्ञके निर्वाहके लिये समर्थ हैं । इन्द्र और वायु, गायें एक साथ वृष देती हैं और पर्वत बनाया द्वार तैयार होता है । ये गायें न ता कम हाँगा, न नष्ट होगी ।

९ वायु, ये जो तुम्हारे बलशाली, नौजवान बेलकिले समान और अत्यन्त दृढ़-पुष्ट वाद हैं, वे तुम्हें स्वर्ग और पृथिवीमें ले जाते हैं; ये अन्तरिक्षमें भी देर नहीं करते; ये बहुत शांतिप्राप्त हैं; काँटसे भी इनकी गति नहीं रुकती । सूर्य-किरणोंकी तरह इनकी गतिको रोकना दुःसाध्य है । हाथोंसे इनकी गतिको रोकना कठिन है ।

१ ऋत्विक्प्राण, चिरन्तन मित्रावरुणको लक्ष्य कर प्रशंसनीय और प्रबुद्ध सेवा करो । उन्हें हव्य देनेमें कुत-निश्चय बनो । मित्रावरुण यजमानोंको सुख देनेमें कारण हैं । वे स्वादिष्ट हव्यका भक्षण करते हैं । वे सज्जात हैं । उनके लिये घृत गृहीत होता है । प्रतिपक्षमें इनकी स्तुति होती है । इनकी क्तिका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता । उनके देवत्वमें किसीको सन्देह नहीं होता ।

अदशि धातुर्गवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयन्त रश्मिभिश्चर्भर्गम्भ रश्मिभिः ।
 धुक्षं मित्रस्य साद्वनमयेष्णो वरुणस्य च ।
 अथा दधाते बृहदुक्थ्यम् वय उपस्तुष्यं बृहद्रथः ॥ १ ॥
 ज्योतिष्मतीमदिति धारयत्क्षिति स्वर्धनीमासन्नेने दिवेदिवे जायुवांसा विवेदिवे ।
 ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदिक्का इनुनस्पती ।
 मित्रस्तयोवरुणो यावयज्जनायमा यातयज्जनः ॥ २ ॥
 अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः भामो भूत्ववपानेष्वामगो देवा देवेष्वामगः ।
 तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
 तथा राजाना करथो यदोमह ऋतावाना यदोमहे ॥ ३ ॥
 यो मित्राय वरुणायविज्जनांनर्वाणं तं परिपातो अंहसा दाश्वंसं मर्तमंहसः ।
 तमर्यमामिरक्षस्यज्यन्तमनुमनम् ।
 ऊर्ध्वैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमेराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥
 नमो दिवे बृहते रादसोभ्यां मित्राय वोवं वरुणाय मोदन्तुपं सुवृत्रोक्ताय मोदन्तुपे ।
 इन्द्रमग्निमुपस्तुहि चक्षुर्मर्यमणं भगम् ।
 ज्योर्जीवन्तः प्रजया सन्धेमहि सामभ्योती सन्धेमहि ॥ ६ ॥

२ अष्ट उषा विस्तृत यज्ञकी और जाती है—ऐसा देखा गया । शीघ्रगामा सूर्यको पथ व्याप्त हुआ । सूर्य-किरणोंमें मनुष्यकी आँखें खुलीं । मित्र, अयमा और वरुणक उज्ज्वल गृह प्रकाशमें परपूर्ण हुए; हम लिये तुम दोनों प्रकाशनीय और बहुत अन्न धारण करा । प्रकाशनीय और प्रभूत अन्न धारण करो ।

३ यजमानने ज्योतिष्मता, सम्पूर्ण-लक्षणा और स्वर्ग-वर्द्धयिता वेदों सेवार को । तुम लोग सदा जागरूक रहकर और प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होकर तज और बल प्राप्त करा । तुम लोग अदितिक पुत्र और सर्व-प्रकार दानके कर्ता हो । मित्र और वरुण लोगोंका अच्छे व्यापारमें लगाते हैं । अयमा भी ऐसा करते हैं ।

४ मित्र और वरुणक लिये यह साम प्रमन्नता-दायक हो । वे दोनों जीवे मुँह करके हमें पान करें । दीप्यमान सोम देवोंकी सेवाक उपयुक्त हैं । सार देवगण अश्व प्रसन्न होकर हमें पियें । प्रकाशवाली मित्र और वरुण, हम कंसी प्रार्थना करते हैं; वेसा हो करा । तुम लोग सन्ध्यादाश हो; हम जिनके किये प्रार्थना करते हैं, उमे करो ।

५ जो व्यक्ति मित्र और वरुणकी सेवा करता है, उसे तुम पापमें बचाओ । दुष्ट-सूच्य और दुष्कृतात्मा मनुष्यको सारे पापोंसे बचाओ । उस वरुण-धर्मात्मा व्यक्तिको, उसका वरुण अश्वकर, अयमा रक्षा करने हैं । वह वरुणाम मंत्र द्वारा मित्रावरुणका व्रत ग्रहण करता और स्तोत्र द्वारा उसकी रक्षा करता है ।

६ मैं प्रकाशवाली और महान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ । पृथिवी, आकाश, मित्र, वरुण और स्वर्गको भी नमस्कार करता हूँ । ये सब अमोघ फल और सुखके दाना हैं । इन्द्र, अग्नि, दोसिमान् अयमा और अगकी स्तुति करो । हम बहुत दिनों जोर निश्चयात्मिका बुद्धिसे बिरे रहेंगे । इसी प्रकार सोम द्वारा हम रक्षित होंगे ।

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो भरुङ्गिः ।
अग्निमित्रो वरुणः शमेयसन्तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥



• हमने इन्द्रको प्राप्त किया है । हमारे ऊपर भरुङ्गगण कृपा करते हैं । देवता लोग हमें बचावें । इन्द्र, अग्नि मित्र और वरुण हमारे लिये सख्ताता हों । हम अन्नने संयुक्त होकर इसी सख्ता भोग करें ।

प्रथम अध्याय समाप्त



२ अध्याय



१३० सूक्त । मित्रावरुण देवता । अतिशक्ती छन्द ।

सुषुमायातमाद्रिमर्गात्राता मत्सरा इमे सामासां मत्सरा इमे ।

आ राजाना दिविरुपृशाः मित्रा गन्तमुप नः ।

इमे वां मित्रावरुणा गवांशिरः सोमाः शुक्रा गवांशिरः ॥ १ ॥

इम आयातमिन्द्रवः सोमासां दध्यशिरः सुतासो दध्यशिरः ।

उत वामुपसो बुधिसाकं सूयस्य राशमाभिः ।

सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

तां वां धेनुं नवास्सीमंशुं दुहन्त्याद्रिमिः सोमं दुहन्त्याद्रिमिः ।

अस्मन्ना गन्तमुप नोर्वाश्वा सोमपीतये ।

अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आपातये सुतः ॥ ३ ॥



१३८ सूक्त । पूषा देवता । अत्याष्ट छन्द ।

प्र प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते मांहत्वमस्य तवसां न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।

अर्चामि सुस्रयन्नहमन्त्याति मयोभुवम् ।

विश्वस्य यां मन आयुयुवे मखां देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

१ हम पत्थरके टुकड़ोंसे सोम चुभाते हैं । मित्रावरुण, आओ । दूध-मिला और तृप्ति करनेवाला सोम यही सामन है । यह सोम तृप्त देनेवाला है । तुम राजा, स्वगवासा और हमारे रक्षक हो । हमारे यज्ञमें आओ । तुम्हारे ही लिये यह सोम वृषके साथ मिलाया गया है । दूध-मिलाया सोम विशुद्ध होता है ।

२ मित्रावरुण, आओ । यह तरक सोमरस दहीके साथ मिलाया हुआ है । अभिषुत सोमरस दहीके साथ मिलाया गया है । उषाके उदय-कालमें हो हाँ अथवा सूर्य-किरणोंके साथ हो हाँ—तुम्हारे लिये सोम अभिषुत है । यह छन्दर सोम-रस । मित्र और वरुणके पानके लिये है—यज्ञ-स्थलमें उनके पानके लिये है ।

३ तुम्हारे लिये बहुत रसवाली सोमकलाका, दुग्धवती गायकी तरह, पत्थरके टुकड़ोंसे बँटते हैं । वे प्रस्तर-कवक द्वारा सोमको बँटते हैं । तुम हमारे रक्षक हो । सोम पानके लिये हमारे सामने हमारे पास तुम आओ । मित्र और वरुण, नेताओंने तुम्हारे लिये सोम चुआया है—अच्छी तरह पानके लिये अभिषव किया है ।

१ अनेक मनुष्यों द्वारा पूजित पूषा (सूर्य) देवकी शक्तिकी महिमा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती है । कोई उसे भारना नहीं चाहता । पूषाके स्तोत्रकी विध्वान्त नहीं है । मैं सुख पानकी इच्छासे पूषाकी पूजा करता हूँ । वह सुरत सहारा देते और उत्पन्न करते हैं । पूषा यज्ञवाज है । वह सारे मनुष्योंके मनके साथ मिला जाते हैं ।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृशव ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
 बुधे यस्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मत्पेः ।
 अस्माकमांगूषान्यु स्निनस्कृधि वाजेषु यु स्निनस्कृधि ॥ २ ॥
 यस्य ते पूषन्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तावसा बुभुजिर इति क्रत्वा बुभुजिरे ।
 तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
 अहेलमान उरुशंस सरीमघ वाजेवाजे सरीभव ॥ ३ ॥
 अस्या ऋपुण उप सातये भुवोहेलमानो रविर्वा अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
 ओषुत्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
 नहि त्वा पूषन्तिमन्य आगृणे न ते सख्यमपह वे ॥ ४ ॥



॥३१ सूक्त। विश्वेदेवगण देवता। त्रिष्टुप्, बृहती, अस्पष्टि आदि छन्द।

अस्तु श्रोष्ट पुरो अग्नि धिया दध आनुतच्छर्धो दिव्यं वृणामहे इन्द्रवायू वृणीमहे ।
 यज्ञक्राणा विवस्वति नाभा सन्दाष्टि नव्यसी ।
 अथ प्रसून उपयन्तु धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ १ ॥

२ जैसे शीघ्रगामी घोड़ों की प्रशंसा होती है, वैसे ही, हे पूषन्, मंत्रों द्वारा मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। युद्धमें जानेके लिये तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। जँटही तरह तुम हमें युद्धमें पार करते हो। तुम सब उत्पन्न करनेवाले देवता हो और मैं मनुष्य हूँ; तेरी धानके लिये मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरे बलावेको शक्तिमान् करो और संग्राममें मुझे विजयी बनाओ।

३ पूषन्, तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके विशेष यज्ञ द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हुए स्तोत्र-परायण यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर नाना प्रकारके भोग भोगते हैं। नया सहारा पाकर तुम्हारे पास असख्य धन चाहते हैं। बहुतेक द्वारा स्तवनीय पूषा, हमारा अनादर न करके हमारे सामने आओ और युद्ध-कालमें हमारे अग्रगामी बनो।

४ अज वाहनवाले पूषन्, हमारे लाभके सम्बन्धमें अनादर न कर और दानशील होकर हमारे पास आओ। अजाश्व पूषन्, हम अन्न चाहते हैं। हमारे पास आओ। शत्रु-हन्ता पूषा, शत्रु-पाट करते हुए हम तुम्हारे चारों ओर रहें। वृष्टिदाता पूषा, हम कभी न तो तुम्हारा अपमान करते और न तुम्हारी मित्रताका कभी अपलाप करते हैं।

१ मैंने, अग्निके साथ, सामने अग्निकी स्थापना की है। अग्निकी स्वर्गीय शक्तिकी मैं प्रशंसा करता हूँ। इन्द्र और वायुकी प्रशंसा करता हूँ। चौक पृथिवीकी शक्तिमान् नाभि या यज्ञस्थानकी लज्ज कर नयी अर्थकरी स्तुति बनानी गयी है; इसलिये अग्नि उभे चुन। पश्चात् जैसे हमारे क्रिया-कर्म अन्धान् देवोंके पास जाते हैं, वैसे ही इन्द्र और वायुके पास भी जायँ।

यक्षस्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
 युवोरित्याधि सद्यस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
 धीभिश्चन मनसास्देभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
 युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ध्रानयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्ययवः ।
 युवोर्विश्वा अधिध्रियः पृथश्च विश्ववेदसा ।
 प्रपायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दक्षा हिरण्यये ॥ ३ ॥
 अस्वेति दक्षाव्यु नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
 अधिवांस्थाम बन्धुरे रथे दक्षा हिरण्यये ।
 पथेव यन्तवानुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
 शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
 मा वां रातिरुदसत् कदाचनारुमद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥
 वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्द्रव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
 ते त्वामन्दन्तु दाधने महे चित्राय राधसे ।
 गीर्मिर्गिर्वाहः स्तवमान आगहि सुमृङ्गीको न आगहि ॥ ६ ॥

२ कर्म-कुशल मित्र और वरुण, अपनी शक्ति द्वारा सूर्यके पासमे जो विनाशी जल पाते हो, वह हमें यथेष्ट परिमाणमें देते हो; इसलिये हम क्रिया, कर्म, ज्ञान और सोमसमें आसक्त इन्द्रियोंकी सहायतासे, यज्ञकाकारमें, तुम लोगोंका ज्योतिर्मय रूप देखें।

३ अश्विनीकुमारो, स्तुति द्वारा तुम्हें अपना देवता बनानेकी इच्छा से यजमान लोग श्लोक सुनाते तथा द्रव्य लेकर तुम्हारे सामने जाते हैं। सध्वन-सम्पन्न अश्विद्वय, वे लोग, तुम्हारी कृपासे, सब तरहके धनधान्य और अन्न प्राप्त करते हैं। तुम्हारे सोनेके रथकी नेमियां मधु गिराती हैं। उसी रथपर हव्य ग्रहण करो।

४ दक्षद्वय, तुम्हारे मनकी बात सब जानते हैं। तुम स्वर्गमें जाना चाहते हो। तुम्हारे सारथि लोग स्वर्ग-पथमें रथ योजित करते हैं। निरालम्ब होते हुए भी अश्वगण रथको नष्ट नहीं करते। अश्विद्वय, बन्धुर या बन्धनाधारभूत वस्तुसे युक्त हिरण्यमय रथपर हम तुम्हें बैठाते हैं। तुम लोग सरल मार्गसे स्वर्गको जाते हो। तुम लोग राजाओंको परास्त करते और विशेष रूपसे वृष्टिकी व्यवस्था करते हो।

५ हमारे क्रिया-कर्म ही तुम्हारा धन हैं। हमारे क्रिया-कर्मके लिये दिन-रात अभीष्ट प्रदान करो। न तो तुम्हारा धन बन्द हो और न हमारा।

६ अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्ट-वर्षाके पानके लिये यह सोम अभिषुत हुआ है। यह प्रस्तर-सयक द्वारा अभिषुत हुआ है। सोम पर्वतपर उत्पन्न हुआ है। वह तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। विदिध विदिध्र लाभोंके लिये यथास्थान प्रदत्त सोम तुम्हारी कृतिका साधन करो। स्तुति-योग्य, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। आओ, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आओ।

ओषूणो अने ऋणुहि त्वमीडितो देवेभ्यो वासि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
 यद्वत्यामाङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
 बितां दुहं अर्यमा कर्तरी सचाँ एपतां वेद मे सदा ॥ ७ ॥
 मो पु वो अस्मदस्मितानि पौल्यासना भुधं द्युधानि मोतजारिपुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।
 यद्वश्चित्रं युगे युगे नव्यं घोपादमर्त्यम्
 अस्मासुतन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥
 दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिमनुर्विदुस्ते मे पूर्वं मनुर्विदुः ।
 तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
 तेषां पदेन महानमे गिरंन्द्राग्नी आनमे गिरा ॥ ९ ॥
 होता यशन्ननिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति चेन उश्रभिः पुरुवारिभिरुश्रभिः ।
 जगृभ्मादूर आदिशं श्लोकमद्रं रघन्मना ।
 अधार्यश्चरग्निद्वानि सुक्रतुः पुरुसश्चानि सुक्रतुः ॥ १० ॥
 ये देवांसो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्यैकादश स्थ ।
 अप्सुक्षिप्तो महिनैकादश स्थ ते देवांसो यज्ञमिमं जुपध्वम ॥ ११ ॥

७ अग्नि, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । हमारी स्तुति सुना । दीपमान और यज्ञ-योग्य देवों के पास यजमानकी बात कहना; क्योंकि देवोंने अङ्गिरा लोगोंको प्रसिद्ध धेनु दी थी । जयमा देवों के साथ, स्वर्गोत्पादक अग्निके लिये, उस धेनुका दोहन करते हैं और वह जानते हैं कि, वह धेनु हमारा साथ सम्भव है ।

८ हे मरुतो, तुम्हारा नियम और प्रसिद्ध बल हमें प्राप्त नहीं करे । हमारा धन कम न हो । हमारा नगर क्षीण न हो । तुम्हारा जो कुछ नूतन, विचित्र, मनुष्य-दुर्लभ और शब्द करनेवाला है, वह युग-युगमें हमारा हो । जो धन शत्रु लोग नष्ट नहीं कर सकते, वह हमारा हो । तुम जो दुर्लभ धनको धारण करते हो, वह हमारा हो । जिस धनको शत्रु नहीं नष्ट कर पाते, वह हमारा ही हो ।

९ प्राचीन दधीचि, अङ्गिरा, प्रियमेध कण्व, अश्वि और मनु मेरे जन्मकी बात जानते हैं । ये पूर्व कालके ऋषि और मनु मेरे पूर्व-पुरुषोंको जानते हैं; क्योंकि, महर्षियोंमें वह दीर्घायु हैं और मेरे जीवनके साथ उनका सम्बन्ध है । वे महान् हैं; इसलिये उनकी स्तुति तथा नमस्कार करता हूँ ।

१० होता लोग यज्ञ करें, द्रव्यकी इच्छा करनेवाले देवता रमणीय सोम ग्रहण करें । स्वयं इच्छा करके घृहस्पति प्रभूत और रमणीय सोम द्वारा याग करते हैं । हमने सूर्य देशमें प्रस्तर-स्वयदकी ध्वनि सुनी । सक्रतु यजमान स्वयं जल-धारण करते हैं । वह बहुत निवास-योग्य घर धारण करते हैं ।

११ जो देवता स्वर्गमें ११ हैं, पृथिवीके ऊपर ११ हैं—जब अन्तरीक्षमें रहते हैं, तब भी ११ रहते हैं, वे अपनी महिमाले, बलकी सेवा करते हैं ।

२१ अनुवाक । १४० सूक्त । अग्नि देवता । योंसे १२४ सूक्तोंके उत्पत्तिके पुत्र दार्ढतमा रूपि हैं । त्रिष्टुप छन्द ।

वेदिपदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्रभगायानिमग्नये ।

वस्त्रेणैव वासया मन्मदा शुचि ज्योतीरथं शुक्वर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

अभि द्विजन्म त्रिवृदन्मृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमो पुनः ।

अन्यस्यासा जिह्वा जेत्या वृषान्नन्येन वर्निनो मृष्टवारणः ॥ २ ॥

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तगेने अभिमातरा शिशुम् ।

प्राचाजिह्वं धवसयन्तं तृपुच्छुतमाभ्याक्ष्यं कुपयं वरुनं पितुः ॥ ३ ॥

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसातास ऊजुवः ।

असमना अजिरासो रघुष्यदो वानजृता उपयुज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥

आदस्यते धवसयन्ता वृथेगते कृष्णमर्ध्वं महिवर्षः क्ररिक्ततः ।

यस्सी महीमवनि प्राप्ति ममृशदभिश्चसन् स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥

भूपन्न योधिचभ्रू प नभ्रते वृषेव पत्नीरभ्येति रोषुवन् ।

ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दधिधाव वुर्गमिः ॥ ६ ॥

१ अष्टवयु, वेदोपर बड़े हुए, अपने प्रिय धाम उत्तर वेदोपर, प्रीति-सम्पन्न और प्रकाशशील अग्निके लिये तुम अन्नवान् स्थान या वेदी तैयार करो । उ० पवित्र ज्वातमे संयुक्त, दीप्त वर्ण और अन्धकार-विनाशो स्थानके ऊपर, वस्त्रकी तरह, मनोहर कुशको बिछाओ ।

२ द्विजन्मा या दा कष्टोंक मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि आज्य, पुरोडाश और सोम नामके तीन अन्नोंको सम्मुख लाकर खाते हैं । अग्निके द्वारा भक्षित धन-धान्यादि, संवत्सरके बीच, फिर बढ़ जाते हैं । अभीष्टवर्षी अग्नि, एक ही रूप धारण कर, मुख और जिह्वाको सहायतासे, बढ़ते हैं । अग्नि दूसरे प्रकारका रूप धारण करके, सबको दूर करके, वन-वृक्षोंको जलाते हैं ।

३ अग्निके दोनों काष्ठ चलते हैं । कृष्णवर्ण होकर दोनों ही एक ही कार्य करते हैं और शिशु अग्निको प्राप्त होते हैं । शिशुको शिखारूपणो जिह्वा पूर्वोत्तिमुत्थिनी है । यह अन्धकारको दूर करते हैं । शीघ्र उत्पन्न होते हैं । धीरे-धीरे काष्ठ-चूर्णोंमें मिलते हैं । बहुत प्रयत्नसे इनकी रक्षा करना होती है । यह रक्षकोंको समृद्धि देते हैं ।

४ अग्निकी शिखाएँ लघुगति, कृष्णमात्रों या शीघ्रकारिणी, अस्विरचित्ता, गमनशीला, कम्पन-शीला, वायुवाहिका, व्यासि-संयुक्ता, मोक्षप्रदा और मनस्वी यज्ञमानकी उपयोगिनी हैं ।

५ जिस समय अग्नि गर्जन करके श्वास फेंककर बार-बार विस्फूर्ण, पृथिवीको छूकर, शब्द करते हैं, उस समय अग्निके सारे स्फुलिङ्ग, एक साथ, चारों ओर जाते हैं । वे अन्धकारका विनाश कर चारों ओर जाते और कृष्णवर्ण मार्गमें उज्ज्वल रूप प्रकाशित करते हैं ।

६ अग्नि, पीले औषधोंको भूषित करके, उनके बीच, चरते हैं । जैसे वृषभ गायोंकी ओर दौड़ता है, वैसे ही, शब्द करते हुए, अग्नि दौड़ते हैं । क्रमशः अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको प्रकाशित करते हैं । दुर्लभ रूप धारण करके अथर्व पशुकी तरह सींग घुमाते हैं ।

स संस्तिरो विष्टिरः सङ्गृभायति जानन्नेव जानतीनिस्थ आशये ।
 पुनर्वर्द्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्षः पित्राः वृण्वते सचा ॥ ७ ॥
 तमप्रुषः केशिनाः संतिरेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुमेघ्रपीः प्रायवे पुनः ।
 तासां जरां प्रमुञ्चन्तेति नानददसुम्परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
 अधोवासं परिमातृरहन्नहतुचिप्रोभिः सत्वभिर्याति विज्ञयः ।
 वयो दधत् पवते रेरिहत् सदानु श्येनी सत्ते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
 अस्माकमग्ने मघवन्सु दीदिह्यध इवसीवान् वृषभो दमूनाः ।
 अवास्या शिशुमतीग्दीर्घमैव युत्सु परिजभुं राणः ॥ १० ॥
 इदमग्ने सुभितं दुर्धितादधि प्रियादुविन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
 यस्ते शुक्रं तन्वो रोचते शुनितेनास्मभ्यं वनसे रत्नमात्वम् ॥ ११ ॥
 रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पठ्मती रास्यग्ने ।
 अस्माकं वीरां उत नो मघो नो जनांश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥

● अग्नि कभी छिन्नकर, कभी विराट् होकर औषधोंका व्याप्त करते हैं, मानों यजमानका अभिप्राय जानकर ही जानी अभिप्राय जाननेवाली शिलाको आश्रित करते हैं। शिवाएँ, किंवा बड़कर, याग-योग्य अग्निको ध्यास करती हैं एवं सब मिलकर पृथिवी और स्वर्गका अपूर्व रूप विसृजित करती हैं।

८ शीघ्रस्थानीय और आगे स्थित शिलाएँ अग्निका आलिङ्गन करती हैं; मृतप्राय होनेपर भी अग्निका आगमन जानकर ऊर्ध्वमुख होकर, ऊपर उठती हैं। अग्नि, शिलाओंका छुड़ापा छुड़ाकर उन्हें उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखण्ड जीवन प्रदान करते हुए, गर्जन करते आते हैं।

९ पृथिवी माताके ऊपरके वक्त्र या नृग-गुलम आदिको वायु-वाटने अग्नि प्रभूत शब्द-कर्ता प्राणियोंके साथ वेगसे गमन करते हैं। पाद-विशिष्ट पशुओंको आहार देते हैं। अग्नि सदा चाहते हैं और क्रमशः जिस मार्गसे जाते हैं, उसे काका करते जाते हैं।

१० अग्नि, तुम अभीष्टवर्षों और दानशोक हाकर श्वास फेंकते हुए हमारे घनाढ्य गृहमें दीप्त हो। विशुद्धि जोड़कर, पुनः-समयमें बर्मकी तरह, बार-बार शत्रुओंको दूर करके जल उठो।

११ अग्नि, वह जो काठके ऊपर सावधानीसे हव्य रखा गया है, वह दुम्हारो मनोनुकूल प्रिय वस्तुसे भी प्रिय हो। दुम्हारे शरीरकी शिलासे जो निर्मल और दीप्त तेज निकलता है, उसके साथ तुम हमें रत्न प्रदान करो।

१२ अग्नि, हमारे घर या यजमान और रथके लिये सहृद डाँढ़ या ऋत्विक् और पाद या मंत्रसे संयुक्त नौका या वह प्रदान करो। वह हमारे बोरों, घनवाहकों और अन्य लोगोंकी रक्षा करेगा और हमें सुखसे रखेगा।

अग्नीनां अग्न उक्थमिज्जुगुर्यां यावाभामा । तन्ध्रदश्च स्वगूताः ।

गव्यं यव्यं यन्त्रो दीर्घाहिं घर्मरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥



१४१ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वडित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहस्रां यतां जनि ।

यदोमुपहरते साधते मतिर्ऋतस्य धना अनयन्त सस्रतः ॥ १ ॥

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आशये द्वितीयमासमशिशवासु मातृषु ।

तृतीयमस्य वृषमस्य दोहमे दशप्रमति जनयन्त यापयः ॥ २ ॥

निर्यदो बुध्नान्महिषस्य वर्षस ईशानासः शवसा क्रतमूरयः ।

यदोमनु प्रदावो मध्व आधवे गुहासन्तं मानरिश्वा भथायति ॥ ३ ॥

प्र यत् पितुः परमान्नायने पथेपृक्षुषो वीरुषो दंसुराहति ।

उभा यदस्य जनुषं यद्विन्वत आदिशविष्णो अमरवृणा शुचिः ॥ ४ ॥

१३ अग्नि, हमारे ऋद्धमंत्रोंके लिये उत्साह बढ़ाओ । यावापृथगो और स्वयं गामिनी नदियाँ हमें गौ और शस्य प्रदान करके उत्साह वर्द्धित करें । अहगवो उवाएँ सदा पाने योग्य सुन्दर अन्न आदि दें ।

१ प्रकाशमान अग्निका दर्शनोप तेज, सवपुषः इसी प्रकार लोग, शरीरके लिये, धारण करते हैं । वह तेज शरीर बल या अरणि-मन्थनमे उत्पन्न हुआ है । अग्निके तेजका आश्रय करके मेरा ज्ञान अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकता है; इसलिये अग्निके लिये स्तुति और इष्ट्य अर्पण किया जाता है ।

२ प्रथम अन्न-साधक शरीरों और नित्य अग्नि रहते हैं, द्वितीय कल्याणवाहिनो सप्त-मातृकाओंमें रहते हैं, तृतीय इस अभीष्टवर्षोंके दोहनके लिये रहते हैं । परस्पर संश्लिष्ट दशदिशाएँ दश दिशाओंमें पुत्रनाथ अग्निको उत्पन्न करती हैं । x

३ चूँकि महायज्ञके मूलसे सिद्धि करनेवाले ऋत्विक् बल-प्रयोग या अरणि-मन्थन द्वारा अग्निको उत्पन्न करते हैं, अनादि कालसे अच्छी तरह फेला देनेके लिये गुहास्थित अग्निको वायु चाकन करते हैं,—

४ अग्निकी उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये अग्निका निर्माण किया जाता है, आहारके लिये वाष्पित कटाएँ अग्निकी शिखाओं (दाँतों) पर चढ़ जाती हैं और अव्यय तथा यजमान दानों ही अग्निकी उत्पत्तिके लिये चेष्टा करते हैं; इसलिये पवित्र अग्निदेव, यजमानोंके लिये अनुग्रह करते हुए, युवा हुए ।

x प्रथम अग्निका स्थान पृथिवी और द्वितीयका अन्तरिक्ष है, जहाँ मातृस्थानीय वृष्टि हाती है । यहाँ विद्युद्भि और अभीष्टवर्षों हैं । इन्हें दूहनके लिये सूर्यअग्निरूप स्थानमें जा अग्नि रहते हैं, वह तृतीयभि हैं—इस संज्ञका यही तात्पर्य है ।

आदिन्मातृगणेशाय नमः शुभं कर्तव्यमान उचिया विवावृधे ।
 अनु यत् पूर्णं अरुन् सत्तु तं नि नव्यसीषवरासु धावते ॥ ५ ॥
 आदिदातार वृणते दिविष्टपु भगमिन् पपुचानास ऋजते ।
 दवान् यत् कृता मज्जना पुरुषुता मर्त्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥
 विवदस्थाय जतो वातकोदना हारी न धक्का जरणा अनाकुतः ।
 तस्य पत्नन्दक्षुपः कृष्णजितः शुचिजमनी रज आव्यध्वनः ॥ ७ ॥
 रथा न यतः शिकमिः कृता ग्रामकृ भिररुपाभरीयते ।
 आदस्यते कृणासो दास सूरयः शूरस्येव त्वपथदोदते वयः ॥ ८ ॥
 त्वया ह्यग्रे वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशत्रं अयमा सुदानवः ।
 यन्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुरान्नतोमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥
 त्वमग्रे शशमानाय सुन्यते रत्नं यविष्ठ दवतातिमन्वसि ।
 तं त्वा नु नव्यं सहस्रं शुभं न्य भगं त्वकारे मरित्त धामदि ॥ १० ॥

५ मातृर्कपणी दिशाओंके बाध जाग्र, दिशारक्त हस्त, वह है; इस समय प्रदीप्त होकर उन्हींके मध्य बैठते हैं । स्थापन-समयमें, पहने, जा सब औषध प्राञ्जल द्रव्य थे, उनके ऊपर अग्नि चढ़ गये थे । इस समय अभिनव और निकृष्ट औषधोंके प्रति दौड़ते हैं ।

६ इविका सम्पत्के कानेका यजमान, धृत्कोर्जनवासियोंकी प्रसन्नताके लिए, होम-सम्पादक अग्निका वरण करते और राजाकी तरह उनका आराधन करते हैं । अग्नि यज्ञीय, स्तुति-योग्य और विश्व-रूप है । वह यज्ञ-सम्पन्न और बलशाली है । वह देवा और स्तुति-योग्य सर्वमे पतनार्ता — दार्ताके लिये अन्नकी कामना करते हैं ।

७ जैसे ब्रह्मवादी विद्वत् आदि ब्रह्म सम्पत्ताके हिमा देते हैं, वैसे ही वायु द्वारा परिचालित यज्ञनीय अग्नि चारों ओर व्याप्त होते हैं । अग्नि दान-कर्ता है, उसका जन्म पवित्र है, उसका मार्ग कृष्णवर्ण है और उनके मार्गमें कुछ भी स्थिरता नहीं है । इसीलिये उनके मार्गमें अन्नराज स्थित है ।

८ रस्सीमें धंधे रथकी तरह अपने ऊपर उठनेकी सहायतासे अग्नि स्वर्गको जाते हैं । उनका मार्ग एकबारगी ही कुम्भवर्ण है, वह काष्ठ जलार्द्र है । रथकी तरह अग्नि उदात्त नेजक सामनेमे चिड़ियां भाग जाती हैं ।

९ अग्निदेव तुम्हारी सहायतासे वरुण अपना वर प्रारब्ध करते, मित्र अन्धकार नाश करते और अर्यमा हानशील होते हैं । जैसे रथका पहिया डोंडोंका व्यास करके चलता है, उसी प्रकार अग्निने यज्ञ-कार्य द्वारा विश्वात्मक, सर्वव्यापी और सबके पराभवकारी होकर जन्म ग्रहण किया है ।

१० युवा अग्नि, जो तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हारे लिये अभिषेक करते हैं, तुम उनका रमणीय हव्य लेकर देवोंके पास विस्तार करते हो । हे महर्ष, महाधन और बल-पुत्र, तुम स्तवनीय और हविर्भोक्ता हो । स्तुति-कालमें इस राजाकी तरह तुम्हें स्थापित करते हैं ।

मस्मे रयिं न स्वर्थं दमनसं भगं तक्षं न पपुनसि भर्णसिम् ।
 रश्मौ रिव यो यमति जन्मनी तमे देवानां शंससत आ च सुकनुः ॥११॥
 उत नः सुद्योन्माजीगश्चो दीना मन्दः शुण्वजाद्रथः ।
 स नो नेपन्नेपतमैरसुरैश्चिद्वाम सु चेतं वस्यो अन्ध ॥१२॥
 अस्ताव्यग्निः शिमोवद्विरकः आम्नाज्याय त्वरं दधानः ।
 अग्नी च ये मधवानो धयं च मिहं न सूर्यो अतिनिष्ठतन्युः ॥१३॥

—*—*—*—

१४२ सूक्त । आसी देवता ।* श्रुतुः और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्न आवह देवाँ अद्य यतस्त्वृच ।
 तन्तुं तनुष्व पृथ्वीं सुतसोमाय दाशणे ॥१॥
 घृतवन्तसुषमासि भधूमन्तो तनुनपात ।
 यज्ञं हि प्राय सावतः शशमानस्य दाशणः ॥२॥

११ अग्नि, तुम जैसे हमें अत्यन्त पयाजनीय और स्वयम् । जो देवता, जैसे ही उत्साही, जन-प्रिय और विद्या-ध्ययनमें चतुर पुत्र दो । जैसे अग्नि प्रत्यक्ष कि जगत् (विस्तृत) करने में, वही ही जगत् जन्म-धरा (आकाश और पृथिवी) का विस्तार करते हैं । हमारे यत्नमें यज्ञ-कर्त्ता अग्नि देवोंकी स्तुति का दिव्यकार करते हैं ।

१२ अग्निदेव प्रकाशहीन इतमानों उपायों अयुक्त, गीत, आनन्दमय, संदेहों रहवाने, अप्रतिशतशक्ति और प्रगल्भ-स्वभाव हैं । क्या वह हमारा कुछ न सुने ? क्या वह नहीं अपने द्वारा कर्मकार प्रत्यास लभ्य और अभिवाञ्छित स्वर्गकी ओर ले जायेंगे ?

१३ हव्य-प्रदान आदि करी और पुत्र-स्वयम्क पन्त्र द्वारा हमें अग्निही स्तुति की है । अग्नि अच्छी तरह दीसिमे युक्त हुए हैं । साथे उपस्थित योग और हम जो मूर्खों से बड़ा उत्पन्न करने हैं वैसे ही अग्नि को लक्ष्य कर स्तुति करते हैं ।

—*—*—*—

१ हे समिद्ध नामके अग्नि, जो यजमान स्वयं ऊँचा किए हुए है, उसके लिये आज तुम देवोंको बुलाओ । जिस हव्यदाता यजमानने होसका अभिषेक किया है उसकी प्रशंसा करने परीक्षाओं यज्ञ विस्तार करो ।

२ तनुनपात नामके अग्नि, मेरे समान जो हव्य दाता है, मेरे ही अथवा मेरे समान स्तुति करता है, उसके घृत और मधुसे सयुक्त यज्ञमें आकर यज्ञ-समाप्ति पर्यन्त हो ।

* आसी शब्दका अर्थ आग्नि का रूप है ; इसीलिये एक तनुनपात इस सूक्त में देखा सा आग्न ही है ।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वयज्ञं मिमिक्षति ।
 नाराशंसस्त्रिणादिवो देवेषु यज्ञियः ॥३॥
 इन्द्रो अग्न आबहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
 इयं हित्वा मतिर्माच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४॥
 स्तृणानासो यतस्त्रुचो बहिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
 वृक्षं देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥
 विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
 पावकासः पुरुषपूहो ह्यग्रे देवी रसश्चतः ॥ ६ ॥
 आभन्दमाने उपाके नकोपासा सुपेशसा ।
 यज्ञो कृतरय मातरा सीदतां बहिगसुमन् ॥ ७ ॥
 मन्द्रजिह्वा जुगुर्गुणी होतारादैव्या कवी ।
 यज्ञं नो दक्षताममं सिध्ममद्य दिविरूपशाम ॥ ८ ॥
 शुचिर्देवधर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
 इत्या ऊररक्षती महो बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

३ देवोंमें स्वच्छ, पवित्र, अद्भुत यतिमान और यज्ञ-सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि यज्ञोक्तों आकर हमारे यज्ञको मधुसे मिश्रित करें।

४ अग्नि, तृणारा नाम इलित है। तुम चित्र और प्रिय इन्द्रको यहाँ ले आओ। सुजिह्व, तुम्हारे लिये मैं स्तोत्र-पाठ करता हूँ।

५ एक धारण करनेवाले कृत्रिम् लोग इस यज्ञमें अग्नि-रूप कुशको फेलाते हुए इन्द्रके लिये विस्तारण और सुख-साधक गृह बनाते हैं। इस घरमें देवता लोग रुदा समनागमन करेंगे।

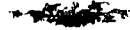
६ अग्निरूप यज्ञवा दरवाजा खोल हो। देवोंके आनेके लिये यज्ञ-द्वार खोल हो। ये दरवाजे यज्ञ-वर्द्धक, यज्ञ-सोचक बहुत लोगोंके लिये श्लाघ्य और परस्पर कसलाने हैं।

७ सबके स्तुति पाठ, परस्पर स्निहित, सुन्दर, महान्, यज्ञ-निर्माता और अग्निरूप रात और उषा स्वयं आकर विस्तृत कुशोंके ऊपर बैठें।

८ देवोंकी उन्मादक (क्षामे रुक्, रुदा स्तुतिशील यज्ञमानोंके मित्र, अग्निरूप दिव्य दोनों होता हमारे इस सिद्धि-प्रद और स्वर्गरूपी यज्ञका अनुष्ठान करें।

९ शुद्ध, देवोंकी मध्यस्थ, होम-रूपादिका भारती (स्वर्गरथ वाक्), इला (पृथिवीस्थ वाक्) और सरस्वती (अन्तरिक्षस्थ वाक्) — ये अग्निकी तीनों मूर्तियाँ यज्ञके उपयुक्त होकर कुशोंपर बैठें।

तन्नस्तुरीपमद्गु 'पुरुवार' पुरुत्तमः । त्वष्टा पोषाय विष्यन्तु गये नामा नो अस्मयुः ॥ १० ॥
 अवसृजन्नुपत्मना देवान यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुपूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
 पूषणवने मरुत्वने विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेणसे हव्यमिन्द्राय कतेन ॥ १२ ॥
 स्वाहाकृताव्यागश्च प हव्यानि वीतये । इन्द्रागहि श्रुवा हवं त्वां हवन्ते अवचरे ॥ १३ ॥



१४३ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्रतव्यसीं नव्यसीं च तिमग्ने वाचो मतिं सहसः सूनवे भवे ।
 अपान्नपाद्यो वसुभिः सद्प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥
 सजायमानः परमे व्योमन्याविराग्निरभदन्मातृश्वने ।
 अस्य कृत्वा समिधानस्य मज्जना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयन् ॥ २ ॥
 अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
 मातृक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोभने रेजन्ते अमलन्तो अजराः ॥ ३ ॥

१० त्वष्टा हमारा मित्र है । वह स्वयं अच्छी तरह, हमारे पुष्ट और मृदुलके लिये, मेघके नाभिस्थित, व्याप्त अद्भुत और असंख्य प्राणियोंकी भलाई करनेवाला जल बरमावे ।

११ हे अग्निरूप वनस्पति, इन्द्रानुसार श्रुतिवर्कोंको भजकर, रविवर्तोंका यज्ञ करो । पृथिव्यान् और मेघावान् अग्नि देवोंके बीच हव्य भेजे ।

१२ उषा और मरुतांसे युक्त विश्वदेवगण, वायु और गायत्री-शरीर इन्द्रको लव्यवर, हव्य उन्हेके लिये, अग्निरूप स्वाहा तब्यका उच्चारण करो ।

१३ इन्द्र, हमारा स्वाहाकार-युक्त हव्य खा के लिये आया । श्रुतिवत् लोग यज्ञमें तुम्हें बलाते हैं ।

१ अग्नि बलके पुत्र, जलके नसा, यज्ञमानके प्रियतम और होमके सम्पादक है । वह, यथासमय, घनके साथ वेदीपर बैठने है । उनके लिये मैं यह नया और शुभफल वस्त्र के यज्ञ आरम्भ करना और स्तुति-पाठ करता हूँ ।

२ परम आकाश-देशमें उत्पन्न होकर अग्नि स्वयं पहले मातरिग्या या वायुके पास प्रकट हुए । अनन्तर इन्धन द्वारा अग्नि बढ़े और प्रबल कर्म द्वारा उनको दोहसे द्यावा-पृथिवी प्रदीप्त हुई ।

३ अग्निकी दोहसे सबका नाश नहीं होता । सहज अग्निके सार स्फूर्ति-का चारों ओर प्रकाशमान और विलक्षण बलवाली है । रात्रिका अन्धकार नष्ट करके सदा जाग्रत और अज्ञान-शक्ति-का कभी नहीं काँपती ।

यमेभिरे भृगवो विश्ववै सं नामा पुष्यया भुक्तस्य मज्जना ।
 अग्निं तं गीर्माणि नुहं स्तः आदमे य एकोवसो वरुणा न राजति ॥ ४ ॥
 न यो वषायः कृतामिच्छताः सेनेव शृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
 अग्निर्जम्भोऽस्तीति तैरिति मर्षति योषा न शत्रून्स वनान्दृष्टते ॥ ५ ॥
 कुविन्नो अग्निरुत्थस्य वीरस्तदसुषुप्तुविद्वसुभिः काममावत ।
 नोदः कुविन्तुज्यात् सतये धियः शुक्लप्रतीकं ताम्रं धिया वृण ॥ ६ ॥
 घृतप्रतीकं न ऋतस्य धूर्षदग्नि मित्रं न सविध न ऋज्वते ।
 इन्धानो अको विद्वेषु दीद्वच्छुक् णां सुदुनो यं न धियम् ॥ ७ ॥
 अप्रपुच्छन्तस्तुच्छाग्निर्गने पायवर्नः पातुतिः पाह शम्भः ।
 अदकः अग्निरुपितेभिः श्टेनानिपाद्भिः पतिपहि नारुतः ॥ ८ ॥



२६४ सूक्त । अग्नि देवता । अग्नौ छन्दः ।

एति प्रहीता वनमग्न मायथानां इन्धानः शुक्लपेण धियम् ।

अग्नि सूक्तः क्रमः दक्षिणावृत्तः यथाऽग्नेः शब्दः शब्दः विन्ते ॥ १ ॥

४ भृगुवशोत्पन्न यजमानाग्ने अग्ने स्वात्मनः शोभाय वरुणः इत्ययं उक्तः इति अग्नि स्वधनस्य लक्ष आरम्भक स्वीकार विद्या है, उन्हें अपने तर्पण से शत्रु व मर्त्य कर्माचार से बचाव है और वरुणका तर्पण पात्र धनोक्त है अर्थ है ।

५ जैसे वायुके शब्द, पराक्रमी राजाका सेवा का प्रयत्न, तब व अग्नि का प्रयत्न तर्पण कर सकता, उसी प्रकार अग्नि अग्नि का कोई विचारण नहीं कर सकता, वही अग्नि वायुका तर्पण, तीन दीपों शत्रुको भक्षण और विनाश तथा वनोंका दहन करते हैं ।

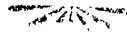
६ अतिदेव बार-बार हमारे उक्त स्मार्तको सुननेका इच्छा को धनशाला अग्ने, धन द्वारा बार-बार हमारा इच्छा पूरा करे । यज्ञ-प्रयत्नक आरम्भ, यज्ञ-लाभके लक्ष्य, हमें बार-बार प्रशिक्ष कर—मैं ऐसा स्तुति द्वारा सुदृश्य अग्नि की स्तुति करता हूँ ।

७ तुम्हारे यज्ञ-निर्वाहक और प्रदीप्त अग्नि का, मित्रको तरह, जगत्कर अभिषिक्त किया जाता है । अच्छी तरह समकक्षी ज्वालावाले अग्नि, यज्ञ स्थलमें, प्रदीप्त होकर हमारा विशुद्ध यज्ञ-वचयक बुद्धिको प्रबुद्ध करते है ।

८ अग्निदेव, हमारे ऊपर अनुग्रह करके सदा अर्वाहृत, माङ्गलिक और सुखकर आश्रय देकर, हमारा रक्षा करो । स्वच्छयाच्छनीय अग्नि, उत्पन्न होकर तुम हिंसा-रहित अनेक और पर्याप्त भावना हमारा रक्षा, भली भाँति, करो ।

१ बहुदर्शी होता, अपनी उच्च और शोभन बुद्धिके बल, अग्नि को सेवा करनेके लिये, जा रहे हैं और प्रवक्षिणा करके सुक आरण कर रहे हैं । ये सुक अग्निमें प्रथम आहुति देते हैं ।

अमोमृतस्य दाहना अनूपत योनौ नैघस्य सदने परीवृताः ।
 अपामुपस्थे विभृतो यदावसदधस्त्रधा अध्यद्याभिरीयते ॥ २ ॥
 युयुपतः सवयसा नविद्रुपः समानमर्थं चित्तिश्रिता मिथः ।
 आदौ भगो न हव्यः समस्मदावोहूर्न र मीत्समर्थं सार्गथः ॥ ३ ॥
 यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोक्षसा ।
 दिवाननकं पालतो युवाजनि पुक्कवरन्नजरोमा नुपायुमा ॥ ४ ॥
 तमा हिन्वात धातयो दशविंशो देवं मर्तास उतये हवामहे ।
 धनोर्गधि प्रयत आस ऋतवत्यमित्रजद्विवेयुना नवाधित ॥ ५ ॥
 त्वं ह्यने दिव्यस्य राज्ञीम् त्वं पाथिवस्य पशुपा इव तमना ।
 एनीत एते बृहता अभिधिया हिरण्ययी वकरी बहिर्गशाने ॥ ६ ॥
 अग्ने जुषस्व प्रतिहयतद्वचा मन्द स्वभाव ऋतजात सुकता ।
 यो विश्वतः प्रत्यङ्मुखा दशतः रत्नः सन्दृष्टौ पितुर्मा इव क्षयः ॥ ७ ॥



२ सूर्योत्थानोंमें जल और पानी जल पान करने का पर्वतोंके स्थान सूर्य-लोकमें, फिर नदी होकर, उत्पन्न होते हैं। जिस समय जिसकी सोईमें, आदित्य जाय, तब रहते हैं, उसी समय लोग अमृतमय जल पीते एवं अग्नि, विद्युत्, अग्निके रूपमें, मिलते हैं।

३ सरासि अवस्थावाले हाता और जलधरे, एक ही पृथोजनकी सिद्धिके लिये, परस्परको सहायता देकर अग्नि के शरीरमें अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अन्तर्गत में सूर्य अपनी किरणें फैलाते हैं अथवा सारथि लगाकर ग्रहण करता है, वैसे ही आहवनीय अग्नि प्रजापति की हुई पृथुधारा ग्रहण करते हैं।

४ समान अवस्थावाले, एक दृष्टिमें, दसमान लोग एक कार्यमें नियुक्त हों नों मनुष्य जिन अग्निकी, वित्त-राश, प्रजा करते हैं, वह अग्नि चाहे दूध, दही, तह, गुण, एक दूसरी मनुष्योंका द्रव्य संक्षण करते हुए, अजर हुए हैं।

५ इसी अँगुलियों, आपसमें अलग होकर, उन प्रकाशशाली अग्निकी प्रसन्न करती हैं। इस मनुष्य हैं, अपनी रक्षाके लिये अग्निका बुलाते हैं। जिन अनुषंगे वाज निकलता है, वैसे ही अग्नि भी स्फूर्तिपूर्ण अंजते हैं। चारों ओर अवस्थित यजमानोंको नयी स्तुतिकी अग्निदेव धारण करते हैं।

६ अग्नि, पशु-रक्षकोंकी तरह, पृथ, अपनी शक्तिमें, स्वर्गीय और पृथिवीय लागोंके ईश्वर हो; इसलिये महती पंचयवेवती, हिरण्यमयी मंगल-क्षेत्र-कारिणी पूजनणी और प्रसन्ना छावापृथिवी तुम्हारे यज्ञम आती हैं।

७ अग्नि, हम हव्यका उपभोग करो; अपना स्तन्य मुझसे इच्छा करो। हे स्तुत्य, अन्नवान् और यज्ञके लिये उत्पन्न तथा यज्ञशाली अग्नि, तुम सारे जगत्के अनुकूल, सर्वतः दर्शनाय, आनन्दोत्पादक और यथेष्ट-अन्न-शाली ध्वत्तिकी तरह सबके आश्रय-स्थानक हो।

१४५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

तं पृच्छतास जगामासवेदस चिक्षित्वा ईयते सान्वीयते ।

तस्मिन्सन्ति प्रक्षिपतस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

तमिष्टुच्छति न सिमो विपृच्छति स्वेनेव धीरो मनसः यदग्रभीत् ।

न मृष्यते प्रथमं नापरं वचांस्य क्त्वा सन्तते अप्रद्वपितः ॥ २ ॥

तमिदृच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीविश्वान्येकः शृण्वद्वचांसि मे ।

पुरुषैस्ततुरियशसः धनोच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त संगमः ॥ ३ ॥

उपस्थायं नरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।

अभिश्चान्तं मृशते नान्यो मुदे यदी गच्छन्त्युशतीरपिष्ठिवम् ॥ ४ ॥

स ई मृगो अप्योवनगुरुपत्वच्युपमस्यां निधायि ।

व्यववीद्वयुना मर्याभ्यामिर्विद्वां ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥



१ अग्निसे पूछो । वही जाता है, वही गये हैं, उन्हींका पालन है, वही यान है, वही शीघ्रगन्ता है, उन्हींके पास शासन-योग्यता है, अभीष्ट वस्तु भी उन्हींके पास है । वही अन्न, बल और बलवान्के पालक है ।

२ अग्निको ही सारा संसार जानना चाहता है; वह जिज्ञासा अन्याय-पूर्ण नहीं है । अपने मनमें धीर व्यक्ति जो स्थिर करता है, उसके पूर्व और परकी वान नहीं सह सकता । इसीलिये इम-विहीन मनुष्य अग्निका आश्रय प्राप्त करता है ।

३ सब जुह्व अग्निको लक्ष्य कर जाते हैं । स्तुतियों जो तर्तित किये जाते हैं । एक अग्नि मेरी समस्त स्तुतियां सुनते हैं । वह बहुतोंके प्रवक्तृक, सारथिता और यज्ञके स्यान्ता है । उनकी रक्षा-शक्ति अद्वितीय है । वह शिशुकी तरह शान्त और यज्ञके अनुष्ठाता है ।

४ जभी यजमान अग्निको उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है, तभी अग्नि प्रकट होते हैं । उत्पन्न होकर ही दूरत योजनीय वस्तुके साथ मिल जाते हैं । अग्निका आनन्द-वर्द्धक कर्म शान्त यजमानके समतोषके लिये अभीष्ट फल देता है ।

५ अन्वेषण-परायण और प्राप्तव्य वनके गामी अग्नि, त्वचाकी तरह, इन्धनके बीच स्थापित हुए हैं । विद्वान्, यज्ञ-ज्ञाता और वयं-यवादी अग्निने मनुष्योंको, विशेष करके, यज्ञानुष्ठानके समय, ज्ञान प्रदान किया है ।

४६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्रिमूर्द्धानं समरग्निं गृणीयेन्नमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
 निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचना परिवांसम् ॥ १ ॥
 उक्षामही अभिववक्ष एने अजरस्तस्याधित ऊर्तिर्हृष्वः ।
 कन्याः पदो निदधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुपासा अस्थ ॥ २ ॥
 समानं वत्समभिसञ्चान्तां विष्वग्धनू चित्ररतः सुमेके ।
 मनपवृज्यां अध्वनो मिमाने विश्वान्केतो अधि महो दध्नाने ॥ ३ ॥
 धीरासः पद कवयो नयन्ति नानाहृद् । रक्षमाणा अजुर्यम ।
 सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमारोभ्यो अभवन् सूर्यो ननु ॥ ४ ॥
 विद्वक्षेण्यः परिकाष्ठासु जेन्य ईडेन्यो महो अर्भोय जीवमे ।
 पुरुत्रा यदभवन् सूरहैभ्यो गर्भैभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥



१ पिता-माताका गोदमें अवस्थित, सवन त्रय-रूप मस्तक-त्रयमे युक्त, सप्त छन्दोरूप सप्त रश्मियोंसे युक्त और विकलता-शून्य अग्निही स्तुति करो । सर्वत्र गामी, अविचलित, प्रकाशमान और अभोष्टवचक अग्निका तेज चारो ओर व्याप्त हो रहा है ।

२ फल-दाता अग्नि, अपनी महिमामे, छावा-पृथिवीको व्याप्त किये हुए हैं । अजर और पूज्य अग्निदेव हमारी रक्षा करके अवस्थित हैं । वह व्यापक पृथिवीके मानु प्रदेश या वेदीपर अपने पैर फैलाये हैं । उनकी उज्ज्वल ज्योति अन्तरीक्षको चाटती है ।

३ सेवा-कार्यमें चतुर दो (यजमान और उसकी पत्नीके स्वरूप) गाय एक ब्रह्म (अग्नि) के सामने जाते हैं । वह निन्दनीय विषयमे शून्य मार्गका निर्माण और सब तरहका बुद्धि या प्रज्ञा, अधिक मात्रामें, धारण करती हैं ।

४ विद्वान् और मेधावी लोग अज्येय अग्निको अपने स्थानपर स्थापित करने हैं, बुद्धि-बलसे, नाना उपार्योंसे, इनकी रक्षा करते हैं । यज्ञ-फलका भोग करनेको इच्छामे कन्दरावः अग्निको शुश्रूषा करते हैं । उनके पास, सूर्यरूपमें, अग्नि प्रकट होते हैं ।

५ अग्नि चाहते हैं कि, उन्हें इसी दिशाएँ देख सकें । वह सदा ज्योतील और स्तुति-योग्य हैं । वह बुद्ध और महान्—सबके जीवन-स्वरूप हैं । घनवान् और सबके दृष्टान्तीय अग्नि, अनेक स्थानोंमें, विशुद्ध-समान वज्रमानोंके चित्तुपुष्प हैं ।

१४७ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयं द्वाशुर्वाजेभिराशुपाणाः ।
 तमे यत्तांते तनयं दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ॥ १ ॥
 बोधामे अस्य वचसो यन्निष्ठं मेहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
 पीर्यति त्वो अनुत्वा गृणाति वन्दारुसने तन्वं धन्दे अग्ने ॥ २ ॥
 ये पायवो मामतेयग्ने अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
 ररन्न तन्मस्रज्जतो विश्ववेदादिप्सन्त इन्द्रिपवो नाहवेभुः ॥ ३ ॥
 यो नो अग्ने अरिर्ना अघायुररातोवा मर्त्यति त्रयेन ।
 मन्त्रो गुरुः पुनरन्तु त्वो अस्मा अनुमन्त्रोऽहं तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥
 उतवागः स्पहस्त प्रविदामर्तोमर्तं मर्त्यति त्रयेन ।
 अतः पाति स्तवमानं स्तवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय घायोः ॥ ५ ॥



१ अग्नि, तुम्हारी उज्ज्वल और शेषक शिवाएँ देते अन्नके साथ आयु प्रदान करती हैं, जिसमे पुत्र, पौत्र आदिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर घनमान लोग याज्ञिक साम-गायन कर सकते हैं ?

२ हे युवा और अन्नवान अग्नि, ये मेरे अन्नवा पुत्र और अन्नवा तरु पद्मादिन स्तुति ग्रहण करो। कोई तुम्हारी हिंसा करता और कोई तुम्हारे पुत्र का है। मैं ना तुम्हारा चरपक हूँ। मैं तुम्हारी अर्पिकी पूजा करता हूँ।

३ अग्नि, तुम्हारी जिन प्रथिव्य और पारक रश्मिपूर्णे समताके पुत्र और अन्धे दीर्घमाको अन्धत्वसे बचाया था, इन सुखकर शिवाओंकी स्पष्टप्रत्यक्ष रूप रक्षा करो। विवादकषु शत्रुपण हिंसा न करने पावें x

४ अग्निदेव, जो हमारे लिये पात जाहने हैं, अन्नदान नहीं करते, मानसिक और वाचनिक, दो प्रकारके मन्त्रों द्वारा हमारी निन्दा करते हैं, उन्हें पतन पातय लोच गुरुभाषणों और व दुराक्ष्य द्वारा अपना ही शरीर नष्ट करें।

५ बलके पुत्र अग्नि, जो अनुपय मान-वृद्धकर शरीर अन्न मन्त्रोंने अनुपयकी निन्दा करता है, मैं विनय करता हूँ, हे स्तव्यमान अग्नि, उसके हाथों मेरी रक्षा करो। हमें पापों से बच पंको।

x सायणके मतसे दीर्घतमाको माता x माता स्व प्रकृत्यस्त्विति उच्यते समय रण किया, जिन समय दीर्घतमा गर्भमें थे। दीर्घतमाने वृद्धत्वप्राप्तिको, वर्तमानकरणके अर्थसे, मत उच्यते। वृद्धत्वान् दीर्घतमाको अन्धा होनेका शाप दिया और अग्निने स्तुति करनेपर दीर्घतमाका अन्धत्व दूर किया।

१४८ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

मथीघदीं विष्टो मातृश्रिता लोतां विशाप्सं लिङ् देवम् ।
 नि यं दधुर्मनुष्यास्तु विश्वनर्णं च त्रैवर्ण्यं विशावा ॥ १ ॥
 ददानमिन्न ददमन्नं मन्म मिर्क्ष्यं मम तस्य चाकन ।
 जुषन्त विश्वान्यस्य वर्मोपरुति मरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥
 नित्येक्षिन्नुयं सदनं जगृभ्र प्रजागताभिर्दीधिरे यशियासः ।
 प्रसूनयन्तगृ भयन्त इप्सा श्वासा न रथो रथो हणतः ॥ ३ ॥
 पुक्काण दस्मा न रण नि जग्मे । निन्ने वन आर्षि भावा ।
 आदस्य वाता अनुवाति शोचन्मूर्त्न शयमिन्नं गनु नू ॥ ४ ॥
 न यं रिपवो न रिपण्यो रभं सन्तं रेपणं रेपन्ति ।
 अन्धा अपश्यानदमन्नमिच्छ्या मिह्यान् ई प्रोताशो अगक्षन् ॥ ५ ॥

१४९ सूक्त । अग्नि देवता । घिराट् छन्द ।

महः सराय पृषते पतिर्दन्निन इतरुष लसुनः पद आ । उध्रन्तमद्रयो विधन्ति ॥ १ ॥

१ वायुनं, काठके भीतर घुमकर, विविधरूपधाला, सारे देवाक कायमें लपुंग और देवाका बुलानवाले आग्निको बढ़ाया । पहले देवीने आग्निका, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यकी तरह, अनुष्या और श्रुतिवकीकी यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया था ।

२ आग्निका सन्तोषदायक इव्य देनेसे ही शत्रु लोग सुमे नष्ट नहीं कर सकेगे । अग्नि मेरे द्वारा प्रदत्त स्तोत्र आदिके अभिलाषी हैं । जिस समय स्तोता आग्निकी स्तुति करते हैं, उस समय सारे देवता उनके दिव्य द्रुप इव्यका ग्रहण करते हैं ।

३ याज्ञिक लोग जिन आग्निको सत्य और न-दूरे ले जाते और स्तुतिके साथ स्थापित करते हैं, उन्हीं आग्निक श्रुतिवकीने, शीघ्रगामी और रथ-निबद्ध अश्वकी तरह, यज्ञके लिये बनाया ।

४ बिनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षाका अपनी शक्तियों या दक्षिण नष्ट करके विविधमें चित्र-विचित्र शोभा प्राप्त करते हैं । इसके अनन्तर जैसे धनुर्धराक पासमें, वक्रक साथ, तीर जाता है, वैसे ही प्रोतादन वायु शक्तिके अनुकूल होकर बढ़ते हैं ।

५ अरिणके गर्भमें अवस्थित जिन आग्निको शत्रु या अन्य हिंसक दुष्ट नहीं दे सकते, वन्धा भी जिनका माहात्म्य ही नष्ट कर सकता, उन्हींकी, अविचल भीकाले यजमान, पक्ष पक्ष स्तुतिगत देकर, रक्षा करते हैं ।

१ महाघनके रूपामी अग्नि अभीष्ट प्रदान करने, दुष्ट, वमारे इन घुमाए सामने जा रहे हैं । अनुजोंको भी प्रभु अग्नि वेदका आश्रय करते हैं । प्रस्तर-हस्त यजमान लोग आगत अग्निको सेवा करने हैं ।

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः । प्रयः सस्त्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥
 आ या पुनः निर्माणमर्दादेदत्यः कर्त्तिर्मन्योनावा । सूर्यो न रुक्काञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
 अभि द्विजन्मा श्रीगेचमानि विश्वा रजसि शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अपांसधर्ये ॥ ४ ॥
 अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वाद्ये वार्याणि श्रवस्या । मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

१५० सुष्ठु । अग्नि देवता । उष्णिक् छन्द ।

पुरुत्वा दाश्वान्वोच्चैरिग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
 व्यनिनस्य धनिनः प्रतोपे चिदरुषः । कदाचन प्रजिभतो अदैवयोः ॥ २ ॥
 स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो ब्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेचे अग्ने वनुयः स्याम ॥ ३ ॥

पुष्टि-संहिता ।

२ मनुष्योंकी तरह, जो अग्नि, यात्रा पृथिवीके भी उत्पादक है, वह यशःशाली होकर वर्त्तमान है एवं उन्होंने जीव लोग सृष्टिका आस्वादन प्राप्त करते हैं । उन्होंने गर्भाश्रयमें बैठकर सारे जीवोंकी सृष्टि की है ।

३ अग्निदेव मेधावी है; वह अन्तरीक्षमेंवहारी वायुकी तरह विभिन्न स्थानोंमें जाने हैं । उन्होंने दस छप्पर वेदियोंको प्रदीप्त किया है । नानारूप अग्नि, सूर्यकी तरह, सृष्टिभित्त होते हैं ।

४ द्विजन्मा अग्नि दीप्यमान लोकप्रथका प्रकाश करने और सारे रज्जनात्मक संसारका भी प्रकाश करते हैं । वह वेवाके आह्वान-वर्त्ता हैं । जहाँ जल संगृहीत होता है, वहाँ अग्नि वर्त्तमान है ।

५ जो अग्नि द्विजन्मा है, वही होता है; वही हव्य-प्राप्तिकी अभिलाषामें सारा वरणीय घन धारण करते हैं । जो मनुष्य अग्निको हव्य देता है, वह उत्तम पुत्र प्राप्ति करता है ।

१ हे अग्निदेव, मैं हव्य दान करता हूँ; इसलिये तुम्हारे पास बहुविध प्रार्थनाएँ करता हूँ । अग्निदेव, मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ । अग्निदेव, महान् स्वर्गमें वरमें जैसे सेवक है, वैसे ही तुम्हारे पास मैं हूँ ।

२ अग्निदेव, जो घनी मनुष्य तुम्हें स्वामी नहीं मानता वा उत्तमरूप हवनके लिये दक्षिणा नहीं देता एवं जो व्याप्ति देवोंकी स्तुति नहीं करता, उन देवशुभ्य दोनों व्यक्तियोंका घन नहीं देता ।

३ हे मेधावी अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, वह स्वर्गमें चन्द्रमाकी तरह सबका आभूषण होता है; प्रधानोंमें भी प्रधान होता है । इस लिये हम विशेषतः तुम्हारे ही सेवक होंगे ।

१५५ सूक्त । मित्रावरुण देवता । जगती छन्द ।

मित्रं न यं शिष्या गोषु गत्यवः स्वाध्यायो विदधे अप्सु जीवनन ।

अरेजेतां गोदस्यो पाजस्य गिरा प्रतिप्रियं यजतं जनुगामनः ॥ १ ॥

यज्ञस्यद्वां पुरुमीहस्य सोमिनः प्रमित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।

अध्रकृतं विदतं गातुमर्चन उत श्रुतं वृषणा पस्यावतः ॥ २ ॥

आ दां भूषन् क्षितयो जन्मगोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षमे महे ।

यदीमृताय भरथो यदर्वते प्रहोत्रया शिष्यावीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

प्र सा क्षिनिरसुरयामहिप्रिय ऋतावानावृतमाघोषथो बृहत् ।

युर्व दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युपयुञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥

महा अत्र महिनावारमृण्वथो रेणवस्तुज आसन्नधेनवः ।

स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमानिध्रुव उपसस्तकवीरिव ॥ ५ ॥

अ वामृताय केशिनीरनूपत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चयः ।

अव त्मना सृजतं पिन्धन् धियो युषं विप्रस्य गन्मनमिदज्यथः ॥ ६ ॥

१ गो घनाभिलाषी और स्वाध्याय-सम्पन्न यज्ञमानों गोधनकी प्राप्ति और मनुष्योंकी रक्षाके लिये, मित्रकी तरह, प्रिय और यज्ञयोग्य जिन अग्निकी अन्तरीक्ष-भव जलके मध्यमें कर्म द्वारा उत्पन्न किया है, उनके बल और वृद्धिसे यावा-पृथिवी कल्पित होती है ।

२ चूँकि मित्रवत् अन्विकर्त्ते तुम्हारे लिये अभीष्टयायी और अपने कर्ममें समर्थ सोमरस पारग किया है, इसलिये पूज्यके घर आओ । तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम गृहपतिका आह्वान सुनो ।

३ अभीष्ट-वर्षक मित्रावरुण, मनुष्य लोग, महाबलकी प्राप्तिके लिये, यावा-पृथिवीसे तुम्हारे प्रशंसनीय जन्मका कीर्त्तन करते हैं; क्योंकि तुम यज्ञमानके यज्ञफलरूप मनोरथको देते हो तथा स्तुति और इव्ययुक्त यज्ञ ग्रहण करते हो ।

४ हे पर्याप्त-बलशाली मित्रावरुण, जो यज्ञभूमि तुम्हारे लिये प्रियतम है, वह उत्तम रूपसे सजायी गयी है । हे सम्यवादी मित्रावरुण, तुम हमारे महान् यज्ञकी प्रशंसा करो । दुग्ध आदिके द्वारा शरीरमें बल-दानके लिये, समर्थ घेनुकी तरह, तुम दोनों क्षिप्राल लालोके अग्रभागमें देवोंके आनन्दोत्सादनमें समर्थ हो और विविध स्थानोंमें आरम्भ किये कर्मका उपभोग करते हो ।

५ मित्रावरुण, तुम अपनी महिमासे जिन गायोंको वरणीय प्रदेशमें ले जाते हो, उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता । वह दूध देती और गोशालामें लौट आती हैं । चौरधारी मनुष्योंकी तरह वह गायें प्रातःकाल और सायंकालको उपरिस्थित सूर्यको ओर देखकर चीत्कार करती हैं ।

६ मित्रावरुण, तुम जिस यज्ञमें यज्ञभूमिको सम्मान-युक्त करते हो, उसमें केशकी तरह अग्निकी शिला, यज्ञके लिये, तुम्हारी पूजा करती है । तुम निम्न मुखसे वृष्टि प्रदान करो और हमारे कर्मको सम्पन्न करो । तुम्हीं मेघावी वज्रमायकी मनोहर स्तुतिके स्वामी हो ।

यो वा यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
 उपाहतं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छागिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥
 युवां यज्ञैः प्रयमाणो भिरञ्जत ऋतावाना मनसो न द्युकिषु ।
 भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोदृप्यता मनसा रेवदाशः ॥ ८ ॥
 रेवद्वयो दधाथे रेवदाशा ये नरा मायाभिरित ऊति माहिनम् ।
 न वां द्यावो हभिर्नोति सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥



१५२ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

युधं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
 अवातिरतमनुतानि विश्वरूतेन मित्रावरुणा सन्नेथे ॥ १ ॥
 एतच्चनत्वो बिचिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋधावान् ।
 त्रिरथि हन्ति चतुरथिरुग्रो देवनिदोऽ प्रथमाऽमजूर्धन् ॥ २ ॥

७ जो मेधावी, होयानिष्पादक और गताहर यज्ञिके साधनने संयुक्त यजमान, उपाहत विये, सुमति उद्भव स्तुति करते हुए, हव्य प्रदान करता है, उपा वृद्धशाली यजमानके लिये गायन करा । यज्ञको कामना करे । हमारे ऊपर अनुग्रह करनेकी अभिलाषामे हमारी स्तुति स्वीकार करे ।

८ हे सन्मवादी मित्रावरुण, वेम दृष्टिद्वारा प्रतीत करनेके लिये पढ़ने दायका प्रयोग करता होता है, वेमे ही युद्धे यजमानलोग अन्य देविके पढ़ने शब्द द्वारा पूजन करने हैं । अथवा यज्ञिके यजमानलोग तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम मनमें दर्प न करके हमारे समुद्र कार्यमें उपस्थित होओ ।

९ मित्रावरुण, तुम घन-विच्छिद्र अन्न धारण करो, युव यजमान अन्न प्रदान करो । वह बहुत है और तुम्हारे बुद्धि-बलने रक्षित है । शिव वा राक्षिकी तुम्हारा देवत्व नहीं छिपाता । न द्याव जो तुम्हारा देवत्व नहीं प्राप्त किया, और न पणियों ही । पणियोंने तुम्हारा दूत भी नहीं मारा ।

१ हे स्थूल मित्र और वरुण, तुम तेजोरूप अस्त्र धारण करो । तुम्हारी सृष्टि सुन्दर और दोषशून्य है । तुम सारे अद्वयका विनाश करो और सत्यके साथ युक्त होओ ।

२ मित्र और वरुण—दोनों ही कर्मका अनुष्ठान करते हैं । दोनों स्तववादी मन्त्रित्व-निपुण, कवियोंके स्तवनीय और शत्रु-हंसक हैं । वह प्रवशरूते, चतुर्गुण अस्त्रोंसे सयुक्त होकर, त्रिगुण अस्त्रोंसे युक्तोंका विनाश करते हैं । इनके प्रभावसे देव-निष्ठक पहले ही जोर्ण हो जाते हैं ।

अपादेति प्रथमापदतीनां कस्तदा मित्रावरुणादिकेत ।
 गर्भोभारं भरत्यान्विदस्य श्रुतपिपत्यं नृतं नितारीत् ॥ ३ ॥
 प्रयन्तमित् परिजारङ्गुनीनां पश्यामसि नोपनिषद्यमानम् ।
 अनवपूग्णा वितता वसानं प्रिय मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
 अनश्नो जातो अनोशुरर्वा कनिकदन् पतपदूर्ध्वसानुः ।
 अचित्तं द्रह्मजुजुष युवानः प्रमित्रे धाम वरुणं गृणन्तः ॥५॥
 अ धेनो मामनेमवन्वीत्रं ह्यप्रियं पीत्यन्तस्मिपन्नूधन् ।
 पिबो भिक्षेत वयनानि विद्वानासाध्मामन्नदितिपुरुष्येन् ॥६॥
 आ वां मित्रावरुणा दत्यजष्टि नमसा देवाववसा ववृत्यां ।
 अरमाक व्रह्म पृतनासु मत्वा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥

१५३ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
 घृतैर्घृतस्मृ अधयद्रामस्ये अधवयवो न धीनिभिर्भरन्ति ॥१॥

३ मित्रावरुण, पद-संयुक्त मनुष्योंके आगे पदधन्या उषा आती है—यह जो तुम्हारा ही कर्म है, यह कौन जानता है ? तुम्हारे या शिवारात्रिके पुत्र सूर्य सत्यकी प्रति और असत्यका विनाश करके सारे संसारका रक्षक बन करते हैं ।

४ हम देखते हैं कि, कन्या या उषाके जार सूर्य क्रमागत चलते हो हैं—कभी भी बैठते नहीं । विसृज्य तेजसे आच्छादित सूर्य मित्रावरुणके प्रियपात्र हैं ।

५ आदित्यके न तो अश्व हैं, न लगाम; परन्तु वह शीघ्र-गमन-शील और अतीव-शब्दकर्ता हैं । वह क्रमशः ही ऊपर चढ़ते हैं । संसार इन सब अचिन्तनीय और विशाल कर्मोंको मित्र और वरुणके मानकर उनकी स्तुति और सेवा करता है ।

६ प्रीति-प्रदायक गायं विशाल कर्म-प्रिय समताके पुत्रको (मुझे) अपने स्तनसे उत्पन्न दूधसे प्रसन्न करे । वह यज्ञानुष्ठानों आनकर यज्ञमें बचे अन्नको, सुव द्वारा खानेके लिये, मांस और मित्रावरुणकी सेवा करके यज्ञको अर्पणकर रूपसे सम्पूर्ण करे ।

७ देव मित्रावरुण, मैं, रक्षाके लिये, नमस्कार और स्तोत्र करते हुए, तुम्हारे हव्य-सेवनके लिये उद्योग करूँगा । हमारा महान् कर्म, युद्धके समय, शत्रुओंको परास्त कर सके । स्वर्गीय वृष्टि हमारा रक्षक करे ।

१ हे वृत्स्नाधी और महान् मित्रावरुण, चूंकि हमारे अध्वर्यु लोग अपने कार्यसे तुम्हारा पोषण करते हैं; इसलिये हम समान-प्रीति-युक्त होकर हव्य, घृत और नमस्कार द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं ।

प्रस्तुतिर्वा धाम न प्रयुक्तिर्यामि मित्रावरुणः सुवृत्तिः ।
 अनक्ति यद्वा विषयेषु होता सुन्नं वा सुरिष्टृपणावियक्षन् ॥२॥
 पीपाय धेनुरदितिर्ज्ञाताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
 हिनोति यद्वा विद्ये सपर्यन्त रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥
 उतवां विश्वमवास्वंधो गाव आपश्च पीपश्चत देवीः ।
 उलोतो अस्य पूव्यः पतिर्वन्वीतं पातं पयस उस्त्रियायाः ॥४॥

१५४ सूक्त । विष्णु देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

विष्णोर्नुकं वीर्वाणि प्रबोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
 यो अस्क भायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रधोरुगायः ॥१॥
 प्र तद्दृष्टुः स्ववते धीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
 यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वर्धक्षियंति भुवनानि विश्वा ॥२॥

२ हे मित्रावरुण, तुम्हारे उद्देश्यसे केवल यज्ञका प्रस्ताव या यज्ञ ही नहीं है; किन्तु उसके द्वारा मैं तुम्हारा तेज प्राप्त करता हूँ । जिस समय सुधी होता तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ करनेके लिये आते हैं, उस समय, हे अभीष्टवर्षक, वह सुख प्राप्त करते हैं ।

३ मित्रावरुण, रातहव्य नामके राजाके मनुष्य यजमानके होताकी तरह, यज्ञमें सेवा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करनेपर राजाकी धेनु जैसे दुग्धवती हुई थी, वैसे ही, तुम्हारे यज्ञमें जो यजमान हव्य देता है, उसकी गायें भी बहुत दुग्धवाली होकर आनन्द बढ़ावें ।

४ मित्र और वरुण, दिव्य धेनुर्पुं, अन्न और जल तुम्हारे भक्त यजमानोंके लिये तुम्हें प्रसन्न करें । हमारे यजमानके पूर्व-पालक अग्नि दानशील हों और तुम क्षीरवर्षिणी धेनुका दूध पीओ ।

१ मैं विष्णुके वीर-कार्यका शीघ्र ही कीर्तन करूँगा । उन्होंने वामनावतारमें तीनों लोकोंको मापा था । उन्होंने ऊपरके सत्यलोकको स्तम्भित किया था । उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था । संसार उनकी बहुत स्तुति करता है ।

२ चूंकि विष्णुके तीनों पाद-क्षेपमें सारा संसार रहता है; इसलिये भयंकर, हिंस्र, गिरिषाओं और वन्य जानवरोंकी तरह, संसार विष्णुके विक्रमकी प्रशंसा करता है ।

प्रविष्णवे शूषमेतु मग्म गिरिक्षित अ उरुगायाय वृष्णे ।
 य इव दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥
 यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणाः स्वधया मदन्ति ।
 य च त्रिधातु पृथिवीमुतद्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥
 तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देव्यवो मदन्ति ।
 उरुक्रमस्य स हि बंधुरित्या विष्णोः ण्दे परमे मध्व उन्मः ॥५॥
 ता वां वास्तून्पुश्रमसि गमध्यै यत्र गान्ता भूरिश्रुताः अयःसः ।
 अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥६॥



१५५ सूक्त । इन्द्र और विष्णु देवता । जगती छन्द ।

प्रथः पान्तमंधसो धियायने महे शूराय विष्णवे चार्चता ।

या सानुनि पधतानामदाभ्यामहस्तस्थतुरधतेष साधुना ॥१॥

३ उन्मत्त प्रदेशमें रहनेवाले, अमोघवर्षक और सब लोकोंमें प्रशंसित विष्णुको महाबल और स्त्रोत्र आश्रित करें । उन्होंने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण निर्यत लोक-त्रयको तीन बारके पद-क्रमण द्वारा मापा था ।

४ (जिन) विष्णुका हास-हान, अमृतपूर्ण और त्रिसंख्यक पद-लोप अन्न द्वारा मनुष्योंको हर्ष देता है, (जिन्होंने) विष्णुने अकेले ही धातु-त्रय, पृथिवी, वायु, लोक और समस्त भुवनोंको धारण कर रखा है । ५

५ देवार्कक्षी मनुष्य जिस प्रिय मागको प्राप्त करके हृष्ट होते हैं, मैं भी उसीको प्राप्त करूँ । उस पराक्रमी विष्णुके परम पदमें मधुर (अमृत आदिका) क्षरण है । विष्णु वस्तुतः बन्धु हैं ।

६ जिन सब स्थानोंमें उन्मत्त शृङ्गवाली और शोघ्रगामी गायें हैं, उन्होंने सब स्थानोंमें तुम दोनोंके जानेके लिये मैं विष्णुकी प्रार्थना करता हूँ । इन सब स्थानोंमें बहुत लोगोंके स्तवनाय और अमीष्टवर्षक विष्णुका परम पद यद्येष्ट स्फूर्ति प्राप्त करता है ।

१ अथर्वपुर्वाण, तुम स्तुतिप्रिय और महावीर इन्द्र और विष्णुके लिये पीने योग्य सोमरस तैयार करो । वे दोनों दुर्बल और मर्हिमावाले हैं । वे मेघके ऊपर इस तरह भ्रमण करते हैं, मानों छत्रिक्षित अश्वके ऊपर भ्रमण करते हैं ।

५ धातुत्रयसे कालत्रय अथवा गुण-त्रयका भी ग्रहण किया जा सकता है ।

त्वेषामन्था समरणं शिर्मावन्नोरिन्द्राविष्णु सुतपावामुच्यति ।
 या मन्याय प्रतिध्र यमानमिन् कृशानोरस्तुरसत मुख्ययः ॥२॥
 ता इ वधति महस्य पौंस्यं निमातरा नयति रेतसे भुजे ।
 दधाति पुत्रं वरं परं पितुर्नाम तृतीयमधिरोवने दिवः ॥३॥
 तत्सदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य तानुरवृकस्य मीढपा ।
 यः पार्थिवानि त्रिमितिद्रिणाममिरुहकमिष्टोरुतायाय जीवसे ॥४॥
 द्व इदस्य क्रमणे स्वर्गशामिष्ठाय मन्यो भुगएति ।
 तृतीयस्य नकारदधति वयश्चत पतरन्तः पतविगः ॥५॥
 चतुर्मिः साक्षं न गति न नापमिश्चकं न वृत्तं व्यती रवीतिपत् ।
 वृहच्छरोते विमिमान ऋकमिर्पुत्राहुतारः प्रयेत्याहव ॥६॥



२ इन्द्र और विष्णु, तुमलोग दृष्ट-पद हो; इमलिये यज्ञमें बचे हुए सोम पीनेवाले यजमान तुम्हारे दोषिपूर्ण आगमनको प्रशंसा करते हैं। तुम लोग मनुष्योंके लिये, शत्रु-विनाशके अग्निसे प्रदातव्य अन्न सह, प्रेरित करते हो।

३ सारे प्रसिद्ध आहुतियों इन्द्रके महान् पौरुषको बढ़ाती हैं। इन्द्र, सबकी मातृभूता छावापृथ्वीके रेत और तेज और उपभागके लिये, वही धन्वि प्रदान करते हैं। पुत्रका नाम निकृष्ट या निम्न है और पिताका नाम उत्कृष्ट या उच्च है। शुलोकके दोसिमान प्रदेशमें तृतीय नाम या पौशका नाम है अथवा वह शुलोकमें रहनेवाले इन्द्र और विष्णुके अधीन है।

४ हम सबके स्वामी, पालक, शत्रु-रहित और तक्षण विष्णुके पौरुषकी स्तुति करते हैं। विष्णुने, प्रशंसनीय लोककी रक्षाके लिये, तीन बार पाद-विज्ञाप द्वारा सारे पार्थिव लोकोंकी, विष्णु रूपसे, प्रदक्षिणा की है।

५ मनुष्यगण, कीर्तन करते हुए स्वर्गेश्वर विष्णुके द्वा पाद-ज्ञाप प्राप्त करते हैं। उनके तीसरे पाद-ज्ञापको मनुष्य नहीं पा सकते; आकाशमें उड़नेवाले पक्षी या मत्स्य भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६ विष्णुने, गति-विशेष द्वारा, विविध स्वभाववाली कालके ६४ अंशोंको, एककी तरह बुद्धाकार, परिचालित कर रखा है। विष्णु विशाल स्तुतिमें युक्त और स्तुति द्वारा जानने योग्य हैं। वह नित्य, तक्षण और अकुमार हैं। वह युद्धमें या आह्वानपर जाते हैं।

१५६ सूक्त । विष्णु देवता । जगती छन्द ।

भवामित्रो न शंख्यो घृतासुर्ताभिभूतघुस्र ए-या उरुप्रथाः ।

मघाते विष्णो विदुषा चिदर्थ्यः स्ताभो यक्षश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥

यः पूर्याथ वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवं वदाशात ।

यो जातमस्य महता महिषवत् सेदु श्रवोभर्यज्यं चिदम्यसत् ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पूर्य यथाघिद ऋतस्य गर्भं अनुषा पिपर्तन ।

आस्य जानन्तो नामर्षिद्विषकन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।

दाधार दक्षमुत्तममहर्षिदं वज्रं च विष्णुः सखिर्वा अपोणुते ॥ ४ ॥

आ द्यो निवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः ।

वेधा अजिन्वत्त्रिपथस्य आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥



२२ अनुवाक । १५७ सूक्त । अग्निद्वय देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्यामिज्जं वदेति सूर्यो व्युपाच्चन्द्रमद्यापो अर्चिपा ।

आयुक्षातामश्निना यातवः पथं प्रारता । इदेः सारिता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

१ विष्णुदेव, मित्रको तरह दूम हारे खड़ा । २ दुःत म जन, प्रकृत अन्नवान्, रक्ष शील और पृथ्व्यापी बनो । विद्वान् यजमान द्वारा हुम्हारा स्तात्र बर बर बढ़ाने था य वे; और, हुम्हारा यज्ञ हविर्वासे यजमानका आरचनीय है ।

३ जो व्यक्ति प्रवीण, मेधावान्, अत्यन्त नीति और स्वयं उत्पन्न या जगन्मातृगीत स्त्रीवाले विष्णुको प्रव्य प्रदान करता है; जो मह तुमाव विष्णु की पूजनीय आद वथा कहते हैं; वही समीप स्थान पते हैं ।

४ स्तोताओ, प्राचीन राजा गर्भभूत विष्णु का नाम जानते हैं, वैसेही स्तात्र आशिके द्वारा उनको प्रसन्न करा । विष्णु का नाम जानकर कीर्त्तन करो । विष्णु तुम मडादुभाष हो, तुम्हारा बुद्धि को हम उदात्तना करते हैं ।

५ राजा वरुण और अग्निदेवोत्तमर का विव्युक्त यजमानके यज्ञरूप विष्णु को भवा करते हैं । अश्विनाकुमार और विष्णु मित्र होकर, उत्तम और दिग्गज बल धारण करते और मेवला आच्छादन होता है ।

६ जो स्वर्गीय और अतिशय शोभनकर्मी विष्णु शोभनकर्मी इन्द्रके साथ मिलकर आते हैं, उन्हीं मेधावी तानों कोबोमें पराक्रमशाली विष्णु ने आनेवाले यजमानको प्रसन्न किया है और यजमानको यज्ञ-भाग दिया है ।

१ भूमिके ऊपर अग्नि जागे, सूर्य उगे । विराट् उषा तेज द्वारा सबको आह्लादित करके अन्धकारको दूर करती है । हे अश्विनीकुमारो, आनेके लिये अपना रथ तैयार करो । सारे संसारको अपने-अपने कर्मांमें साक्ष्य देवता नियुक्त कर ।

यद्युज्जाये वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतं ।
 अस्माकं ब्रह्म घृतनासु चिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
 अर्वाङ्गं त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
 त्रिवन्धुरो मघना विश्वसौ भगः श न आवक्षद्दिपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
 आ न ऊर्जं ब्रह्ममश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतं ।
 प्रायुस्तारिष्टं नीरपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सत्वाभुवा ॥ ४ ॥
 युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वतः ।
 युवमग्निं च वृषणावपक्ष वनस्पती रश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
 युवं ह स्थो भिषजभेपजेभिरथो हस्थो रथ्या राथ्येभिः ।
 अथो ह क्षत्रमधिधत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

२ अश्विद्वय, जिस समय तुमलोग वृष्टिदाता रथको तैयार करते हो, उस समय मधुर जल द्वारा हमारा घन बढ़ाओ । हमारे अदमियोंको अन्न द्वारा प्रसन्न करो । हम वीर संग्राममें मन प्राप्त करें ।

३ अश्वनीकुमारोंका तीन पहियोंवाला, मधुयुक्त, तेज घोड़ोंमें संयुक्त, प्रशंसित, तीन बन्धनोंवाला घन-पूर्ण और सर्व-सौभाग्य-सम्पन्न रथ हमारे सामने आवे और हमारे द्विपद (पुत्र आदि) तथा चतुष्पद (गौ आदि) को सुख ।

४ अश्वनीकुमारो, तुम दोनों हमें बल प्रदान करो । अपनी मधुमती कषा द्वारा हमें प्रसन्न करो । हमारा आयु बढ़ाओ, पाप दूर करो, दुर्बलियोंका विनाश करो और सारे कर्मोंमें हमारे साथी बनो ।

५ अश्विद्वय, तुम दोनों गमनशील तीर्थों और सारे संसारके प्राणियोंमें अन्तःस्थित गर्भोंकी रक्षा करो । अभीष्टवर्षकद्वय, अग्नि, जल और वनस्पतियोंको प्रवर्धित करो ।

६ अश्विद्वय, तुम दोनों औषध-ज्ञान द्वारा वेष्ट और रथवाहक भगवों द्वारा रथवान् हुए हो । तुम्हारा बल बहुत अधिक है; इसलिए हे उग्र अश्विद्वय, तुम्हें जो, आसक्त चित्तसे, हव्य प्रदान करता है, उसकी रक्षा करो ।

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय ।



१५८ सूक्त । अश्विद्वय वेधता । त्रिष्टप् और अनुष्टप् छन्द ।

वरूद्रा पुरुमन्तु वृधन्ता वशस्यतं नो वृणतामिष्टी ।

दस्त्रा ह यद्रेकण औन्नत्यो वां प्रय सस्ताये अकवामिरुती ॥१॥

को वां दाशत्सुमतये निदम्यै वसू यद्रे नमसा पदे गोः ।

जिगृन्मस्मे रेवनी पुग्न्धी काम्रे णेष तनसा चरन्ता ॥२॥

युक्तो हयद्रां तौग्याय पेरुर्धिमध्ये अर्णसो ध्यायि पञ्जः ।

उप वामयः शरण गमेसं ऽगो नाज्ज पनयद्भिरे ॥३॥

उग्नन्तिरीच्छ मुग् येनामामिमे पनत्रिगो िदुग्धाप ।

मामामेधो दगतयश्चिनो भक्त प्रयद्रां वद्वस्मनि स्वादति क्षाम ॥४॥

न मा गग्गन्धो मातृत्मा दासायदी सुसमुद्धमवधुः ।

शिरो यदस्य त्रैतनो वितश्चन्म्ययं दास उगो अंसावपिग्ध ॥५॥

१ हे अभीष्टवक्त्र, निवासदाता, पापहन्ता, वृद्धजानी, स्तुति द्वारा वर्द्धमान और पूजित अश्विनीकुमारो, हमें अभीष्ट फल दो; क्योंकि उच्चपुत्र दीर्घतमा तुम्हारी प्रार्थना करता है और तुम प्रवासनीय रीतिसे आश्रय प्रदान करते हो ।

२ निवासप्रद अश्विनीकुमारो, तुम्हारे इस अनुग्रहके सामने कौन तुम्हें इष्ट प्रदान कर सकता है ? अपने यक्षीय स्थाणपर हमारी स्तुति सुनकर, उसके साथ, तुम लोग बहुत धन देना चाहते हो । वरीरपुष्टिकरी, शङ्खायमाना और बहुत दूधवाली गायें प्रदान करो । यजमानोंकी अमिकावा पूर्ण करनेके लिये तुम लोग कृत-संवत्स होकर विचरण करते हो ।

३ अश्विनीकुमारो, तुम्हारे बडार कुशल और अश्वयुक्त रखके, दृष्टपुत्र भक्त्यके लिये, बल-प्रयोग द्वारा उत्पीर्ण होनेपर वह समुद्र में स्थित हुआ था । अतएव जैसे युद्ध नेता वाय द्रुतगमो अश्व द्वारा अपने घाघें आता है, वैसे ही हम तुम्हारे आश्रयके लिये हरणगत हुए हैं ।

४ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति दाघामाको रक्षा करे । प्रतिदिन घूमेवसे अहोरात्र हमें शीर्ण न करे । वरू बार प्रज्वलित आग्नि मुझे जला न सके, क्योंकि तुम्हारे आश्रित यह व्यक्ति, पशुबद्ध होकर, पृथिवीपर लेट रहा है ।

५ मातृरूप नदी-जल मुझे रुबो न दे । रभंदरी या अनार्योंने इन रुकुलिटाङ्ग वृद्धको नीचे मुँह कर फेंक दिया है । त्रैतनने इनका सिर काटा था । दासने स्वयं हृदय-देश और अंश-द्वयपर आघात दिया था ।

दीर्घतमा मामतेयो जज्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥

१५६ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृथा महीस्तुपे विदधेपु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्या धिया वार्याणि प्रभूपतः ॥१॥
उत्तमन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महिस्वतवस्तद्धवीमभीः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुह प्रजाया अमृतं घरीमभिः ॥२॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जङ्गुर्मातया पूर्वचित्तये ।
स्थानाश्च सत्यं जगतश्च धर्माणि पुत्रस्य पाथः पदमद्रयादिनः ॥३॥
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसा जामीसयांनी मिथुना समोकसा ।
नव्य नव्यं तन्तुमातन्वते दिवि समुद्रं अन्तः कवय सुदोतयः ॥४॥

६ ममताक पुत्र दीर्घतमा, दमवं कालके बोतने पर, जीर्ण दुष्ट ये । जो सब लाग कर्म-फल पानेकी इच्छा करते हैं; वे अपने नेता और सारथि हैं ।

१ यज्ञ-वर्द्धक, महान् और यज्ञकार्यमें चेतन्यकारी द्यावापृथिवीकी, मैं, विशय रूपसे, स्तुति करता हूँ । यजमान उनके पुत्र-स्वरूप हैं । उनके कर्म सुन्दर हैं । अनुग्रह करते हुए वे यजमानोंको वरणीय धन प्रदान करते हैं ।

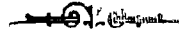
२ मैंने, आह्वान-मंत्र द्वारा, निर्दोष और पितृस्थानीय युलोकके उदार और सदाय मनको जाना है । मातृ-स्थानीय पृथिवीके मनको भी जाना है । पिता-माता (द्यावापृथिवी) अपनी शक्तसे, पुत्रोंकी, भली भाँति, रक्षा करते हुए बहुत और विस्तीर्ण असुत देते हैं । १

३ तुम्हारी सन्तान, सुकर्मा और सुदर्शन प्रजाएँ, तुम्हारे पहलेके अनुग्रहको स्मरण करके, तुम्हें महान् और माता कहकर आते हैं । पुत्र-स्वरूप स्थावर और जंगम पदार्थ द्यावा-पृथिवीके अतिशक्त और किसीको नहीं जानते । तुम उनकी रक्षाका अबाध स्थान प्रदान करते हो ।

४ द्यावापृथिवी सहोदरा भगिनी और एक स्थान रहनेवाले जाँके हैं । वे प्रज्ञा-युक्त और चेतन्यकारी हैं । किरनें उनका विभाग करती हैं । अपने कार्यमें निरल और सुप्रकाशित रश्मियाँ द्योतमान अन्तरीक्षके बीच नये-नये स्रुत पेलाती हैं ।

१ अराजर्ज और जन्मान्ध दीर्घतमाके विनाशमें असमर्थ होकर अनार्यों या गर्भदासोंने उन्हें आगमें फेंक दिया था दीर्घतमाने स्तुति की और अश्वद्वयने उन्हें बचाया । फिर गर्भदासोंने उन्हें जलमें फेंका और कुमारों-ने रक्षा की । अन्तको त्रैलोक्य नामके दासने उनका मस्तक और सिर छेद दिया । तो भी कुमारोंने उनकी रक्षा की ।

तद्वाधो अद्य सावितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतम्बिनम् ॥ ५ ॥



१६० सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुन ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥
उरुव्यवसा महिनी असध्वता पितामाता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमेव पुण्ये न रोदसी पिता यत्सीमभिरूपैरवासायत् ॥ २ ॥
स वहिः पुत्रः पित्रोः पवित्रवाग्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्नि वृषमं सुरेतरं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
त्रि यो ममे रजसी सुकृत्यया जरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
ते नो गृणाने महिनी महिश्चरः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कुण्टीस्ततनाम विश्वहा पनाटपमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

५ आज हम सविता देवताकी अनुमतिके अनुसार इस वर्णीय धनको चाहते हैं । हमारे ऊपर द्यावापृथिवी, अनुग्रह करके, गृह आदि और शत-शत गौओंमें युक्त धन दें ।

१ द्यावापृथिवी संसारके लिये स्रष्टाव्ययी, यज्ञवती, जल उत्पन्न करनेके लिये चेष्टा-सम्पन्ना, सृजाता और अपने कार्यमें निपुणा हैं । शीतमान और शुचि सूर्य द्यावापृथिवीके बीच, अपने कार्यमें, सदा गमन करते हैं ।

२ विशाल, विस्तीर्ण और परस्पर-वियुक्त माता-पिता (द्यावापृथिवी) प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । शरीरोंके मंगलके लिये ही द्यावापृथिवी मानों सचेष्ट हैं; क्योंकि पिता सारे पदार्थोंको रूप प्रदान करते हैं ।

३ पिता-माता (द्यावापृथिवी) के पुत्र सूर्य हैं । वह धीर और फलदाता हैं । अपनी बुद्धिसे वह सारे भूतोंको प्रकाशित करते हैं । वह शुक्रवर्ण धेनु (पृथिवी) और मेघन-कार्यमें समर्थ वृष (पृथिवी) को भी प्रकाशित करते हैं । वह ध्रुवकोके निर्मल दूध दूहते हैं ।

४ वह देवोंमें देवतम और कर्मियोंमें कर्मश्रेष्ठ हैं । उन्होंने सर्व-स्रष्टाहता द्यावापृथिवीको प्रकट किया है और प्राणियोंके हलके लिये द्यावापृथिवीको विभक्त करते हैं । उन्होंने छट्ठ शत्रु या खूंटेंमें इन्हें स्थिर कर रखा है ।

५ द्यावापृथिवी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम महान् हो, हमें प्रभूत अन्न और बल प्रदान करो, जिससे हम सदा पुत्र आदि प्रजाका विस्तार करें । हमारे शरीरमें प्रकाशनीय बलकी वृद्धि कर दो ।

६. सूतः । ऋभु देवता । जगता छन्दः ।

किमु श्रेष्ठः किं यद्विष्टः न आजगन्निष्क्राम्यते द्रुत्यं वयदू चम ।
 न निन्दन चमसं यो महकुलोऽग्ने भ्रतर्द्रुण इदुभूतिमूढम् ॥ १ ॥
 एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वी देवा अत्रुवन्तद्र आगमम् ।
 साध्रन्वना यद्य वा काण्यथ साकं देवैर्योक्षयातो भविष्यथ ॥ २ ॥
 अग्निं दूतं प्रात यद्वीतनः ॥ कर्ता रथ उतेह कर्त्तव्यः ।
 धेनुः कर्ता युवता कर्त्ता द्वितीयान् भ्रातरणुः कृन्वेमसि ॥ ३ ॥
 चक्रुर्वास ऋभवस्तदपृच्छन् कदभूयः स्य दूतो न आजगन् ।
 यदा वाख्यच्चमसां चतुः कृतानादित्वष्टाग्नास्वन्तर्नानजे ॥ ४ ॥
 हनामैतां इति तेषां यद्वीरोच्चमसं ये देवानामनिन्द्युः ।
 अन्या नामानि कृण्वन्ते सुते सचां अन्यैरेतान् कन्या नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१ जो हमारे पास आये हैं, वह क्या हमसे जठ है या छटे ? ये क्या देवों के दूत-कार्य के लिय आये हैं ? इन्हें क्या कहना होगा ? इन्हें कैसे पहचानेंगे ? मन्त्रः अग्निः, हम चमसको निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुलमें उत्पन्न है। उस काष्ठमय चमसकी स्मृति को हम व्याख्या करेंगे ॥

२ (अग्निने कहा) —सुधन्वा के पुत्र, एक चमसको चार बनाओ—देवोंने यह बात कहकर मुझे भेजा है। मैं तुम्हें कहने आया हूँ। तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करनेपर तुम लोग देवों के साथ यज्ञीयाभागी बनोगे।

३ अग्निदेव, देवोंने अपने दूत अग्निके प्रति जो-जो कार्य बताये हैं, उनसे अन्न बनाना होगा, स्थका निर्माण करना होगा, गौका सृजन करना होगा अथवा माता-पिताको फिर तरुण करना होगा ? आतुर, तुम्हारे इन सब कार्यों को करके अन्नको, कर्म फलके लिये, तुम्हारे पास आवेंगे।

४ ऋभुगण, वह कार्य करके तुमने देखा कि, जो दूत हमारे पास आया था, वह कहाँ गया ? जिस समय त्वष्टा या ब्रह्माने चमस ४ चार टुकड़े देखे, उसी समय वह स्त्रियोंमें विलीन गया।

५ जिस समय त्वष्टाने कहा कि, जिन्होंने देवों के पानपात्र चमसका अपमान किया है, उनका बध करना होगा, उस समयसे ऋभुगणने, सोम तेजस् होनेपर, दूमरा नाम प्रण किया और कन्या या उनकी माताने उसी नामसे पुकारकर उन्हें प्रसन्न किया।

॥ सुधन्वा के तीन पुत्रोंने देवत्व प्राप्त किया था। एक बार वे स्वाम पो रहे थे कि देवोंने वहाँ अग्नि का भोजन दिया। अग्नि उन तीनों के समान रूपों को देखकर स्वयं भी ऐसा ही रूप धारण करके सोम पीने लगे। अपने समान ही एक नये रूप को देखकर इस मन्त्रमें ऋभु स्थाग हुए रहे हैं।

इन्द्रा हरी युयुजे अशना रथं वृद्धस्वर्गिश्चरुतामुपाजत ।
 ऋभुर्विम्बा वाजो दवाँ अगच्छत स्वपसां यज्ञियं भागमैनन ॥ ६ ॥
 निश्चमेषो गमरेणीत धीतमिषाजग्न्ता युताशा कृणोतन ।
 सौधन्वना अश्वदशमश्नत युक्त्वा रथं मुरदवाँ अयातन ॥ ७ ॥
 इममुदकं पिबतेत्यश्वीतनेदं वाघा पिबता मुकुने जनम् ।
 सौधन्वना यदितन्नेव हर्षयन्तीये घ्रातवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥
 आपो भूयेष्ठ इत्येको अत्रवीदग्निभू पिबत इत्यन्यो अत्रवीत् ।
 वधयेन्तो बहुभ्यः प्रैका अत्रवीद्वतावदन्तश्चमना अपिशत ॥ ९ ॥
 श्रोणामेक उदकं शामवाजति मांसमेकः पिशति सूतयाभृतम् ।
 आनिमृचः शकुदेको अवाभरत्किंस्तितुत्रेभ्यः पिशता उपावतुः ॥ १० ॥
 उद्वस्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वस्वया नरः ।
 अगोह्यस्य यदसस्तता गृहेनद्ये दमृभवा नानुगच्छ ॥ ११ ॥

६ इन्द्रने अपने अश्वोंका सत्राया, अश्वनाकुमारनि रथ सेगार किया, वृद्धस्वर्गिश्चरुतामुपाजत गौको स्वीकार किया। इसालिये हे ऋभु, दिशु और वाज, तुम देवोंके पास गमन करा। हे युयुजस्वर्ग लोभ, म यज्ञ-भाग ग्रहण करो।

७ हे सुधन्वाके पुत्रो, तुमने आश्रयजनक कौशलने मृत घेनुके शरीरमे चमड़ा लेकर उसमे धनु उत्पन्न की, जो पिता-माता बड़े थे, उन्हें फिर युवा किया, एक अश्वने अन्य अश्व उत्पन्न किया; हम लिये रथ सेयार करके देवोंके सामने जाओ।

८ देवो, तुमने कहा था, 'हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग यही सोमरस पान करो अथवा मुकुत्र-नृगसे शोचित सोमरस पान करो। यदि इन दोनोंमें तुम्हारी इच्छा न हो, तो तीसरे (साथ) सवनमें सोमरस पीकर अत्यन्त मृत हो जाओ।' "

९ ऋभुओंमेंसे एकने कहा, "जल ही सवने श्रेष्ठ है", एकने अग्निको श्रेष्ठ बताया और तीसरेने वृद्धोंको। सभी बात कहकर ही उन्होंने चारो चमसोंको सेयार किया।

१० एक लोहितवर्ण जल या रक्त, बाहर, भूमिपर रखने हैं, दूसरे कुंभे में कटे मांसको रखते हैं, तीसरे मांससे मल आदि अलग करते हैं। किस प्रकार पिता-माता (यजमान-दम्पती) पुत्रों (पुत्रों) का उपकार कर सकते हैं?

११ प्रभूत दीक्षिणाली ऋभुओ, तुम नेता हो। प्रायिकीं भलेके लिये तुम ऊँसे स्थानपर ब्रौहि, यव आदि मृग उत्पन्न करते और सप्तर्षि करने को इच्छामे नीचेके प्रदेशमें जल उत्पन्न करते हो। सूर्यमण्डलमें अवतक तुम निहित थे; इस समय बैसा नहीं करना। अपना कार्य सिद्ध करो।

संमील्य यदुवना पर्यसर्पत क स्वित्तात्या पितराव आसतुः ।
 अशपतयः करस्त्रं च आददैयः प्राब्रवीन्प्रोतस्मा अब्रवीतन ॥१२॥
 सुषुप्त्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अब्रूवुधत् ।
 श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्याव्यख्यत ॥१३॥
 दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
 अद्विर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥



१६२ सूक्त । अश्व देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिरख्यन् ।
 यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥
 यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत स्यरानिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
 सुप्राङ्जो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूर्वणः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥
 एषच्छागः पुगे अश्वेन वाजिना पूर्णो भागो नीयते विश्वदैव्यः ।
 अभिप्रियं यत्पुगेलाशमर्धता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

१२ ऋभुओ, जिस समय तुम जलधरमें भूतोंको मिलाकर चारों ओर जाते हो, उस समय संसारके पिता-माता कहाँ रहते हैं ? जो लोग तुम्हारा हाथ पकड़ कर रोकते हैं, उन्हें नीचा दिखाओ । जो वचन द्वारा तुम्हें रोकता है, उसकी भर्त्सना करो ।

१३ ऋभुओ, तुम सूर्य-मण्डलमें सोकर सूर्यसे पूछते हो कि, “हे सूर्य, किसने हमारे कर्मको जगाया ।” सूर्य कहते हैं, “वायुने तुम्हें जगाया ।” वर्ष बीत चला, इस समय फिर तुम लोग संसारको प्रकाशित करो ।

१४ बलके नसा ऋभुओ, तुम्हारे दर्शनकी इच्छामें मरुत घुलोकसे आ रहे हैं; अग्नि, पृथ्वीसे, आते हैं; वायु, आकाशसे, आते हैं; और, वरुण, समुद्र-जलके साथ, आते हैं ।

१ खूँकि हम यज्ञमें देवजात और द्रुतगति अश्वके वीर कर्मका कीर्त्तन करते हैं; इसलिये मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और वायु हमारी निन्दा न करें ।

२ सुन्दर स्वर्णभरणसे विभूषित अश्वके सामने ऋत्विक् लोग, उत्सर्गके लिये, झाग पकड़कर ले जाते हैं । विविध वर्णके झाग, शब्द करते हुए, सामने जाते हैं । वह इन्द्र और पूषाका प्रिय अन्न हो ।

३ सब देवोंके लिये उपयुक्त झाग पूषाके ही अंशमें पड़ता है । उसे शीघ्रगामी अश्वके साथ सामने लाया जाता है । अतएव त्वष्टा देवताके सुन्दर भाजकके लिये, अश्वके साथ, इस झागसे सुखाद्य पुरोडास तैयार किया जाय ।

यद्विष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुपाः पर्यश्वं नयन्ति ।
 अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः॥४॥
 होताध्वयुं रावया अग्निमिन्धो धाविग्राम उतशंस्ता सुविप्रः ।
 तेन यज्ञं न स्वरं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वं ॥५॥
 यूपवस्का उतये यूपवाहाश्चपालं ये अस्व यूपाय तक्षति ।
 ये चावन्ते पचनं सं भग्न्त्युतो तेषामभिगूतिनं इन्वतु ॥६॥
 उप प्रागात्सुमन्मेधायि मन्म देवा नामाशा उपवीतपृष्ठः ।
 अन्वेन विप्रा ऋपयो मदन्ति देवानां पुष्टे चक्रमा सूबन्धुम् ॥७॥
 यद्वाजिनो दामसन्दानमर्चन्तो या शीर्षण्या रशना रज्जु रस्य ।
 यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥
 यदश्वस्य कविपा मक्षिकाश यद्वा स्वशौ स्वधितो रिप्तमस्ति ।
 यद्वस्तयोः शमितुयन्नस्वपु सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥
 यदुवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य कविपा गन्धो अस्ति ।
 सुकृतातच्छ्रमिदारः कृण्वन्तूत मेघं श्रुतपाकं पचन्तु ॥१०॥

४ जब श्रुतिवक् लोग देवोंके लिये प्राप्त करने योग्य अश्वका, समय-समयपर, तीन बार अग्निके पास ले जाते हैं, सब पूषाके प्रथम भागका द्वाग देवोंके यज्ञकी बातका प्रचार करके आगे जाता है ।

५ होता (देवोंका बुलानेवाले), अध्वयुं (यज्ञ-नेता), रावया (हव्यदाता), अग्निमिन्द्र (अग्नि-प्रज्वलनकर्त्ता), धाविग्राम (प्रसारद्वारा सामरस निकालनेवाले), शस्त्रा (नियमानुसार कर्मका अनुष्ठान करनेवाले) और ब्रह्मा (सब यज्ञ-कार्यों के प्रधान सम्पादक) प्रसिद्ध, अलंकृत और सुन्दर यज्ञ द्वारा नादियोंको पूर्ण करें ।

६ जो यूपक योग्य वृक्ष काटने हैं, जो यूप वृक्ष ढोते हैं, जो अश्वको बाँधनेके रूपके लिये काष्ठ-मयडप आदि तैयार करते हैं, जो अश्वके लिये पाक-पात्रका संग्रह करते हैं, हमारा संकल्प भी उन्हींका हो ।

७ हमारा मनोरथ स्वयं सिद्ध हो । मनोहर-पृष्ठ-निर्वाण अश्व, देवोंकी आशा-पूर्तिके लिये, आवे । देवोंको पुष्टिके लिये हम उसे अच्छी तरह बाँधेंगे । मेघावी श्रुतिवक् लोग आनन्दित हों ।

८ जिस रस्सीसे घोड़ेकी गर्दन बाँधी जाती है, जिससे उसके पंर बाँधे जाते हैं, जिस रस्सीसे उसका सिर बाँधा जाता है, वह सब रस्सियाँ और अश्वके मुखमें डाली जानेवाली घासें देवोंके पास आवें ।

९ अश्वका जो कच्चा हो मांस मक्खी खाती है, काटने या साफ करनेके समय हथियारमें जो लग जाता है और छेदकके हाथों तथा नखोंमें जो लग जाता है, वह सब देवोंके पास जाय ।

१० उदरका जो राजीर्ण अंश बाहर हो जाता है और अपक मांसका जो तैशमात्र रहता है, उसे छेदक निर्दोष करे और पवित्र मांस, देवोंके लिये, उपयोगी करके पकावे ।

यत्ते गात्रार्दाग्रता पच्यमानादभिभूतं निहतस्याव धार्वति ।
 मातङ्गम्यामाश्रिपामा तृणेषु देवस्यस्तदुशदभ्यो रातमस्तु ॥११॥
 ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिनिर्हरेति ।
 ये चावतो मांसभिक्षामुप सत एतो तेषामभिभूतिर्न इवतु ॥१२॥
 यन्मीक्षणं मांसपचन्या उवाया या पात्राणि यूष्ण आसेवनानि ।
 उष्ण्यापिधाना नरुणामंकाः सूताः परिभूयन्त्यश्वम् ॥१३॥
 निक्रमणं निपदनं विवर्तनं यच्च पङ्क्तीशमवर्ततः ॥
 यच्च पपी यच्च घासिं जघास सर्वान्ति अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥
 मातृवाग्निर्वनोद्धृमगन्धिर्मोखा भ्रातृत्याभिविक्तजघ्रिः ।
 इष्टवर्तमभिगर्तवषट्पलतं देवास्तः प्रतिगृष्णन्त्यश्वम् ॥१५॥
 ददशाय वास उवायुषा पपीकास्तया विरण्यान्यम् ।
 रंजनमवर्तत पङ्क्तिर्निर्हरेति देवता यामयस्तु ॥ १६ ॥
 यत्तु स्यात् मन्त्राणां शृङ्खलाया पात्राणां वा कशया वा तुतोद ।
 स्रुचेव ता हविषो अश्वरेषु सर्वातानि ब्रह्मणः सृदयामि ॥१७॥

११ अश्व, अगमे पकाते समय दुग्दारे शरीरमे जो रस निकलता आर जो कश शूलमे आबद्ध रहता है, वह महीमें गिरकर तिनकोंमें मिल न जाय । देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय ।

१२ जो लोग चारों ओरमें अश्वका पक्का देखते हैं, जो कहते हैं कि, गन्ध मनोहर है, देवोंको दो; तथा, जो मांस-भिक्षाकी अपेक्षा करते हैं, उनका संकल्प हमारा ही हो ।

१३ मांस-पाचनकी परीक्षाके लिये जो काष्ठभाग लगाया जाता है, जिन पात्रोंमें रस रक्षित होता है, जिन आण्डरनोंमें गभी रहती है, जिस घनस-शाखामे अश्वका अवयव पतने चिन्हित किया जाता है और जिस छुरिकासे, चिह्न नुसार, अवयव काटे जाते हैं, सो मश अश्वका मांस प्राप्त करते हैं ।

१४ जहाँ अश्व गया था, जहाँ बंटा था, उहाँ लेटा था, जिससे उसके पेर बाँट गये थे, जो उसने पिया था तथा जो घस हरने स्वर्था थी, सो सब देवोंके पास जाय ।

१५ अश्वगण, धूम्रगन्ध अथ तुलसी शब्दों के मक्के अथ अग्नि-योगसे उत्पन्न गन्धि माँक कमल न हो । यज्ञके लिये अभिप्रेत और हवनके लिये लाया हुआ, रस्सियोंमें प्रक्षत और वषट्कार द्वारा द्योभित अश्व देवता ग्रहण करें ।

१६ जिस आकृष्टादन योग्य वस्तुमें अश्वको आकृष्टित किया जाता है, उसको जो सोनेके गहने दिये जाते हैं, जिससे उसका सिर और पैर बाँध जाते हैं, सो सब देवोंके लिये प्रिय है । श्ववि लोग देवोंको यह सब प्रदान करते हैं ।

१७ अश्व, जोरमें नासाध्वनि करते हुए गमन करनेपर स्रु के अवात अथवा बगलके आघातसे जो व्यथा उत्पन्न हुई थी, सो सब व्यथाको, मैं, उसी प्रकार मन्त्र द्वारा आहुतिमें देता हूँ, जैसे स्रुक् द्वारा हव्य दिया जाता है ।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्कीरश्वस्य स्वधितः समेति ।
 आच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्पकरनुधुष्या विशस्त ॥ १८ ॥
 एकस्त्वष्टरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथा ऋतुः ।
 या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिरडानां प्रजुहोम्यग्री ॥ १९ ॥
 मा त्वा तपत्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते ।
 मा ते गृध्रविशस्तातिहाय छिद्रागात्राप्यसिना मिथुकः ॥ २० ॥
 न वा उ एतन्मित्रसे नारिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
 हरा ते युञ्जा पृपती अभूतामुपास्थाद्वाजी भुरि रासभस्य ॥ २१ ॥
 सुगव्यं नो वाजोऽश्वस्य पंसः पुत्राँ उत विश्वापुर्न रयिम् ।
 उनाभास्त्वं नो अदितिः कृणोतु श्रवं ना अश्वो धनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

१६३ सूक्त । अश्व देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्तसमुद्रादुत वा पुगीपात ।
 श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपतुत्यं महिजानं ते अर्चन ॥ १ ॥

१८ देवोंके बन्धु-स्वरूप अश्वको जो बगलकी टेढ़ी चौतौस हड्डियाँ हैं, उन्हें काटनेके लिये खट्ग जाता है ।
 हे अश्वस्त्रिक, ऐसा करना, जिसमें ठंग बिच्छन्न न हो जायँ । कण्ठ करके और देख देखकर एक-एक हिस्सा काटो ।

१९ ऋतु ही तेजःपुञ्ज अश्वका एक मात्र विकासक हैं । उन्हें दो, दिन-रात, धारण करते हैं । अश्व, तुम्हारे शरीरके जिन अवधियोंको, दयासमय, काटता हूँ, उनका पिरड बनाकर अग्निदेवी प्रदान करता हूँ ।

२० अश्व, तुम जिस समय देवोंके पास जाते हो, उस समय तुम्हारी प्रिय देह तुम्हें ऊँच न दे । तुम्हारे शरीरमें खट्ग अधिक क्षत न कर । मौस-लोलुप और अर्धमित्र हृदय, अस्त्र द्वारा, वर्धमान अगाको छाँवकर तुम्हारा गात्र कृपा न काटे ।

२१ अश्व, तुम न तो मरते हो और न रंभार तुम्हारी हिंसा करता है । तुम उत्तम मार्गमें, देवोंके पास, जाते हो । इन्द्रके हरि नामके दाना घोड़े और मरुतोके पृपती नामके दानो वाहन तुम्हारे रथमें जोते जायँगे । अश्विनी-कुमारोंके वाहन रासभके बत्त, तुम्हारे रथों, कोई शोच्यगामी अश्व जोता जायगा ।

२२ यह अश्व, हमें, गी और अश्वसे युक्त तथा संसार-रक्षक धन प्रदान करे, हमें पुत्र प्रदान करे । तेजस्वी अश्व, हमें पापसे बचाओ । हविर्भूत अश्व, हमें शारीरिक बल प्रदान करो

१ अश्व, तुम्हारा महान् जन्म सबकी तुम्हें याग्य है । अन्तरिक्ष या जलमें प्रथम उत्पन्न होकर, यज्ञमात्रके अनुग्रहके लिये, महान् शब्द करते हो । श्येन पक्षीके पक्षको तरह तुम्हें पक्ष हैं तथा हरिणके पदकी तरह तुम्हें पद हैं ।

यमेन दत्तं त्रित पनमायुनगिन्द्र एजं प्रथमो अष्ट्यतिष्ठत् ।
 गन्धर्वो अस्य रशनामगृष्णात्सुखं दश्वं वरुवा निरगच्छत् ॥ २ ॥
 असि यमो अस्यादक्षो अर्धन्नास त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
 असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीण दिविबन्धनानि ॥ ३ ॥
 त्रीणित आहुदिविबन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रं एयन्तः समुद्रं ।
 क्तेन मे वरुणश्छन्त्यर्धन्यत्रात आहुः पामं जनित्रम् ॥ ४ ॥
 इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफाना सनिदुनिधाना ।
 अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥
 आत्मानं ते मनसा राजानामवा दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
 शिरा अश्व्यं पथिभः सुगोभिररेणुभिर्जहमान पतात्रि ॥ ६ ॥
 अत्रा ते रूपमुत्तममश्व्यं जिगीषमपाभिर आ पदे गतः ।
 कदा ते मर्तो अनुभोगमानडादिदृशसिष्ठ ओषधीरक्षीगः ॥ ७ ॥
 अनुत्ता रणेः अनुमर्यो अद्यन्तनु सानोनुनयः दनात्ताम् ।
 अनु तानासस्तवसख्यर्मायु नु देवा मामरे वार्यं ते ॥ ८ ॥

२ यम या अजिन्न अष्ट्यतिष्ठत् । त्रित या मायुने उमे रशना आहु । स्वपर पक्ष इन्द्र चर्द और गन्धर्वो या सोमोने इसकी लगामको धारण किया । वरुणोने सूर्यसे अवका बनाया ।

३ अश्व, तुम यम, आदित्य और गोपनीय व्रतधारी त्रित हा । तुम स्वर्गके साथ मिलित हा । पुरोहित लोग कहते हैं कि, ब्रह्मलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन-स्थान हैं ।

४ अश्व, ब्रह्मलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन (वरुण, सूर्य और बुध्मान) हैं । जल या पृथिवीमें तुम्हारे तीन बन्धन (अन्न, स्थान और बीज) हैं । अन्तरीक्षमें तुम्हारे तीन बन्धन (मेघ, विद्युत् और स्तनित) हैं । तुम्हीं वरुण हा । पुरुरवविदोने जिन सब स्थानोंमें तुम्हारे परम जन्मका निर्देश किया है, वह तुम इमें वाते हो ।

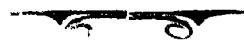
५ अश्व, मैंने देखा है, ये सब स्थान तुम्हारे अंग-सौख्य है जिस समय तुम यज्ञोंका भोजन करते हो, उस समय तुम्हारा पक्ष-चिह्न यहाँ पड़ता है । तुम्हारी जो फलप्रद बल्गा (लगाम) सत्यभूत दक्षका रक्षा करती है, उसे भी यहाँ देखा है ।

६ अश्व, दूसरे ही, मनके द्वारा, मैंने तुम्हारे शरीरको पहचाना है । तुम नीचेने, अन्तरीक्ष-मार्गमें, सूर्यमें, जाते हो । मैंने देखा है, तुम्हारा निर धूलि-शुष्क, सुबकर, मागसे छत्र मानसे, कमल; ऊपर उठता है ।

७ मैं देखता हूँ, तुम्हारा उत्कृष्ट रूप पृथिवीपर, चारों ओर, अन्नके लिये आता है । अश्व, जिस समय मनुष्य भोग लेकर तुम्हारे पास जाता है, उस समय तुम घास-घोंसल वृण आदिका भक्षण करते हो ।

८ अश्व, तुम्हारे पीछे-पीछे अश्व जाता है, मनुष्य तुम्हारे पीछे जाता है, त्रितयोंका सौभाग्य तुम्हारे पीछे जाता है । दूसरे अश्वोंने तुम्हारा अनुगमन करके मंत्रों प्राप्त की है । देव लोग तुम्हारे वीर-कर्मकी प्रशंसा करते हैं ।

विरहयशुद्धो यो अस्य पादः मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
 देवा इदस्य विरहमाश्रयो वर्जितं प्रथमो अच्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
 ईर्मातामः विलिकमश्रमायः सं श्रृणामो दिशामो अत्याः ।
 हंसा इव श्रेणिशा यतन्ते यदाक्षिपद्दिव्यमजममश्राः ॥ १० ॥
 तव क्षीरं पतशिष्यवर्धन्तव चित्तं वात इव ध्रजोमान् ।
 तव शृङ्गाणि विण्डिता पुङ्गवाण्येषु जर्भुराणां नरन्ति ॥ ११ ॥
 उपप्रागान्छसनं वाज्यर्वा देादीना मनसा दीध्यानाः ।
 अजः पुनो नोयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्निरेभाः ॥ १२ ॥
 उपप्रागान् पश्यं यन् सधस्थमर्षीं अच्छापितरं मानरं च ।
 अद्या देवाञ्जप्रथमो हि गम्या यथाशास्त्रे दाशुषे वार्याणि ॥ १४ ॥



१६४ सूक्त १२ से ४१ तकके विरहदेवगण, ४२ के प्रथमाश्र के वाक् और द्वितीयाश्र के अप्, ४३ के प्रथमाश्र के शक्ररूप और द्वितीयाश्र के सोम, ४४ के अग्नि, मूर्य और वायु, ४५ के वाक्, ४६ से ४७ तक के मूर्य, ४८ के संवत्सररूप काल, ४९ के वरमन्त्रो, ५० के सधपाय, ५१ के अग्नि और ५२ के सूर्य देवता हैं ।

अस्य नामस्य प लतस्य दानुस्तस्य भ्राता मध्यमो असुन्यश्रः ।

तुनीरो भ्राता घृतपुण्डो अस्माश्च पश्यं विशपति समपुत्रम् ॥ १ ॥

६ अश्वका सिर सोनेका है और उसके पर लाहेक तथा उगल ली हैं । वेगके समन्वयमें तो इन्द्र भी निकट हैं ।
 देवगण अश्वके इव्य-मक्षणके लिये आगे । पहले इन्द्र ही यहाँ बैठे हैं ।

१० जिस समय अश्व स्वर्गीय पथों जाता है, उस समय वह निवृद्ध-जघन-विणिष्ट होता है । पतली कमरवाले, विह्वलहाली और स्वर्गीय अश्वगण दलके-दल, हंसीकी तरह, पंक्ति-बद्ध होकर, उनके साथ जाते हैं ।

११ अश्व, तुम्हारा शरीर दाग्रगामी है, तुम्हारा चित्त भी, वायुकी तरह, शीघ्रगम्य है । तुम्हारे केसर नाना स्थानोंमें, नाना भावोंमें, अवास्थान तथा उगलमें, विविध स्थानोंमें, भ्रमण करते हैं ।

१२ वह द्रुतगामी अश्व, आसक्त चित्तों, देवोंका उपाय करने हुए, वध-स्थानमें जाता है । उनके मित्र जागको उसके आगे-आगे ले जाया जाता है । कवि स्तोत्रा पाह-पीछे जाते हैं ।

१३ द्रुतगामी अश्व, पिता और माताको प्राप्त करनेके लिये, उच्छुष्ट और एक निवास-योग्य स्थानपर गमन करता है । अश्व, आज खूब प्रसन्न होकर देवोंके पास जाओ, ताकि इव्यदाता वरणीय धन प्राप्त करे ।

१ सबसे सेवनीय और जगत्पालक होना या सूर्यके मध्यम भ्राता या वायु सर्वत्र व्याप्त हैं । उनके तीसरे भ्राता या अग्नि आहुति धारण करते हैं । भाइयोंके बीच सात किरणोंमें युक्त विशपतिको देखा गया ।

सप्त युञ्जन्तिरथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
 त्रिनाभिवक्रमजग्मनर्वं यत्रेमा विश्वाभुवनाधितस्थुः ॥ २ ॥
 इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वः ।
 सप्त स्वसारो अभिमन्त्रवन्ते यत्र गतां निहिता सप्तनाम ॥ ३ ॥
 को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदन्स्था विभर्ति ।
 भूम्या असुरसृगात्मा कस्वित् को विद्रांसमुपगान् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
 पाकः पृच्छामिमं नसावितानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
 वत्से बभूवयेधि सप्ततन्नुन्विताक्षिरे कवय आतवा उ ॥ ५ ॥
 अचिकित्वाश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्वाने न विद्वान् ।
 वियस्तस्तम्भ पङ्क्तिमा रजांस्यजस्य रूपेऽकमपि स्वदेकम् ॥ ६ ॥
 इह प्रबोतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वः ।
 शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वत्रि वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
 मातापितरमृत आ बभूज धोत्यग्रं मनसा संहि जग्मे ।
 सा बभूतसुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमोयुः ॥ ८ ॥

२ सूर्यके एकचक्र रथमें सात घाड़ें जोते गये हैं । एक ही अश्व, सात नामाने, रथ होता है । चक्रकी तीन नाभियाँ हैं । वे न तो कभी थिथिक हाँतीं, न जोरें होतीं । सारा संसार उनका आश्रय करता है ।

३ जो सात, सप्त-चक्र रथका, अभिष्ठान करने हैं वे ही सात अश्व हैं; वे ही इम रथको 'दोते' हैं । सात भगिनियाँ (किरणें) इस रथके सामने आती हैं । इसमें सात गायें (किरणें या स्वर) हैं ।

४ प्रथम उत्पन्नको किसने देखा था — जिस समय अग्नि रजिना (पङ्क्ति) ने अग्नि-युक्त (संसार) को धारण किया ? पृथिवीसे प्राण और रक्त उत्पन्न हुए, अन्तः आत्मा कहाँसे उत्पन्न हुई ? विद्वान्के पास कौन इस विषयकी जिज्ञासा करने जायगा ?

५ मैं अनादी हूँ, कुछ समयमें न आनेसे पूछ रहा हूँ । ये सब संदिग्ध बातें, देखोंके पास भी, रहस्यमयी हैं । एक वर्षके गोवत्स या सूर्यके वेष्टनके लिये मेरात्रियोंने जो मान सूर्य या मातृ सोम-यज्ञ अस्तुन किये, वह क्या है ?

६ मैं अज्ञानी हूँ । कुछ न जानकर ही जानियोंके पास जाननेकी इच्छासे पूछना हूँ । जिन्होंने इन सब लोकोंको रोक रखा है, जो जन्म-रहित रूपसे निवास करते हैं, वह क्या एक हैं ?

७ गमनहीन और सुन्दर आदित्यका स्वरूप अश्वो निगूढ़ है । वह सबके मस्तक-स्वरूप है । उनको किरणें दूध दूहतीं तथा अति विशाल तेजसे युक्त होकर प्रसो प्रकाश पुनः जलपान करती हैं । जो यह सब कथाएँ जानते हैं, वे कहें ।

८ माता (पृथिवी), वृष्टिके लिये, पिता या युलोकमें स्थित आदित्यको अनुष्ठान द्वारा पूजती हैं । इसके पहले ही पिता, भीतर-ही-भीतर, उसके साथ संगत हुए थे । गर्भ-धारणकी इच्छासे माता गर्भरससे निविद्ध हुई थी । अनेक प्रकारके हस्त उत्पन्न करनेके लिये आपसमें बातचीत भी की थी ।

युक्ता मातासौ द्वारि दक्षिणाया अतिप्रद्वर्षो वृजनीष्वन्ता ।
 अमोमेदत्सा अनुगामपश्याद्वश्वरूप्य त्रिषु लोकेषु ॥ ६ ॥
 तिस्रो मातस्त्रोन् पितान्विभ्रदेक ऊर्ध्वरसनस्यौ नेमत्र गलापयन्ति ।
 मन्त्रयन्ते दिवा अनुष्य पृष्ठ विश्वविद् पात्रमविश्वमिन्बाम् ॥ १० ॥
 द्वादशारं नदि तज्जराय वयति चक्रं पादयामृतस्य ।
 आपुत्रा अने निधुनासा अत्र समशानानि विशन्तिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥
 पञ्चपाद पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परं अर्थं पुरोपिणम् ।
 अथ मे अन्य उपरं विवक्ष्येन सप्तचक्रं पदुर आहु पितर ॥ १२ ॥
 पञ्चारे चक्रं पादवनमानं तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
 तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिमारः सनादेव न शायते सनाभिः ॥ १३ ॥
 सनामचक्रमज्जरं चित्रावृत उत्तानायां दशयुक्ता वहन्ति ।
 सूर्यस्य चक्षुरजसैत्यावृत्तं तस्मिन्नापिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

६ पिता (धाता) अभिलाष-प्राप्ति के लिये मातृशक्ति का भार वहन करने में नियुक्त है। गर्भभूत जलराशि मधुमालाके बीच थी। वत्स या वृष्टजलन शब्दों का अर्थ तीन (मेघ, वायु और किरण) के योगसे विष्वक्-रूपिणी गौ (पृथिवी) हुई अर्थात् पृथिवी शम्भ्यास्तद्धादिता हुई ।

१० एक मात्र आदित्य न न माता (पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश) और तीन पिता (अग्नि, वायु और सूर्य) का धारण करते हुए ऊपर उल्टा खड़ा है, उर्ध्वं यथा वरुणा भवति । युक्तों को पोटों देवता लोग सूर्यके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं । इस बातचीतका कोई कहीं जानना; परन्तु उसमें सबकी बातें रहती हैं ।

११ सत्यात्मक आदित्यका, बारह अंगों (राशियों) में युक्त, चक्र मार्गक चारा बार-बार-बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नहीं होता है। अग्नि, इस चक्रमें पुनः-पुनः सात सौ बीस (३५० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं ।

१२ पाँच पेटों (शतुओं) और बारह रुतों (महीनों) में संयुक्त अद्वितीय जल-नय युक्तों के पुत्रादयः रहते हैं, इस समय उन्हें कोई-कोई पुत्रीया या जलदाता कहते हैं। दूसरे कोई-कोई अंगों (शतुओं) और सात चक्रों (राशियों) में संयुक्त रथार यानमान सूर्यका 'अग्नि' करते हैं — तत्र कि, वह युक्तों के दूसरे आधेमें रहते हैं । *

१३ नियत परिवर्तमान पाँच शतुओं या अंगों (सूतों) में युक्त चक्रपर सारे भुवन विलीन हैं। उसका अक्ष प्रभूत भार-वहनमें नहीं थकता। उसकी नाभि सदा समान रहती है—कभी क्षीण नहीं होती ।

१४ समान नेमसे संयुक्त और अजोर्ण काल-चक्र निरन्तर घूम रहा है। एक साथ इस (पंच लोक-पाल और निषाद, माह्यग आदि पंच वण) ऊपर मिलकर पृथिवीका धारण करते हैं। सूर्यका नेत्र-रूप मण्डल, वृष्टिजलसे, क्षिप गया—सारे प्राणी और जगत् भी उसमें विलीन हुए ।

* यद्यपि शतु शब्द हैं, परन्तु हेमन्त और शिशिरा एक काक, उन दिनों, "पञ्चशतु" भी कहनेकी परिपाटी थी। किसी-किसीके मतसे यहाँ 'पुत्रादयः' और 'दूसरे आधे'का मतलब सूर्यके दक्षिणाधन और उत्तराधनसे है ।

साकज्ज नां समथमाहुरेकजं पांडित्यमा श्रपयो देवजा इति ।
 तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥
 स्त्रियः सतीस्तां उमे पुंस आहुः पश्यदक्षएवान्न विचेतदन्धः ।
 कार्ययः पुत्रः स ईमानिकेत यस्ताविजानात् स पितुन्पितासत् ॥ १६ ॥
 अवः परेण पर एनावरेण पद्मा वत्सं विभ्रती गौरुदस्थः ॥
 साकद्रोचोक्तं सिद्धं परायात् कस्विन् सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
 अवः परेण पितरं यो अस्यानुदेह पर एनावरेण ।
 कवीयमानः क इह प्रवोचद्देवं मनः कृता अधिप्रजातम् ॥ १८ ॥
 ये अर्वाञ्जस्तां उ परान् आहुर्ग एराञ्जस्तां उ अर्वा च आहुः ।
 इन्द्रश्च या चक्रयः सोम तानि धृगा न यु का रजसो ब्रह्मणि ॥ १९ ॥
 द्वा सुपर्णा समुज्जा स्वयाया समानं बभ्रुं परिपस्वजाने ।
 तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वक्ष्यतश्नन्नन्यो अभिनाकशीति ॥ ० ॥

१५ आदित्यकी सभ्नाया श्रुतार्थ सतीतां (जात जास गला) श्रुत अगली है । अन्य छ श्रुतएँ जोड़ी हैं, गमनशाल है और देवोंमें उत्पन्न है । ये श्रुतएँ सबकी दृष्ट, स्थात-भस्ते पृथक्-पृथक् स्थापित और रूप-भेदसे विविध आकृतियोंमें संयुक्त है । वे अपने अविष्टताके दिने बारबार घूमती हैं ।

१६ किर्ण की ताऊ भी पुरुष है । जिन्हें ओख में वेदा यह सब कहने हैं; जिनकी दृष्टि मोटी है, वे नहीं । जो पुत्र मेवावी हैं, वही यह समझ सकते हैं । वे यह सब बातें समझ सकते हैं; वे ही पिताके पिता हैं । ३

१७ वत्स, यजमान या आश्रित पित्रका साथ सामवत पेरने और सम्मुख-भाग पीछेके पैरमें धारण करते हुए गौ, आदित्य-रश्मि या आहुति ऊपरकी ओर जाती है । वह कहाँ जाती है ? किमहं लिए आघे शान्तेसे लौट आवे ? कहाँ प्रसव करती है ? इसके बीच प्रपन्न नहीं करता ।

१८ जो अवःस्थित (अंध) अकालकका ऊर्ध्वस्थित (मूर्ख) के साथ और ऊर्ध्वस्थितको अवःस्थितके साथ उपासना करते हैं, वे ही मेवावाकी तरह आवरण कर रहे हैं । अपने यह सब बातें कही हैं ? कहाँसे यह अलौकिक मन उत्पन्न हुआ है ?

१९ जिन्हें विद्वान् लोग अशामुख कहते हैं, उनकी ऊर्ध्वमुख भी कहते हैं और जिन्हें ऊर्ध्वमुख कहते हैं, उन्हें अशामुख भी कहते हैं । सोम, सुमेने और इन्द्रने जो सगंडद्रव्य बनाया है, वह युग-युक्त अब आदिकी तरह विरवका भार वहन करता है । ५

२० दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा), मित्रताके साथ, एक वृक्ष या शरीरमें रहते हैं । उनमें एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पलका भक्षण करना और दूसरा (परमात्मा) कुत भी भक्षण (भोग) नहीं करता, केवल दृष्टा है ।

३ सुधीकरण, उदक-रूप गम धारण करनेमें, स्त्रो और वृष्ट-जलका सेवन करनेसे पुरुष, कहाँतो हैं । वृष्टि-दानके कारण किरणें संसारके पिता हैं और सूर्य किरणोंके पिता हैं ।

५ दोनों गण्डक सूर्य और चन्द्र हैं । इनकी किरणें ऊर्ध्वमुख और अशामुख होते हैं ।

यथा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदधाभिरुचरन्ति ।
 इनां विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः पाकमत्राग्निं वेश ॥ २१ ॥
 यस्मिन् वृक्ष मध्ववः सुपर्णा निविशन्ते सुषते चाग्निं विश्वं ।
 तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्विषं तन्नोन्नशयः पितरं न वेद ॥ २२ ॥
 यद्गायत्र अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभाह्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
 यद्वा अगजगत्याहितं पदं य इत्तादृदुर्ने अमृतत्वमानशु ॥ २३ ॥
 गायत्रेण ज्ञातमिमेति अकर्मकण सामत्रैष्टुभेन वाकम् ।
 वाकेन वाकं द्विषदाक्षतुष्पादाक्षरेण मिमेति सप्तवाणाः ॥ २४ ॥
 रजता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथान्तरे सूर्यं गणपश्यन् ।
 गायत्रस्य समिधास्तिस्र आहुस्ततां महा परिगिन्ने जलित्वा ॥ २५ ॥
 उच्छ्रये सुदुधां धेनुमेतां सुहस्ता गोधुगुत दोहैनाम ।
 श्रेष्ठं स्रव सविता साविपः नोभीक्ष्णो धमस्तदपु प्रोचम ॥ २६ ॥

२१ जिनमें (सूर्य, य मण्डलमें) छन्दरगाते रागमयी, कर्तव्य जानसे, अमृतका अंश लेकर सदा जाती हैं और जा प्रौर भावसे, सारे भुवनोंकी रक्षा करते हैं, मेरा अपारपक्ष बुद्ध होनेपर भी मुझे, उन्हें ने, स्थापित किया । ॐ

२२ जिस (आदित्य)-वृक्षपर जलमाहा (कण, रातको, बरानी ओर सप्ताहके ऊपर, प्रातःकालमें, दोसि प्रश्रव करती) । वहानू लोग उनका फल प्रापणीय बताते हैं । जो व्यक्ति पिप्पल (सूर्य या परमा-मा) को नहीं जानता, वह इस फलका नहीं प्राप्त करता ।

२३ जो पृथिवीपर अग्निका स्थान जानते हैं, जो जानते हैं कि, देवीने, अन्तरीक्षमें, वायुको उत्पन्न किया है तथा जो ऊर्ध्वर्धन प्रदेशमें आदित्यका स्थान जानते हैं, वे अमृत त्व पाने हैं ।

२४ उन्होंने गायत्री छन्द द्वारा पूजन-मंत्रका सृष्टि का, अचना-मंत्र द्वारा सामका बनाया, त्रिष्टुप द्वारा द्वृच-तृच-रूप वाक्का निर्माण किया, द्विषाद और चतुष्पाद वचनके द्वारा अनुवाक-रचना की तथा अक्षर-याजना द्वारा सातो छन्दोंकी रचना की ।

२५ जगती छन्द द्वारा उन्होंने वाक्को स्तम्भित कर रखा है, रथन्तर साम या सूर्य-सम्बन्धीय मंत्रमें सूर्यको देखा है । पण्डित लोग कहते हैं कि, गायत्रीक तीन चरण हैं, इसाक्षय गायत्री, माहात्म्य और आजस्वतामें, अन्य सबको लांच जाती है ।

२६ मैं इस दुग्धवती गौती बुझाता हू । तृष्ण दूधनेमें निरुप्य व्यक्ति उसे दूता है । इसी सामके अष्ट भागको सविता ग्रहण करें; क्योंकि उसमें उनका तेज प्रवृद्ध होगा । इस लय में उन्हे बुलता हूँ कि

ॐ मतलब यह कि, आदित्यन मुझे अपन मण्डलमें स्थान दिया ।

ॐ सायणने इस सूचाका एक अन्य प्रसारका भी किया है, जिसमें चतुका अर्ध मेघ और गोधुक्का वायु या आदित्य कहा गया है ।

हिङ्कृ एवती घसुपत्नी वसुनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्
 दुहामाश्विन्यां पयो अक्षयेयं सावर्धतां भूते सौमगाय ॥ २७ ॥
 गौरमावेदु वरसं मिपन्त सूक्तानि हिङ्कृणोन्मातया उ ।
 सूक्ताण घममाभवावशना मिमाति मायं पयते पयाभिः ॥ २८ ॥
 अयं सशिङ्कृ येन गौरभीवृता मिमाति मायं धवसुनावधिधिता ।
 सा चात्तिभिर्निहि चकार मृत्यं वितृद्भवन्ती प्रतिवाव्रमीहत ॥ २९ ॥
 अनच्छये तुमगातु जीवमेजदधुघं मध्य आपस्त्यानःम् ।
 जीवां मृतस्य चरति श्वघांभमर्त्यो मर्त्यना सयाभिः ॥ ३० ॥
 अपश्यं गोपामनिधयमानमा च परा च पांथमश्चरन्तम् ।
 स सुधीचाः स विपूचवसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥
 य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिङ्गिन्नु तस्मात् ।
 स मातुर्योना परिधीता अन्तर्दहप्रजान्मृतिमाविषेश ॥ ३२ ॥
 द्यौम पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्म माता पृथिवी महीयम ।
 उत्तानयोश्चम्वोर्धोनरन्तरा पिता दुहितुर्गर्भाधात् ॥ ३३ ॥

२७ घनशाली घेनु, वत्सके लिये, मन ही मन, व्यग्र होकर "हम्वा" करती हुई, आती है। यह अग्निनीकुमारोंके लिये दूध दे और महासौभाग्य-लाभके लिये प्रवृद्ध हो।

२८ घेनु, नेत्र बन्द किये बद्धके लिये, "हम्वा" शब्द करती है। बद्धका मस्तक चाटनेके लिये "हम्वा" रव करती है। बद्धके ओंठोंपर गाज या पल देकर घेनु "हम्वा" रव करती तथा यथेष्ट दूध पिलाकर उसे पारपुष्ट करती है।

२९ बद्धका, घेनुके चारों ओर घूमकर, कठपल्ल शब्द करना है और गोचर-भूमिमें गाय "हम्वा" करती है। घेनु, पशु-ज्ञान द्वारा, घेनुर्ध्याको लज्जित करती है और द्यौतमान होकर अपना रूप प्रकट करती है।

३० चञ्चल, प्रवास-प्रवास शील और अपनी कार्य-सिद्धिमें व्यग्र जीव सोकर घरमें, अविचल भावसे, अवस्थित हुआ। मर्त्यके साथ उत्पन्न मर्त्यका अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ सदा विहरण करता है।

३१ मैं इन रक्षक और प्रसन्न आदित्यको अन्तरीक्षमें आते-जाते देखता हूँ। सर्वत्रगामिनी और सहगामिनी किरण-मालासे आलङ्कारित होकर भुवनों- बार-बार आते-जाते हैं।

३२ जिसने गर्भ किया है, वह भी उसका तत्त्व नहीं जानता। जिसने उसको देखा है, वह उसके पास भी लुप्त है। मातृ-योनिके बीच बैठे हाकर वह गर्भ बहुत रुचानवान् होता और पाप-लिप्त होता है।

३३ स्वर्ग मेरा पालक और जनक है, पृथिवीको नाभि मेरा मित्र है और यह विस्तृत पृथिवी मेरी माता है। उच्च पात्र-द्वय (आकाश और पृथिवी) के बीच स्थान (अन्तरीक्ष) है। यहाँ पिता (घेनु) दूगन्धता (पृथिवी) का गर्भ उत्पादन करता है।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
 पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥
 इयं वोदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
 अयं सोमो वृष्णा अश्वस्य रेतो ब्रह्मार्थं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥
 सप्तार्थगर्भो भुवनस्य रेतो विष्णास्तिष्ठन्ति द्वादशा विधर्मणि ।
 ते धातिर्मनसा ते विश्वतः पृथिव्यः परमवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥
 न विजानाम यदिदमारम निरयः सन्नद्धो मनसा चराम ।
 यदा मागन प्रथमजा ऋतस्यादिताक्षो अश्ववे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
 अपाङ्गमुत्तमं स्वधया गृमातामर्त्यनिर्धेना सयानः ।
 ता शश्वन्ता विपुत्राना विद्यन्तान्ययं चक्रयुण निचिकुरन्यम् ॥ ३८ ॥
 ऋचो अक्षरे परमे व्यामन्यस्मिन्देवा आधविश्वे पिबुः ।
 यस्तन्न वेद किमुवा काप्यात य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

३४ मैं तुमसे पूछता हूँ, पृथिवीका अन्त कहीं है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, संसारकी नाभि (उत्पत्ति-स्थान) कहीं है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, मेघन-समर्थ अश्वका रेत क्या है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, समस्त वाक्चोका परम स्थान कहीं है ?

३५ यह वेद ही पृथिवीका अन्त है, यह यज्ञ ही संसारकी नाभि है, यह सोम ही मेघन-समर्थ अश्वका रेत है और यह ब्रह्मा या ऋत्विक् व काका परम स्थान है ।

३६ सात क्रियाएँ आधे वर्षतक गर्भ धारण या वृष्टिको उत्पन्न करके तथा संसारमें रेतः-स्वरूप या वृष्टिदान द्वारा जगत्का सारभूत होकर विष्णु या आदित्यके कार्यमें नियुक्त हैं । वह जाता और सर्वतत्त्वामी है । वह प्रज्ञा द्वारा, भीतर-ही-भीतर, सारे जगत्को व्याप्त किये हुए है ।

३७ मैं यह हूँ कि, नहीं—मैं नहीं जानता; क्योंकि मैं अज्ञ-चित्त हूँ, अगहरी तरह आबद्ध होकर निश्चितचित्त रहता हूँ । इस समय ज्ञानका प्रथम उन्मेष होता है, उसी समय मैं वाक्चका अधः समझ सकता हूँ ।

३८ नित्य, अनित्यके साथ एक स्थानगत, रहता है; अन्त्यय शरीर प्राप्त कर वह कभी अघोरेण और कभी ऊर्ध्वदेशमें जाता है । वह सदा एक साथ रहते हैं, इस संसारमें स्वप्न एक साथ जते हैं; परलोकमें भी, सब स्थानोंपर, एक साथ जाते हैं । संसार इनमें एकको (अनित्यको) पहचान सकता है—दूसरे (अन्त्यय) को नहीं ।

३९ सारे देवता महाकाशके समान मन्त्राक्षरोंपर उपवेशन किये हुए हैं—इस बातको जो नहीं-जानता, वह ऋचासे क्या करेगा ? इस बातको जो जानता है, वह छुपसे रहता है ।

सृष्टवसान्नागवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम ।
 अद्धि तृणमध्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥
 गौरामिमांशु सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
 अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥
 तस्याः समुद्रा अधिविक्षन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
 ततः क्षात्यक्षरन्तद्दिशमुपजीवति ॥४२॥
 शक्यमयं धूम्रमादपश्यं विदूषता पर पला वरेण ।
 उक्षाण पृश्निपचन्त वीरास्त्वानि शर्माणि पथम न्यासन् ॥४३॥
 त्रयः केशिन ऋतुथा चितक्षन् सवसरे वपन एक एषाम् ।
 विश्वमेका अभिषट् शचीमध्याह्निकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥
 नृत्नारि वाक्परिमिता पद नि तारि विदुर्वाह्या ये मनीषिणः ।
 गुहा त्रीणि निहितानि ज्ञयन्ति तुरीयं तानी मनुष्या चन्दन्ति ॥४५॥

४० अहममीया गो ! शोभन शब्द, तृण आदि का भक्षण करा और योगेष्ट दुग्धवती बनो । ऐसा करनेपर हम भी प्रभूत बनवासे हो जायेंगे । सदा तृण चरो और सर्वत्र घूँते हुए निर्मल जल का पान करो ।

४१ मेघ-ननाद-रूपिणी और अन्तरीक्ष-विधारिणी वाक्, वृष्टि-जल को वृष्टि करते हुए, शब्द करती है । वह कभी एकपदी, कभी द्विपदी, कभी चतुष्पदी, कभी अष्टपदी और कभी नवपदी होती है । कभी-कभी तो सहस्राक्षर-परिमिता होकर, अन्तरीक्ष के ऊपर स्थित होकर, शब्द करती है । ॐ

४२ इसके पास से सारे मेघ वषा करते हैं, उनीसे चारा दिशाओं में आश्रित सूर्यों की रक्षा होती है । उसीसे जल उत्पन्न होता और जल से सारे जीव प्राण धारण करते हैं ।

४३ मैंने पास ही सूखे गात्र में उत्पन्न धूम्र देखी । चार दिशाओं में व्याप्त निकट धूम के बाद अग्नि को देखा । वीर या शक्ति के लोग दुष्क वर्ण वृष या पल्लवता साम्राजा पक करते हैं । उनका यही प्रथम अनुष्ठान है ।

४४ केश-युक्त तीन व्याक्त (आग्नि, अक्षय, वायु) वपन बोल, तथा समय, भूमिका परीक्षण करते हैं । उनमें एक जन पृथ्वी का क्षारकम करत है, दूसरे अपने कार्य द्वारा परीक्षण करते हैं और तीसरे का रूप नहीं देखा जाता, केवल गति देखी जाती है ।

४५ वाक् चार प्रकार की है । मेघावी योगी उसे जानते हैं । उसमें तीन गुह्य हैं, प्रकट नहीं हैं । चौथे प्रकार की वाक् मनुष्य बोलते हैं । x

ॐ केवल मेघ में रहनेपर एकपद, मेघ और अन्तरीक्ष में द्विपदा, चार दिशाओं में चतुष्पदी और चतुर्दक्ष दिशा चतुष्कोण में रहनेपर अष्टपदी एवं इनके साथ उदुप्य दिशा को मिलनेपर नवपदी नाम पड़ता है ।

x मंथ, कल्प, महाकाल, कौकिक या परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वेखरी आदि चार वक् हैं ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर्था दिव्यः स सृपणो गुरुमानः ।
 एकं सन्निधा बहुधा वदन् यज्ञं यमं मतरिश्वाणम् हुः ॥४६॥
 कृष्णं नित्यान्तर्यः सृपणो अपोवसाना दिवमुत्तमन्ति ।
 त आचवृत्रन्तुपद्मद्वन्द्वरुणादिजृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥
 द्वादश प्रथमश्रकोकं त्रीणि नमशति क उतश्चिकेन ।
 तस्मिन्माकां त्रिगतः न शङ्कोर्पिताः यष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥
 यस्मिन् स्वतः शशया यो न रोभ्यन्त शिवा पुष्यसि वार्याणि ।
 यो रत्नया चतुरियः सुद्वजः काशरानि तमिह धातवे कः ॥४९॥
 यज्ञेन यजयजन्त देवाभ्यन्ति धर्माणि प्रथमाभ्यामन् ।
 ते ह ताकं प्रदिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साधयाः सन्ति देवाः ॥५०॥
 समानेनैवदुरमुच्येत्यत्र चादमिः ।
 भूमिं पर्जन्या जित्वन्ति दिवं जित्वन्त्यग्रयः ॥५१॥

४६ में मित्र जो लोग इन अर्द्धवर्तों इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहा करते हैं। यह स्वर्गीय, पक्षबाले (गर्भ) और सृष्टि गमनबाले हैं। यह एक हैं, जो भी इन्होंने अनेक कहा गया है। इन्होंने अग्नि, यम और मातरिश्वा कहा जाता है।

४७ सृष्टि गतिबाली और जल-धारिणी सूर्य-करण कुण्डल और नियत-गति मेखको जलपूर्ण करते हुए पृथ्वीके गमन करते हैं। वह वृष्टिके स्वातन्त्र्य नीचे आती हैं और पृथ्वीको अकसे, अच्छी तरह, भिगोती हैं।

४८ बारह परिवर्तों (राहियों), एक वर्ष (वर्ष) और तीन मासियाँ हैं। यह बात कौन जानता है? इस वर्ष (वर्ष) में तीन सौ सा ठहर या खड़े हैं।

४९ सरस्वती, इन्द्राग्ने शरीरमें रहनेवाला जो गुण संसारके सुखका कारण है, जिससे सारे वरणीय धर्मोंकी रक्षा करती हो, जो गुण बहुलताका आधार है, जो समस्त धन प्राप्त किये हुए है और जो वसुधावहारी है, इस समय हमारे ध्यानके लिये देने प्रकट करो।

५० देवी वा यजमानोंन यज्ञ या अग्नि द्वारा यज्ञ किया है; क्योंकि वही प्रथम धर्म है। वह माहात्म्य आकाशमें एकत्र है, जहाँ पहलेसे ही साधन या देवता हैं।

५१ एक एक ही तरहका है; कभी ऊपर और कभी नीचे जाता-आता है। प्रत्यन्तना-इत्यादि मेघ भूमिको प्रसन्न करते हैं। अग्नि पृथ्वीको प्रसन्न करते हैं।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शनमोपधोनाम् ।
अभीपतो वृष्टिमिस्तर्पयन्त सारस्वन्तमग्ने जोड्योमि ॥५२॥

२३ अनुवाक । १६५ सूक्त । इन्द्र देवता । यहाँ १६१ सूक्तों तक के ऋषि अगस्त्य हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

इस सूक्त में इन्द्र, मरुत और अगस्त्य की बातचीत है । इस ४ तमारे पाँचवें, सातवें और नवें मंत्र मरुत के वचन हैं; इसलिये उनके ऋषि मरुत हैं । तीनों के ऋषि अगस्त्य हैं । अर्वाचिष्ट के ऋषि इन्द्र हैं ।

कया शुभा सवयसः सनीलः समान्या प्रहृतः संमिमिश्रः ।
कया मतो कुन एतास एतेर्चन्ति शुभं वृषणो वसूया ॥१॥
कस्य ब्रह्मा ण जृत्पुयुवानः को अधरे मरुत आचरते ।
श्येनौ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महामनसा रोरमाम ॥२॥
कुतस्त्वमिन्द्र मादिनः सन्नेको यासि सव्यते किम्न इत्या ।
संघृच्छसे समरणः शुमानैव चस्तन्नो हरिको यत्न अस्मे ॥३॥
ब्रह्मा ण मे मनयः शंसुतासः शुष्म इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आशासने प्रतिहयन्तु कथेमा हरो वहनस्तानो अच्छ ॥४॥

५२ सूयदेव स्वर्गाय छन्दः गानवादे, गमनशील, एक पद, जलक गर्भोन्मादक और आर्वाचिर्वीक प्रकाशक हैं । वह वृष्टि द्वारा जलाशयका तृप्त और नदी की पालित करते हैं । रक्षक लिये उन्हें बुलाता हूँ । ३

१ (इन्द्र) समानवयस्क और एक स्थान-निवासी मरुत लोग सर्व-साधारण की तुल्य शोभासे युक्त होकर पृथिवीपर सिञ्चन करते हैं । मन में क्या सोचकर वे, किस देशसे, आये हैं ? आकर जलधर्षण-गम, घन-लाभको इच्छासे, क्या बलकी अर्पणा करते हैं ?

२ सव्यवयस्क मरुदुगण किसका इच्छा ग्रहण करते हैं ? वे अन्तरीक्षचारी श्येन पक्षीकी तरह हैं । यज्ञ में उन्हें कौन हटा सकता है ? कैसे महास्तात्र द्वारा हम उन्हें आनन्दित करें ?

३ (मरुदुगण) हे साधुपालक और पूज्य इन्द्र, तुम अकेले कहीं जा रहे हो ? तुम क्या ऐसे ही हो ? हमारे साथ मिलकर तुमने ठीक ही पूछा है । हरि-वाहन, हमारे लिये जो वक्तव्य है, वह भीते बचोते रहो ।

४ (इन्द्र) सारा इच्छा मेरी है; सारी स्तुति मेरे लिये सुबकर है; प्रस्तुत साम मेरा है । मेरा मजबूत वज्र, कैंके जागेवर, अव्यर्थ होता है । यजमान कांग मेरी ही प्रार्थना करते हैं, ऋद्ध-मंत्र मुझे ही चाहते हैं । ये हरि नामके दोनों बोक, इच्छा-लाभके लिये, मुझे दाने हैं ।

३ इस सूक्त के सारे मंत्र अथर्व में भी पाये जाते हैं; इसलिये बहुतों का मत है कि, यह सूक्त ऋग्वेद के बननेके अनन्तर रचा गया है ।

अतो वयमन्तमेभिर्युक्ताः स्वभ्रजमिरतन्वः शम्भम नाः ।
 महाभिरैतां उपगृह्णहे । नान्द्र स्वधामनु हि ना बभूव ॥१॥
 क स्यावो मरुतः स्वधातीत्यन्मामेव समवत्ताहि हत्ये ।
 अहं ह्यप्रसूविषन्तुविष्मन्निशान्य शत्रे रनमं वधम्नैः ॥६॥
 भूति चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्युषम पौंस्यभिः ।
 भूतिणि हि कृणवामा शक्तिन्द्र कथा मरुतो यदशम ॥७॥
 दधौ वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन मादेन तविषो बभूवान् ।
 अहमेता मनघे विश्वश्रन्द्राः सुगा अपश्रकर यज्रबाहुः ॥८॥
 अनुत्तमा ते मघान्नकनं न त्वासां अस्मि देवता विद्वानः ।
 न जायमानो नशने न जाना यानि कस्मिन् कृण्वहि प्रवृत्र ॥९॥
 एकस्य त्विमे विन्वस्ताजो या नु दधूयान् कृण्वे मनीषा ।
 अह ह्यग्रा मरुतो विद्वानो यानि चयविमिन्द्र इन्द्राश पयाम् ॥१०॥
 अम-दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे तरः श्रुत्यं ब्रह्मनक ।
 इन्द्राय वृष्ण सुमन्त्राय गहां सख्ये सम्वायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

५ (मरुद्वराण) इसीलिये हम महातज्जे अपन शरीरका अलंकृत करके, निकट-त्यों और बली अवसोले युक्त होकर, यज्ञस्थानमें जानेके लिये शास्त्र ही तयार हुए हैं । तुम रेत या बलके साथ हमारे साथ ही रहो ।

६ (इन्द्र) मरुतो, अहं या वृत्रासुरक बचके समय मेरे साथ रहनेका तुम्हारा हंग कहीं था ? मैं जब बलिह साहाय्यवाला हूँ, इसीलिये मैंने सारे शत्रुओंका, बध द्वारा, परास्त किया है ।

७ (मरुद्वराण) अभीष्ट-वर्षा इन्द्र, हम समान पौरुषशाले हैं । हमारे साथ मिलकर तुमने बहुत कुछ किया है । बलवत्तम इन्द्र, हमने भी बहुत काम किया है । हम मरुत हैं, इसीलिये कार्य द्वारा हम वृष्टि आदिको कामना करते हैं ।

८ (इन्द्र) मरुतो, ऋषिके समय विशाल पराक्रमी बनकर, अपने वाहुबलसे, वृत्रको पराजित किया है । मैं बल-वाहु हूँ । मैं मनुष्यके लिये सबकी प्रसन्नता-दायक सुन्दर कृति किया करता हूँ ।

९ (मरुद्वराण) इन्द्र, तुम्हारा सभी कुछ उत्तम है । तुम्हारे समान कोई देवता विद्वान् नहीं है । अतीव बलशाली इन्द्र, तुमने जो कर्तव्य कर्मोंको किया है, उन्हें न तो कोई पहले कर सका, न आगे कर सकता है ।

१० (इन्द्र) मैं अकेला हूँ । मेरा ही बल सर्वत्र व्याप्त हो; मैं जो चाहूँ, प्राप्त कर डालूँ; क्योंकि, मरुतो, मैं बल और विद्ववान् हूँ एवं जिन घनोंका मुझ पता है, उनका मैं ही अधीश्वर हूँ ।

११ मरुतो, इस सम्बन्धमें तुमने मेरा जो प्रसिद्ध स्तोत्र किया है, वह मुझे आनन्दित करता है । मैं अनीयक-दाता, ऐश्वर्यवादी, विभिन्न कर्षोवाला और तुम्हारा योग्य मित्र हूँ ।

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
 संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥
 कोन्वत्र मरुतो मामहे वः प्रायानन सखो रच्छा सखायः ।
 मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत त्वेदाम श्रुतानाम् ॥१३॥
 था यदुदु नस्याह वसे न कारुस्माञ्जके मान्यस्य मेधा ।
 ओषुनर्त मरुतो विप्रसच्छेमा ब्रह्माणि जरिता घो अर्चन् ॥१४॥
 एयः वः स्तामो मरुत इयं गार्मान्दार्थस्य मान्यस्य कारोः ।
 एषा यासोष्टः तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

१२ मरुतो, तुम सानके रगके हा । मेरे लिये प्रसन्न होकर द्रव्य कीर्ति और अन्न धारण करते हुए मुझे अच्छी तरहसे प्रकाश और तेज द्वारा आच्छादित किया है । मुझे आच्छादित करो ।

१३ (अगस्त्य) मरुतो, कान मनुष्य तुम्हारी पूजा करता है ? हम सबके मित्र हो । तुम यजमानके सामने आओ । मरुतो, तुम मनोहर धनकी प्राप्तिके उपाय-भूत बनो और सत्य कर्मको जानो ।

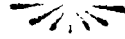
१४ मरुतो, स्तोत्र द्वारा परिचरन-समर्थ, स्तुत-कुशल और मान्य श्रुतिवशकी बुद्धि, तुम्हारी सेवाके लिये, हमारे सामने, आती है । मरुता, मैं मेरावी हूँ । मेरे सामने आओ । तुम्हारे प्रसिद्ध कर्मको लक्ष्य कर स्तोता तुम्हारा पूजन करता है ।

१५ मरुतो, वह स्तोत्र और यद स्तुति माननीय और प्रसन्नतादायक है अथवा मान्य मान्य कबिकी है । वह शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास जाता है । हम अन्न, वस्त्र और शीत अथवा जल, शोक और दान पावें ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त



चतुर्थ अध्याय



१६६ सूक्त । मरुदुगण देवता । अतस्त्य ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तन्नु वोचाम रमसाय जग्मने पूर्वं महित्वं वृषमस्य येतवे ।
 एथ व यामन्मरुस्तुविष्णवे यु । । शक्रास्तत्रिप णि कर्तन ॥१॥
 नित्य न सूतुं मधुं भूत व का प्रान काडा विदथपु प्रकथः ।
 मध्वन्त रुद्रः अहसा नमामिन्त न मधोन्त रु ततसा हविष्कृतम् ॥२॥
 यस्मा ऊमासो अमृता अरास्त रायस्पाप च हविषा दद शुभे ।
 उक्षन्त्यस्मै मरुतो देता इव पुन रजो स एयसा मयं भुवः ॥३॥
 आ ये रसास्त हविर्षामिरव्यत प्र व एवासा स्वयता नो अध्रजन् ।
 मयन्ते विश्वा भुजन्ति हव्या निश्वा वो याम प्रयत्न स्पृष्टिषु ॥४॥
 यत्त्वेपयामा नश्यन्त पथेतान्दता वा पृष्ठं नरा अचुच्यवः ।
 विश्वो वो अजमन्मयने दनस्वना रथायन्ताव प्रहिता आपन्निः ॥५॥

१ एक वर्षक यज्ञक समर्पादनक लि। मरुताके शास्त्र आकर अवस्थित हानक लि। उनक पवित्र पूर्वतन माहात्म्यको कहता हूँ । हे विशाल ध्वनिसे युक्त और पवित्र कार्योनि हमसे मरुदुगण, तुम्हारे यज्ञ स्थलमें जानके लिये प्रस्तुत होनेपर ऐसे समिधा तजसे आवृत्त होता है, वने हो तुम लाभ युद्धमें जानके लिये प्रभूत बल प्राप्त करो ।

२ औरस पुत्रकी तरह प्रिय-मधुर हव्य धारण करके दण्डकारी मरुदुगण, प्रसन्न चित्तसे, यज्ञमें क्रीड़ा करते हैं । विनीत यजमानका रक्षाके लिये रुद्रागम मिलता है । इनके बल इनके अवीर्य है; यकना यजमानको क्लेश नहीं होते ।

३ जिस हविर्षिता यजमानको अनुनिसे प्रमन्न होकर सर्वरक्षक, अमर और सुवर्त्पादक मरुदुगण यष्ट वन होते हैं, उसी यजमानके हितकारी सहायक । तब पुनः काय समस्त सन्तारकी आरुही तर सा चले हा ।

४ मरुतो, तुम्हारे शरवगण, अपने बलसे, जोरे सारहा अवग करते हैं; वे अपः वा रयसे युक्त होकर जाते हैं । तुम्हारी यात्रा अत्यन्त आश्चर्यमयी है । हविषार उद्यानपर जो लान संस्कार करते हैं, ऐसे ही जोरे भुवन और अहोहि-कार्य, तुम्हारे यात्रा-कार्यमें, करती हैं ।

५ मरुतोका गमन अत्यन्त प्रदीप्त है । वे जिस समय गिरि-पर्वतोंको ध्वस्त करते हैं अथवा मनुष्योंके हितके लिये अन्तर्गोष्ठीके ऊपरी भागमें चढ़ते हैं, इस समय इनके पथक सारे वनस्पात, डरक मारे, व्यकुल हो जाते और रथा-कड़ा स्त्रीकी तरह ओषधियाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चला जाता हैं ।

यं न उग्रा मरुतः सुचेतनाग्निष्टग्रामाः सुमतिं विपर्तन ।
 यत्ता वो दिद्युद्रदति किंविदंती रिणाति एश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६॥
 प्रस्वमदेष्णा अनवभ्र राधसोलातृणासो विदधेपु सुष्टुताः ।
 अर्चन्त्यर्कं म द्रस्य दीनये विदुर्धा स्व प्रथमानं पौंस्या ॥७॥
 शतभुजमिस्तमभिहृतेरघ न पुर्भारक्षता मरुतो यमावत ।
 जन यमुग्रारतवसो निर प्शनः पथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥
 विश्वानि मद्रा मरुतो रयेपु वो मिथस्पृश्ये । तयिप एयाहिता ।
 अमंष्टावः प्रपथेपु खादराक्षोवश्च हा रुमया विवावृते ॥ ९ ॥
 भूरीणि मद्रा नर्येषु व हुग न क्षःपु रुक्मा रमसासो अञ्जयः ।
 अमंष्टेताः पावु भुरा अधिवया न पक्षान्द्यनुश्रयो धिरो ॥१०॥
 महा तो महा वम्तो भूतो दूदृगो ये दिव्या इव स्तुभिः ।
 मन्द्रा सुजहः स्वर्स्ताम नामाभिः समिष्टला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥११॥
 तद्वः सुजता मरुतो म । त न दीर्य वो दत्रम दतेरिव वाम् ।
 इन्द्रश्चन त्यजसा विहृणा त न जनय यरुमे सुकृते अगध्वम ॥१२॥

६ उप मरुतो, सुष्टु इसके साथ, तुम लोग नदिसक होकर, हमें सुष्टु प्रदान करो । जिस समय तुम्हारे लेपणील और दन्त-विशिष्ट विद्युत् दशन करती है, उस समय, सुलक्षित हैत (अस्त्र-विशेष) की तरह, पशुओंको नष्ट करती है ।

७ जिनका दान अविशत है, जिनका धन अग-राहित है, जिनका शत्रु-वध पर्याप्त है और जिनको स्तुति उगीत है, वे मरुतगण, सोमके पानके लिये, स्तुति गाते हैं; क्योंकि वे ही लोग इन्द्रको प्रथम वीर-कृति जानते हैं ।

८ मरुतो, तुमने जिस व्यक्तिको कुटल-स्वभाव पापसे बचाया है, हे उप और बलवान् मरुतगण, तुमने जिस मनुष्यको पुत्रादि-पुष्टि-माधन द्वारा, 'मन्द्र'मे बचाया है उसे अस्त्र-यंत्र वस्तुओं द्वारा प्रतिपालन करो ।

९ मरुतो, सारे कलबाणवाही पदार्थ तुम्हारे रथपर स्थापित हैं । तुम्हारे सहचरोंमें परस्पर रूपदाताले आयुध हैं । तुम्हारे लिये, विश्वाम-स्वान्तर, स्व घ तैयार है । तुम्हारे सारे वज्र-अक्षके पास घूमते हैं ।

१० मनुष्योंको हिनकागिणी भुताओंपर मरुतगण अनन्त कलबाण-माधक द्रव्य धारण करते हैं, वक्षःस्वलमें काचित-युक्त और सुन्दर-रूप-युक्त मानका भूषण धारण करते हैं । स्क-घट्टेमें उबे गर्जकी काला धारण करते हैं । वज्र-सदृश आयुधपर क्षुा धारण करते हैं । जैसे पञ्चर्षा पक्ष धारण करती हैं, वैसे ही मरुतगण ओ धारण करते हैं ।

११ जो मरुतगण महान्, मदिमान्वित, विभूतिमान् और आकाशस्थ नक्षत्रोंकी तरह दूरमें प्रकाशित हैं, जो प्रमन्न हैं, जिनकी जीभ सुन्दर है, जिनके मुखसे शब्द होता है, जो इन्द्रके सहायक हैं और जो स्तुति-युक्त हैं, वे हमारे वज्र-स्वलमें आवें ।

१२ सज्जत मरुतगण, तुम्हारा माहारम्य प्रसिद्ध है और तुम्हारा दान अदितिके व्रतकी तरह अविच्छिन्न है । तुम जिस पुण्यात्मा वज्रमानको दान देते हो, उसके प्रति इन्द्र कुटिलता नहीं करते ।

तथा जामिषं मरुतः परे युगे पुरु यच्छसममृतास आधत् ।
 अयाधिया मनवे ध्रुष्टिमाव्या स्यात् नरा दमनेराचक्रिरे ॥१३॥
 येन दार्ध मरुतः शुश्राम पुष्प केत परीणसा पुषसः ।
 आयत्ततनन् वृजने जनास एमियज्ञ निस्तदमी ष्टिमश्याम् ॥१४॥
 एष वः स्तोमा मरुत इयं गोमन्दिर्यस्य मान्यस्य काराः ।
 एषा यासाष्ट तन्वे वयां विशामेयं वृजन जारदनुम् ॥१५॥

१६० सूक्त । १ म मंत्रके देवता इन्द्र; अष्टाश्विके मरुत् । अष्टपु छन्द ।

सहस्रन्त इन्द्रोतयो नः सहस्रां पा हरिषा गूतमाः ।
 सहस्रं शया इन्द्रोतयो स्याम्यण उ सो यन्तु वाजाः ॥१॥
 आ नीधोमिरता य न्त च्छ उमेष्टमियां वृहद्विदेः सुमायाः ।
 अथ यदेपो निरुत परमाः ससृष्टस्य जिज्ञन् यन्त पावे ॥२॥
 मिश्रयध येपु सुधिता धृत नी मरुण निणिगुणान क्रष्टिः ।
 गुणान्गन्ती मनुषी न धीपा सभाकृती निष्ठोव सं वाक ॥३॥

१३ मरुदुगण, तुम्हारी पित्रा पसिद्ध औचित्यायनी है । अमर हाकर हुन लोग हमारी स्तुतिकी मली भाँति रक्षा करते हैं । अनुग्रह-पूर्वक, मनुष्योंकी स्मृतिकी रक्षा करते हुए, उनके साथ मिलकर तथा उनका नेतृत्व स्वीकार कर, कर्म द्वारा सब जान जाते हैं ।

१४ देववान् मरुतो, हमारे महान् आगमन-पर हा, दीर्घ कर्त्तव्यशक्ती वरित करते हैं । उनके द्वारा युद्धमें मनुष्य विजयी होता है । इन सब राजाँ द्वारा मैं तुम्हारा शुभायमन प्राप्त कर सकूँ ।

१५ मरुतो, कवि मारव मारुर्का यह स्तोम तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है, इच्छानुसार इसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है । इस की शक्ति, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ इन्द्र, तुम हजारों तरहसे रक्षा दान । तुम्हारी रक्षाएँ हमारे पास आये । तब तमक अवधाले इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहके प्रकृतनीय वस्तु हैं; वह हमारे पास आये । इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहका धन है । हमारी कृष्टिने लिये वह हमारे पास आवें । हजार वापार हमारे पास आये ।

२ आश्रय देनेके लिये मरुदुगण हमारे पास आये । एतुद्धि मरुदुगण सम्पत्तियों और मन्त्रादीति-संयुक्त धनके साथ हमारे पास आये; क्योंकि उनके नियुक्त नामके वाहक मरुदुक्त उन पात्रों में धन धारण करने हैं ।

३ सुव्यवस्थित, जल-वर्षक और सुवर्णगर्ण मनुष्य मेघमालाकी तरह अवस्था निगूढ मन्थानमें अवस्थित मनुष्यकी भार्याकी तरह अथवा कही गयी यज्ञीय वाणीकी तरह इन मरुत्वोंके साथ मिलता है ।

परा शुभ्रा अयासो यस्या साधारण्येव मरुतो भिमिधुः ।
 न रोदसी अपनुदन्त घोरा जुपन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४॥
 जोद्यपदीमसूर्या सबध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
 आ सूर्ये विषो रथंग रथेप्रतीका नभसा नेत्या ॥५॥
 आस्थापयन्त युवति युवातः शुभ रिमिशं विदेषु पद्मार् ।
 अर्को यक्षो मरुतो हर्षिष्यान्नायन्नर्थं सुत नाम दुःस्मिन् ॥६॥
 प्रतं विवक्षिम वक्ष्यो य एषां मरुतां महिमा स यो आन्त ।
 सखा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिता विजिनीबहते सुभागाः ॥७॥
 दान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तन् ।
 उत्तच्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुता दातिवारः ॥८॥
 नहीनुवो मरुतो अन्त्यस्मे आगन्ताश्चच्छस्तां अन्तपापुः ।
 ते धृणुना शशसा शूशुवांसोर्षो न दूपा धृपता परिष्टुः ॥९॥
 वयमद्येन्द्राय प्रेष्टा वयं इहो वं चेमह स्मर्य ।
 वयं पुरा महि च नो अनुदन्तन्त ऋभुषा नवामनुष्टान् ॥१०॥

४ साधारण स्त्री की तरह आलिङ्गन-परायण। बल्लूके साथ दूआरण, अतिगमनशील और वरकृष्ट मरुतों में मिलते हैं। भयङ्कर मरुदूगण याव पृथिवीको नहीं हटते। देवता लोग, मैत्रीक कारण, उनकी समृद्धिका साधन करते हैं।

५ अस्त्र (मरुता) को अपनी पत्नी राक्षसी या बिजला आलोकित कथ अपर अनुक मनमें मरुतां सगमके क्रिये उनकी सेवा करता है। जैसे सूर्य अश्विनोक्तुमारोंके रथपर चढ़े, वैसे ही प्रदीप्तावयवा राक्षसी बिजल मरुताके रथपर चढ़कर शोभ आती है।

६ यज्ञ आरम्भ होनेपर, वृष्टिदानके क्रिय, तदंग वयस्क दक्षी रोदसीको रथपर बैठाते हैं। बलवती रोदसी निबभानुकुप, उनके साथ मिलती है। उसी समय अर्धेन-अन्न युक्त, इव्यदाता और सोमाभिषेककारी यजमान मरुताको सेवा करते हुए स्तव-पाठ करता है।

७ मरुताकी महिमा सबको प्रशंसनीय और अनोच है। मैं उनका वर्णन करता हूँ। उनकी रोदसी वर्षण भिला-विणी, अहंकारिणी और अविनाशवरा है। यह सौभाग्यशाली और उत्पन्न ल प्रजको धरण करती है।

८ मित्र, वरुण और अर्यमा इस यज्ञको निरुद्धते बताते और उनके अयग्य पद धका विनाश करते हैं। मरुता, दुम्हारे जल देनेका समय जब आता है, तब वह मेघोंके बीच संघन जलको वर्षा करते हैं।

९ मरुतो, हमारे बीच किसीने भी, अत्यन्त दूरसे भी, दुम्हारे बलका अन्त नहीं पाया है। दूरोंको परास्त करने-वाले बलके द्वारा बढ़कर, जलराशिकी तरह, अपनी शक्तिसे शत्रुओंको विजित करते हैं।

१० आज हम इन्द्रके प्रियतम होंगे, यज्ञमें उनकी महिमा गावेंगे। हमने पहले इन्द्रका माहात्म्य गाया था और प्रतिदिन गाते हैं। इसलिये महान् इन्द्र मनुष्योंमें हमारे लिये अनुकूल हों।

एष चः स्तोमो मरुत इय गोर्मान्दायस्य मान्यस्य कारोः ।

पया यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेपं वृजनं जीर्दानुम् ॥ ११ ॥

१६८ सूक्त । मरुदुगण वेदता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

यज्ञायज्ञा च समना तुनुर्घणिगियन्धिषं वो देवयाउ दधिध्वे ।

आ वोवांचः सुतिता रं दन्धोमदे वृत्रागमवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

वद्या-नो न ये स्वजा स्वतवस्त इप स्वर भेजायन्त धूनयः ।

सहस्रिणामो अं नोर्मय आसा गात्रो वद्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

सोमापो न ये सुनास्वसांगया ह्यमु पंतासो दुवसो नासने ।

पेयामं-पु रश्मिणाव रास्मे हस्तेषु स्वादिश्च कृतिश्च सन्दधे ॥ ३ ॥

अव स्यका दिव आवृथा स्यु-मर्त्याः कशया चोदत त्मना ।

अणेगस्तुगिघाता अचुचावु-हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥

को वीन्त-रुन ऋ प्रविद्यु-नो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युत इपां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नेतशः ॥ ५ ॥

११ मरुतो, वसि मार्ग की यह स्तुति तुम्हारे लिये है । इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है । इस मो अन्न, बल और दीर्घायु पवें ।

१ मरुतो, सारे यज्ञों में ही तुम्हारा समान भग्न है । अपने सारे कर्मों को, देवों के पास ले जाने के लिये, प्रारण करते हो, इसलिये छावापृथिवी को मलो भौंति, रक्षा करने के लिये, उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा, तुम्हें, अपनी ओर आने के लिये, बुलाता हूँ ।

२ स्वयं उत्पन्न, स्वाधीनबल और कम्पनशील मरुदुगण मानों मृनिमान् होकर, अन्न और स्वर्ग के लिये, प्रकट होते हैं । असंख्य और प्रवासनीय धेनु जमे दूध देती हैं, वेमे ही, जन-नरज के समान, वे उपस्थित होकर जल-दान करते हैं ।

३ सु-स्कृत शाखावाली सोमलता, अभिपुत और पीत होकर, जैसे हृदय के बीच पत्रिचारिका की तरह कार्य करती है, वेमे ही ध्यान किये जाने पर मरुदुगण भी करते हैं । उनके अंस-देश में, खीकी तरह, आयुष-विशेष आदिराम करता है । मरुतों के हाथ में हस्तप्राण और कर्तव्य है ।

४ परस्पर मिमे हृष्ट मरुदुगण, अनायास, स्वर्ग से आते हैं । अमर मरुतो, अपने ही वाक्पौंसे हमारा अस्वाद्य बढ़ाओ । निष्पाप, अनेक यज्ञों में प्रदुभूत और प्रदत्त मरुदुगण हृष्ट पर्वतों को भी कम्पित कर देते हैं ।

५ आयुष-विशेष या भुज-लक्ष्मी से स्रग्गोमत्त मरुदुगण, जैसे जीम दोनों जवर्णों को चालित करती है, वेमे ही तुम्हारे बीच रहकर कौन तुम्हें परिचालित करता है । तुम लोग स्वयं परिचालित होते हो । जैसे जलवर्षों में परिचालित होता है, जैसे दिन में मेघ चालित होता है, वेमे ही बहुकपेच्छु यजमान, अन्न-प्राप्तिके लिये, तुम्हें परिचालित करता है ।

क मिवदस्य रजसो महस्परं कातरं मरुतो यस्मिन् नायय ।
 वल्लभायथ विधुरेः संहतं सद्रिगायथ तरेपमर्गाम ॥ ६ ॥
 भातिर्न गोमवती स्वर्वती नृदा विपाका मरुतः पिपिप्सती ।
 भद्रा वीरातिः पृथ्वी न दक्षिणा पृथ्वी असूर्येन नृज्वरी ॥ ७ ॥
 प्रतिष्ठामन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदाभ्रयां वानमुदीरयन्ति ।
 अवस्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदाभ्रुतं भरुतः प्रवृण्वन्ति ॥ ८ ॥
 असूत पृथ्विर्महतेरणाथ श्वेपमयासां मरुतामनाकम् ।
 ते सपसरामो जनयन्तामश्म दिन् स्वधामिपिपां पयपश्यन् ॥ ९ ॥
 एष वः स्तोमो मरुत इयं गोमान्दर्यस्य मान्यस्य कारोः ।
 एषा वासोष्टन्वे वयां विद्यामिपं वृजन्तं जायमानम् ॥ १० ॥

॥ १६६ ॥

॥ ६६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और विष्टुप् छन्दः ।

महश्चिन्वमिन्द्र यत एतामहाश्चदास रजसो वरुता ।

स ना तेषां मरुता निक्कलान्मुमुसा ननुष्व भवति प्रेष्ठा ॥ १ ॥

६ मरुतो, जिस जन्म लिये तुम होते हो, उन विशाल सुष्ट-जन्मक अग्नि और अस्त कहाँ है ? शिथिल वृणकी तरह जिस समय तुम प्रसारायका गिरते हो, उन समय वज्र द्वारा दीप्तमान मघका विकर्ण करते हो ।

७ मरुतो, जैसा तुम्हारा घन है, वैसा ही जल भी है । शरणा सम्बन्धमें तुम्हारे सहायक इन्द्र हैं । उसमें सुख और दोष है । उसका फल परिशुद्ध है । उसमें कृषि-प्राप्तका भागमाल प्राप्त है । वह दक्षिणा की तरह शीघ्र फल-दाता है । वह असूर्य की जयशाल शक्त की तरह है ।

८ जिस समय वज्र मेघ-पम्भून शब्द उच्छ्वारित करते हैं, उस समय उनमें क्षरणशील जल परिवर्तित होता है । जिस समय मरुद्गण पृथिवीपर जल मेघन करते हैं, उस समय मघदुःखिण्णसुख पृथिवीपर प्रकट होती है ।

९ पृथ्विने महासंप्रसादा लिये प्रदीप्त वामन-युक्त मरुद्गण को प्रसन्न किया है । समान रूपवाले मरुतोंने जल उत्पन्न किया है । इसके पश्चात् संसारने अभिलषित अन्न आदि प्राप्त किया है ।

१० मरुतो, कवि मान्य मान्दर्यका वह स्तोत्र तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है । अपने शरीर की पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आता है । हम भी अन्न, दल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ इन्द्र, तुम निश्चय ही महान् हो, क्योंकि तुम रक्षक और महान् मरुतोंका परित्याग नहीं करते । हे मरुतों ! विद्याता, तुम हमारे प्रति कृपा करके हमें सुख प्रदान करो । वह सुख प्रियतम है ।

अयुजन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विद्वानां । नव्ययो नव्यता ।
 मरुतां पुन्युतर्हसिमाना स्मर्माहुम्य प्रथनस्य स्मर्ता ॥ २ ॥
 अभ्यक्मात इन्द्र ऋष्टिस्मस्मेम्यम्भं मरुतो जुगन्ति ।
 अग्निश्चिच्छिप्मानं शुक्रानापो न द्वापं दधति पयोमि ॥ ३ ॥
 त्वन्तु इन्द्र तं विद आऽऽष्टया दक्षिणयव रातिम ।
 स्तुतश्च यस्ते चकन्त ताताः स्तन न मधः पीयन्त ताजः ॥ ४ ॥
 त्वं राय इन्द्र तोशन्माः प्रणतारः कस्यान्तृतायाः ।
 तेषुणा मरुतो मृडयन्तु यस्मा पुण गातून्ताय देवाः ॥ ५ ॥
 प्रतिप्रयाहान् मर्हन्तु यन्महः पार्थिवे मर्दने यतस्व ।
 अथ यस्या पृथगुद्भास एतस्तीर्थेनार्यः पौन्यानि तस्थः ॥ ६ ॥
 प्रतिघोराणामेतः नामयासां मरुतां शृणुव आगतामुज्ज्वि ।
 ये मर्यां पृथगायन्तमूर्ध्नि ऋणावानं न पतयन्त सर्गः ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, सब मनुष्योंनाके अनुषोंके लिये जल खिचकर पानीवाले अंगरूपाहुन मरुदुग्ध तुम्हारे साथ मिले मरुतोको सेना, छलके उपायभुक्त युद्धमें, तय-वसिष्ठ लिये, यदा प्रयत्न हुई है ।

३ इन्द्र, तुम्हारा प्रसिद्ध ऋष्टियु-निर्वीष (ऋष्टि) अंगार लिये, मध पाम जाता है । मरुदुग्ध चिर-सञ्चित जल गिरा रहे हैं । विस्तृत यज्ञके लिये आन प्रदोत हुए हैं । जेमे जल दीपका धारण करता है, वेमे ही अग्नि हव्य धारण करते हैं ।

४ इन्द्र, तुम अपने दान-योग्य धनका दान करो । तुम दाना हो । हम लोग प्रचक्षिणा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे । तुम वायु या शीघ्र प्रदाता हो । यताता लोग तुम्हारी अन्तर्गत वरन चाहते हैं । मध दूधके लिये जेमे लोग खोके स्तनको पुष्ट करते हैं, वेमे ही हम भा तुम्हें अन्न अ विक्र द्वारा पुष्ट करते हैं ।

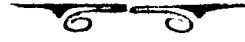
५ इन्द्र, तुम्हारा धन अन्वयन्त पौन्यान्वया और यजमानका यज्ञानन्द दिक्का है । जो मरुदुग्ध पहले ही यज्ञमें जानेके लिये तैयार हो जाते हैं, वे ही हमें सुखी करें ।

६ इन्द्र, जल-संचक हो । परधार्थी और विशाल मेवके आभने जाओ । अन्तरीक्ष प्रदेशमें रहकर वेष्टा करो । युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके पराक्रमको तर; मरुओंके विस्तोर्णी पद आवरण—मर्धपर आक्रमण करते हैं ।

७ इन्द्र, भयंकर, कृष्णवर्ण और अमनशील मरुओंके अनेका शब्द सुनाई देता है । जेमे अधम शत्रुका विनाश किया जाता है, वेमे ही मनुष्योंको रक्षाके लिये मरुदुग्ध प्रहरण द्वारा सेना-बल-संयुक्त शत्रुओंका विनाश करते हैं ।

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्वा रदा मरुद्भिः शुरुषो गो अत्राः ।

स्तवानेभिः स्तवसे देवदेवैर्विद्यामेवं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥



१७० सूक्त । इन्द्र देवता । प्रथम, तृतीय और चतुर्थ ऋचाओंके ऋषि इन्द्र हैं और शेषके अगस्त्य ।

त्रिष्टुप् और बृहता छन्द ।

न नूतमस्तिनोश्चः कस्तत्रेदयददुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभिसञ्चरेण्यमुताद्योतं विनश्यति ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कल्यस्व साधुयामानः समरणे वर्धीः ॥ २ ॥

षिं नो भ्रातरगस्त्य सखायन्नन्तिमन्यसे ।

विद्या हिने यथा मनास्मभ्यमिन्दित्ससि ॥ ३ ॥

अरं कृणन्तु वेदं समग्रमिन्धतां पुरा ।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तन्वावहे ॥ ४ ॥

त्वम शिषे वसुपते नमूतां त्वं मित्राणां मित्रपते ध्रेष्ठः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः संवदस्वाध प्राशान ऋतुया हवींषि ॥ ५ ॥

८ इन्द्र, सारे प्राणा तुममें ही उत्पन्न हुए हैं । मरुद्भिः साथ, अपने सम्मानके लिये, तुम दुःख-नाशिका और अल-प्रारिणी मेघ-पंक्ति की विद्वान् की । देव, स्तव्यमन देवगण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हमें अन्न, बल और दीर्घायु प्रदान करो ।

१ (इन्द्र) अद्यतन या वलयन कुछ नहीं है । अद्भुत कार्य की बात कौन कह सकता है ? अन्य मनुष्यों का मन अत्यन्त चञ्चल होता है—जो अच्छी तरह पढ़ा जाता है, वह भी भूल जाता है ।

२ (अगस्त्य) इन्द्र, तुम क्या सुके मारना चाहते हो ? मरुद्गण तुम्हारे आता हैं । उनके साथ अच्छी तरह यज्ञ-भाग मागो । युद्ध-कालमें हमें ही विनष्ट करना ।

३ (इन्द्र) आता अगस्त्य, मित्र होकर तुम क्यों हमें अनाहत कर रहे हो ? हम निश्चय ही तुम्हारे मन की बात जानते हैं । तुम हमें नहीं देना चाहते ।

४ ऋत्विग्गण, तुम वेदों की सजाओ और सामने अग्नि को प्रज्वलित करो । अनन्तर उसमें तुम और हम अमृत के सुखक यज्ञ की करेंगे ।

५ (अगस्त्य) हे उनके अधिपति, हे मित्रों के मित्रपति, तुम ईश्वर हो, तुम सबके आश्रय-स्वरूप हो । तुम स्वर्गों से कहो कि, हमारा यज्ञ सम्पन्न हुआ है । तुम ययातुस्य अपित इक्ष्व भक्षण करो ।

१७१ सूक्त । मरुद्गण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रति व एना नमस्वाहमेमि सुक्नं न भिक्षे सुमनि तुराणाम् ।
 रराणत। मरुतो वेंद्याभिनिहेल्लो धत्त विमुषध्वमश्वान ॥ १ ॥
 एष वः स्तोमो मरुतो नमश्चान् हृदातष्टो मनसा धावि देवाः ।
 उपेमायात मनसा जुषाणा यूय हिष्ठानमस इदुधामः ॥ २ ॥
 स्तुतासो नो मरुतो मृडयन्तुत स्तुता मघना शम्भोधन्त ।
 ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्वधानि विश्वा मरुतो त्रयीषा ॥ ३ ॥
 अस्माश्चान्त वपादपमाण इन्द्राक्षया मरुतो रेजमानः ।
 युग्मभ्यं हव्या नान्शितान्वासन्ताः पारे च वृमा रुद्ध नः ॥ ४ ॥
 येन मानासाश्चतधन्त उस्त्रा च्युष्टिषु शस्त्रा ३३ तीनाम् ।
 स नो मरु ऋषुषभ श्रद्धोधा उग्र उग्रोमः सद्य वरः सहोदाः ॥ ५ ॥
 त्वं पार्हान्द्र रुक्षीयसो न भवा मरु ऋ वयातहेलाः ।
 सुप्रवेतोमः सासाहदधाना दिव्यामप हूजन् जावदालुम् ॥ ६ ॥

१ मरुतो, मैं नमस्कार और स्तुति करता हुआ तुम्हारे पास जाता हूँ । तुम्हारे पास मरुतो, तुम्हारे द्वारा वाहता हूँ । मरुतो, स्तुति द्वारा आनन्दित । चतुष्टय प्र. घ. छ. दा और यतो व. य. छ. दा अर्थात् उद्धारने की कृपा करा ।

२ मरुतो, तुम्हारे इस स्तोममें अन्न है । देवगण, यह स्तोम, तुम्हारे उद्धारसे, हृदयसे सम्पादित हुआ है; कृपा करके इसे मनमें रखिये । साद्वर इसे स्वीकार करते हुए आओ । हम इन्द्र-रूप अन्नके वन्दायता हैं ।

३ मरुद्गण, स्तुत होकर हमें सुखी करो । इन्द्र, स्तुत होकर हमें रुद्रपिक्षा सुखी करो । मरुतो, हम लोग जितना दिन जीयें, व सब दिन उत्कृष्ट, स्पृष्टणीय और भोग-योग्य हों ।

४ मरुतो, हम इस बलवान् इन्द्रके पाससे डरने मारे मारते हुए काँपने लगे । तुम्हारे लिये जिस इत्यको ररकृत किया था, उसे दूर कर दिया । हम सुखी करा ।

५ इन्द्र, तुम बल-स्वरूप हो । तुम, ये मानवीय अनुपमो विरर, प्रणिनि, एव के उद्य-व. ल. प्रणिनि के वितम्भ देतो है । अमीष्टवर्षी, एवं बल प्रदायी और पुतातन इन्द्र, तुम उग्र मरुत. व. य. व. अन्न धारण करो ।

६ इन्द्र, प्रभू बलशाली मरुतोंकी रक्षा करो । उनके प्रति निःप्रोद्य बनो । मरुद्गण उत्तम प्रजापाल है । उनके साथ शत्रुओंके विनाशक बनो और हमारा रक्षा करो । हम अन्न, बल और दानायु प्राप्त करें ।

१७२ सूक्त । इन्द्र देवता । गायत्री छन्द ।

चित्रो वोस्तु यामश्चित्र उतो सुदानवः । मरुतो अहिभानवा ॥ १ ॥

आरेसावः सुदानवा मरुत क्रञ्जती शरुः । आरे अश्मायमस्यथ ॥ २ ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः पारवृक्त सुदानव । ऊर्ध्वान्तः कते जीवसे ॥ ३ ॥

१७३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

गायन्सामनभर्यं तथावेरन्नाम तत्त वृथान स्वर्यत ।

गावो धनवा बहिष्पदव्य आतर द्य नदिवर्षा विनामान ॥ १ ॥

अर्चष्टृपा तृषणिः स्येधुना यैमृतात श्रो अन्ति उज्जुगुयानि ।

प्रम द्युर्गतां गृत्तोषा पश्यते मर्षी मिथुना यत्तवः ॥ २ ॥

नक्षजोता एणि द्य मिथयन् । द्वाभ्य शम्पू पृथ्व्याः ।

वत्तद्वर्षा विनामानो स द्वीपान्दृष्टो न जोदम्नी चरद्वाक ॥ ३ ॥

१ मरुतो, यजमें तुम्हारा अगमन चित्र हो । दानवील और वत्तकण लेभानो उक्तो, तुम्हारा आगमन इमारी रक्षा करे ।

२ दानवील मरुतो, तुम्हारे दानमान ओ, प्राणिवपुश्चाल अन्तर द्वाभ्ये पापको तर हो । तुम त्रिम अश्म नामके रथको पँकते हो, वह भी द्वाभ्ये पँकते द्य हो ।

३ दाना मरुतो, तलक समान नीच होनेपर ओ मेरी प्रजाओं को बचाना । इमें उन्नत करो, ताकि हम बच जायें ।

१ इन्द्र, उदुगाता से मरुतका हम प्रकार काक शक्य हो न सता है कि हम समझ सकें। हम उस वर्तमान और स्वर-प्रदता स्तोत्रकी पूजा करते हैं । मरुतो इन्द्र, दानवील और दिय-शुणा गायें जैसे कुशासनपर बैठनेके समय हमारी सेवा करती हैं, वैसे ही में भी पूजा करते हैं ।

२ इन्द्रदेवता यजमन, दान, दाना उधर्य, आगमन साथ साथ दियो इन्द्र द्वारा इन्द्र की पूजा करने हैं । पिपासिन भृगुकी तरह, इन्द्र, उज्जुगुयाने उन्मथमें उपस्थित होते । पृथ्वी इन्द्र, द्वाभ्याभिरापो देवोंकी स्तुति करते हुए मर्त्य होता, स्त्री-पुरुष, यज्ञ-सम्पद द्य रहते हैं ।

३ होम-सम्पद अग्नि, पारिमि गार्हपत्यादि गन्धर्भों, नारी और व्यास हैं तथा शरत्कालका और पृथिवीके गमस्थानीय अन्नको ग्रहण करने हैं । पश्यती तरह शब्द भरते, वृषभकी तरह शब्द काते, अन्न लेकर, आकाश और पृथिवीके बीच, दूत-स्वरूप, वातवीत करते हैं ।

ताकर्माषतरास्मै प्रच्यौल्लानि देवयन्तो भरन्ते ।
 जुजोषद्भिन्द्रो दस्मवर्षा नास्त्येव सुगम्या रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
 तमुष्टुहीन्द्रं योह सत्वायः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
 प्रतीचश्चिद्याधीयान् वृषणवान्ववम् पश्चिन्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥
 प्रयदित्था महिना नृभ्यो अस्थिरं रोदसोकक्ष्ये नास्मै ।
 संविष्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥
 समत्सु त्वा शूरसनामुराणं प्रपथिन्तमं वरितं सयध्यै ।
 सजोपस इन्द्रं मदक्षोणीः सूरि चघो अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
 प्वाहितेशं सवना समुद्र आपो यत्त आसुमदन्ति देवीः ।
 तिश्वा ते अनुजोष्याभृद्वीः सूरिश्चिद्यादि ध्रिपावेषि जमान ॥ ८ ॥
 उ साम यथा सुसखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
 असद्यथा न इन्द्रो वन्दनैष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

४ हम, इन्द्रके सहस्यसे, अत्यन्त व्यापक हृत्पद पढ़ाने करेंगे। देवामिलायी बजमान हृद स्तोत्र करते हैं। दर्शनीय तेजवाले अश्विनीकुमारोंकी तरह जानने योग्य और रथपर अवस्थित इन्द्रहूँ मारे स्तोत्रका सेवन करें।

५ हे होता, जो इन्द्र अनन्त बलवाले, शौर्यवान्, बलवान् रथपर स्थित, सामनेके योद्धाओंमें श्रेष्ठ योद्धा, वज्र आदिवाले और मेघ आदिके विनाशक हैं, उनकी स्तुति करो।

६ इन्द्र, अपनी महिमासे, कर्म-निष्ठ यजमानोंको स्वर्ग आदि फल देनेमें समर्थ हैं। धावापृथिवी उनकी कक्षाकी पूर्णिके लिये पर्याप्त नहीं हैं। जैसे अन्तरीक्ष पृथिवीको घेरित कर रहता है, वैसे ही वे भी अपनी प्रतिभासे तीनों लोकोंको व्याप्त करते हैं। जैसे वृषभ अनायास शृङ्ग धारण करता है, वैसे ही अग्निवान् इन्द्र भी स्वर्गको अनायास धारण करते हैं।

७ शूर इन्द्र, दुष्ट-भूमिमें साधुओंके बलप्रद और उत्तम-मार्गरूप हो। महदुगण तुम्हें स्वामी कहकर आनन्दित हो रहे हैं। वे तुम्हारे परिजन हैं। तुम्हारे आनन्दके लिये सब लोग समान आनन्दित होकर तुम्हें अलङ्कृत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

८ यदि अन्तरीक्ष-स्थित और प्रकाशमान जल प्रजाओंके लिये तुम्हें सुखी करे, यदि सारे स्तोत्र आदि तुम्हें प्रसन्न करें और यदि तुम वृष्टि-प्रदान आदि कर्म द्वारा स्तोताओंको कामना करो, तो तुम्हारा सवन सुखकर हो।

९ प्रभु इन्द्र, ऐसे हम तुम्हारे मित्र हो सके और स्तुति द्वारा, राजाओंकी तरह, तुम्हारे पाससे अभीष्ट प्राप्त कर सके, वैसा करो। इन्द्रदेव, हमारे स्तुति-कालमें उपस्थित होकर, शीघ्रताके साथ, हमारा यज्ञ, उक्त स्तुतिके साथ, ले जाओ।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
 मित्रा युधो न पूर्पति सुशिष्टौ मध्यायुव उपशिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥
 ५ज्ञो हि ध्येन्द्रं कश्चिद्वन्धञ्ज हुराणाञ्चन्मनसा परियन् ।
 तीर्थनाच्छातातृपाणमोको दीर्घो न सिधमाकृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥
 मोषूण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ध्याते शुष्मिन्मवयाः ।
 महश्चिद्यस्य मी लुपो यव्या हविष्मतो मरुतोवन्दते गीः ॥ १२ ॥
 एषः स्तोम इन्द्र स्तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
 आनो ववृत्याः सुविताय देव विशामेपं वृजनं जीग्दानुम ॥ १३ ॥



१० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षानूत पाह्यसुर त्वमभ्यमान ।
 त्वं सन्पतिर्मधवानतस्तु त्वं सत्यो वसन्तानः स्तोदाः ॥ १ ॥

१० जैसे मनुष्योंमें प्रतस्पर्धी व्यक्तियोंको, स्तुति द्वारा, सदैव विजय जाता है, वैसे ही हम भी इन्द्रको करेंगे । इन्द्र केवल हमारे ही होंगे । जैसे योग्य शासक नगरपतिकी हिरणी लोग, पूजा, करने हैं, वैसे ही हमारे बीच अवस्थानाभिलाषी ५४०युं लोग, हव्य आदि द्वारा, इन्द्रकी पूजा करते हैं ।

११ इसी प्रकार यज्ञपरायण व्यक्ति, यज्ञ द्वारा, इन्द्रकी वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति, मन ही मन, सदा चिन्ता-परायण रहता है, जिस प्रकार दीर्घ-मार्गमें अस्मुर स्थित जल तुरन्त लोगोंको प्रसन्न करता और दीर्घ-पथका जल तृप्त व्यक्ति को निराश करता है ।

१२ इन्द्र, युद्ध-वेलामें, मरुतोंके साथ, तुम हमें नहीं छोड़ना; क्योंकि हे बलवान् इन्द्र, तुम्हारे लिये यज्ञका भाग स्वहस्त है । हमारी फल-समर्पित स्तुति महान्, हविष्मान् और जलदाता मरुतोंको बन्दना करती है ।

१३ इन्द्र, यह स्तोम तुम्हारा ही है । हरिवाहन, इस स्तुति द्वारा तुम हमारा देव-पूजन-मार्ग जान लो और अनायास आनेके लिये हमारे पास पधारो ।

१ इन्द्र, तुम रूसार और सारे देवोंके राजा हो । तुम मनुष्योंको रक्षा करो । अथवा, तुम हमारी रक्षा करो । तुम साधुओंके पालक, धनवान् और हमारे उद्धार-कर्त्ता हो । तुम सत्य और बल-प्रदाता हो । तुमने अपने तेजसे सबको दृढ़ किया है ।

वनोविश इन्द्रमृधवानः सस यत् पुरः शर्म शारदीवत् ।
 ऋणोरपो अनवधानां यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
 अजावृत इन्द्र शूरपत्नोर्धा च येमिः पुरुहूत नूनम् ।
 रक्षो अग्रिमशुपं तूषयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
 शेषन्नुत इन्द्र सस्मिन्धानौ प्रशस्तये पवीरस्य महा ।
 मृजदर्णा स्वव यद्युधा नास्तिष्ठद्वगी धूषतामृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
 वहकुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाक-त्स्पृमन्यृ ऋजा वातस्याश्वा ।
 प्रसृश्चकं बृहतादमीकेमिन्पृथो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥
 जघन्धौ इन्द्राभिश्च रुञ्जोदप्रवृद्धो हरिवो अशशून् ।
 प्रयेपश्यन्नप्यमणं सचायोस्वया शृतावहमाना अपन्यम् ॥ ६ ॥
 रपत् कविरिन्द्राकांसावी क्षां दासायोपवर्हणीकूः ।
 वरत्तिस्त्रो मघवा दानुचित्रा निदुर्योण कुयवाचं मृधिश्रत् ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, जिस समय तुमने संवत्सर-पर्यन्त दृढ़ीकृत मात पुरियोंको भिन्न किया था, उस समय प्रजाओंको संवत्-वाक्य करके अनायास दमन किया था । अनवध इन्द्र, तुमने गतिशील जल दिया था । तुमने तदण-वयस्क पुरुकुत्स राजाके लिये वृत्रका वध किया था ।

३ इन्द्र, तुम राक्षस-निवास सारो नगरियोंको जाते और वहाँमें, दे पुरुहूत, अनुचोंके साथ स्वर्गमें जाते हो । वहाँ अशोषक और शीघ्रकारी अग्रिका, सिंहकी तरह, बचाने हा । ताकि वह अपने गृहमें अपना कर्त्तव्य पूरा कर सके ।

४ इन्द्र, तुम्हारे यद्युधा मेव वज्रको मृद्विधानी तुम्हारी प्रशंसा करने हुए अपने ज-मस्थानमें शीघ्र शयन करे । जब तुम अस्त्र लेकर जाते हो, सब नीच जल गिराते और इन्द्रियोंके ऊपर चढ़ते हो । अपनी शक्तिये तुम शत्रु आदि बड़ाते हो ।

५ इन्द्र, तुम जिस यज्ञमें कुत्स ऋषिको कामना करते हो, उसमें चरन वयोभूत, सरलगामी और वायुके समान वेगशाली अश्वोंको परिचालित करते हो । उसके लिये सूर्य रथचक्रों पास से आवं और वज्रबाहु इन्द्र संधामकर्ता शत्रु-ओंके सामने आवं ।

६ हरिवाहन इन्द्र, तुमने, स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर, दान-रहित और यज्ञमार्गेके विघ्नकारी लोगोंका विनाश किया है । जिन्होंने तुम्हें आभयदाता रूपसे देखा है और जो इव्य प्रधानके लिये मिलित हुए हैं, वे तुमसे सन्तान प्राप्त करते हैं ।

७ इन्द्र, प्रजनीय अन्नकी प्राप्तिके लिये कवि तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुमने पृथिवीको दासकी श्रद्धा बना दिया है । इन्द्रने तीन भूमिके दान द्वारा विविध किया है एवं दुर्योणि राजाके लिये कुयवाचका वध किया है ।

सनातात इन्द्र नव्या आगुः सहोनभो विरणाय पूर्वीः ।
 भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
 त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमसोर्द्धणोरपः सोरा न स्रवन्तीः ।
 प्रयत् समुद्रमतिशूरं पयिं पारया तुर्वणं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥
 त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधस्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
 स नो विश्वासां स्पृधां सहादा विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

१७५ सूक्त । इन्द्र देवता । वृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
 वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥
 आनस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
 सहावाँ इन्द्रसानसिः पृतनाषाड्मर्त्यः ॥ २ ॥
 त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
 सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

८ इन्द्र, नये ऋषिगण तुम्हारे सनातन प्रसिद्ध वीर कनका स्तुति करते हैं । तुमने अनेक हिंसकोंको, संधाम-
 निवारणके किये, विनष्ट किया है । तुमने देवशून्य विपक्ष नगरोंका भिन्न किया है और देवरहित शत्रुका अस्त्र नष्ट
 किया है ।

९ इन्द्र, तुम शत्रुओंमें हृषकम्प पैदा करनेवाले हो । इसीलिए तुम प्रवहमाना सिरा नामकी नदीकी तरह तरंग-
 युक्त जल पृथिवीपर गिराते हो । हे गर, जिस समय तुम समुद्रका परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमने तुर्वण और यदुके
 मंगलके लिये उनका पालन किया है ।

१० इन्द्र, तुम सदा हमारे रक्षक-अष्ट बनो और प्रजाओंका पालन करो । हमारे सेन्योंको बल दो, ताकि हम
 अग्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ हरिवाहन इन्द्र, हर्षकर, अभोष्टवर्षी, आह्लादकारी, अन्नवान्, असोम दानवाले और महाबुद्धिमान् सोम
 जिस प्रकार पात्रमें स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार तुम भी होकर और पानकर धारण करो और अतीव प्रसन्न बनो ।

२ इन्द्र, हर्षकर, अभोष्टवर्षी, तर्पयिता, वरणीय, सहायवान्, शत्रु-सेन्य-विनाशक और अविनाशी सोम
 तुम्हारे पास आवे ।

३ इन्द्र, तुम गर और दाता हो, मैं ब्रह्म हूँ । मेरा मनोरथ पूर्ण करो । तुम सहायवान् हो । जैसे अग्नि, अपनी
 ज्वालासे, पात्रको जलाता है, वैसे ही तुम वृत्त-रहित वस्तुको जलाओ ।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमोशन ओजसा ।
 वह शुष्णाय बध्नं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥
 शुष्मिन्तमो हि ते मयो घृस्मिन्तम उत क्रतुः ।
 वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्टा अश्वसातमः ॥ ५ ॥
 यथा पूर्वभ्यो जस्तिभ्य इन्द्र मयश्वापो न तृप्यते बभूथ ।
 तामनु त्वा निविदं ओहवीमि विद्यामेपं वृजनं जीरवानुम् ॥ ६ ॥

१७६ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

मत्सि नो वस्य इष्ट्य इन्द्रमिन्द्रो वृषाविश ।
 ऋधायमाण इन्धसि शत्रु मन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥
 तस्मिन्नावेक्षया गिरौ य एकश्चर्यणोनाम् ।
 अनुस्वधायमुप्यते यवं न वर्तु पदवृषा ॥ ॥
 यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्चाक्षितीनां वसु ।
 स्वाशयस्व यो अस्मधु गिद्व्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

४ मेधावी इन्द्र, तुम ईश्वर हो। अपनी सामर्थ्यसे तुमने सूर्य, दो चक्रोंमेंसे एक हरण कर लिया। शुष्णका बध्न करनेके लिये कुत्स-साधन वज्र लेकर वायुके समान वेगवाने अश्वके साथ आओ।

५ इन्द्र, तुम्हारी प्रसन्नता सर्वापेक्षा बल-सयुक्त है। तुम्हारा यज्ञ सर्वापेक्षा अन्नवान् है। हे अनेक-अश्व-वाता इन्द्र, अपने वृत्रवाती और घनदायी तथा क्रतुका समर्थन करो।

६ इन्द्र, तुम पुराने स्तोताओंके प्रति, तृषात्तोंके पास जलको तरह हुए थे; इसलिये हम बार-बार तुम्हारी स्तुति करते हैं, ताकि अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१ हे सोम, घन-कामके लिये इन्द्रको आनन्दित करो। अभीष्टवर्षी इन्द्रके बीच प्रवेश करो। प्रसन्न होकर वज्र-ओंका विनाश करते हुए क्रमशः व्याप्त होते हो, इसलिये किसी वज्र-को पासमें नहीं आने देते।

२ इन्द्र, मनुष्योंके अद्वितीय अभीश्वर हैं। वे यथा-रोति यव (जौ) की तरह हमारा अभीष्ट साधक करते हैं।

३ जिन इन्द्रके हाथोंमें पञ्च क्षिति अर्थात् ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषादका सर्वप्रकार अन्न है, वही इन्द्र, जो हमारा द्रोह करता है, उसे दिव्य वज्रकी तरह विनष्ट करें।

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं योनते मयः ।
 अस्मभ्यमस्य वेदनं दधि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
 आधो यस्य द्विर्बर्हसोऽर्कपु सानुषगसत् ।
 आज्ञाविन्द्रस्येन्द्रो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥
 यथा पूर्वभ्यो जरितुभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
 तामनुत्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

७० सूक्त । इन्द्र देवता । बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।
 आचर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
 स्तुतः श्रवस्यन्तवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणायाह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
 ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजां वृषरथासो अत्याः ।
 तां आतिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
 आतिष्ठ रथं वृषणं वृषाने सुतः सोमः परिपिक्ता मधूनि ।
 युक्त्वा वृषभ्यां वृषभक्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥

४ इन्द्र, जो लोग सोमका अभिषेक नहीं करते और जिनका विनाश करना दुःसाध्य है, उनका बध करो; क्योंकि वे तुम्हारे सुखके कारण नहीं हैं । उनका धन हमें दो । तुम्हारा स्तोत्र ही धन प्राप्त करता है ।

५ हे सोम, जिन स्तोत्र और हविष के द्विविध कर्म करनेवाले यजमानके पूजा-साधक मंत्रमें तुम सदा अवस्थिति करते हो, उसकी तुम रक्षा करो । हे सोम, इन्द्र के युद्धमें अन्नके लिये अन्नवान् इन्द्रकी रक्षा करो ।

६ इन्द्र, तुम प्राचीन स्तोत्राओंके प्रति, नृपात्तोंके पास, जलकी तरह हुए थे; इसलिये हम बार-बार तुम्हारी सुखकर और प्रसिद्ध स्तुति करते हैं, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ मनुष्योंके प्रीति-दायक, सबके इच्छित-वर्षक, मनुष्योंके स्वामी और बहुतेक द्वारा आहूत इन्द्र हमारे पास आये । इन्द्र, हमारी स्तुति ग्रहण कर दोनों तक्षण हरितोंका रथमें जोतकर, हव्य ग्रहण करने और रक्षाके लिये हमारे सामने आओ ।

२ इन्द्र, तुम्हारे जो तक्षण, उत्तम, मंत्र द्वारा रथमें योजनीय, वर्षक और रथसे युक्त घोड़े हैं, उनपर चढ़ो और उनके साथ हमारे सामने आओ ।

३ इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षक रथपर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे लिये मनोरथ दाता सोम तैयार है—मधुर घृत आदि भी तैयार है । अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्टदाता दोनों हरि नामके घोड़ोंको जोतकर यजमानोंके ऊपर कृपा करनेके लिये वेगवान् रथसे हमारे सामने आओ ।

अयं यज्ञो देवया अयं मिषेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्रसोमः ।
 स्त्रीर्णं बर्हिरानु शक्र प्रयाहि पिबा निपद्य विमुञ्चा हरी इह ॥४॥
 ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ् प ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
 विद्या मवस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥

१७८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यज्ञस्यात इन्द्र श्रष्टिरस्ति यया बभूथ जगितुभ्य ऊती ।
 मानः कामं महयन्तमा धाग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥
 न प्वा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
 आपश्चिद्वरमै सुतुका अवेपन्गमन् इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ ॥
 जेता नृभिर्मिन्द्रः पृसु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
 प्रभर्ता रथं वाशुप उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च तमना भूत् ॥३॥
 पवा नृभिर्मिन्द्रः सुश्रवस्या प्रस्वादः पृक्षा अभि मित्रिणां भूत् ।
 समर्य इयः स्तवते विवानि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४॥

४ इन्द्र, देवोंके उद्देश्यसे यह यज्ञ जाता है । यह यज्ञीय पशु, ये मंत्र, यह प्रस्तुत सोम और यह विद्याया हुआ कुछ तुम्हारे लिये तेजार है । तुम जसदा आओ, बैठ, सोम पिबो और यज्ञस्थलमें हार घाड़ोंको ढोको ।

५ इन्द्र, हमारे द्वारा अच्छी तरह स्तुति हाकर माननीय स्तोताके मंत्रको उपलब्ध करके हमारे सामने आओ । हम, स्तुति करते हुए, तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर अनायास वास—स्थान प्राप्त करेंगे । साथ ही अन्न, बल और दीर्घ आयु भी लाभ करेंगे ।

१ इन्द्र, जिस समृद्धिके द्वारा तुम स्तोताओंकी रक्षा करते हो, वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो । तुम हमें महान् करनेकी अभिलाषाको नष्ट न करो । तुम्हारे लिये जो वस्तु प्राप्त्य और भोग्य है, वह सब हम प्राप्त करें ।

२ परस्पर मगिनी—स्वरूप अहोरात्र अपने जन्मस्थानमें जो वृष्टि-रूप कर्म करते हैं, राजा इन्द्र वह हमारा कर्म नष्ट न करें । बलका कारण इन्द्रके लिये व्याप्त होता है । इन्द्र हमें मंत्री और अन्न प्रदान करें ।

३ विष्णुमशाकी इन्द्र, युद्ध-नेता मस्तोंके साथ युद्धमें जय-लाभ करने हुए अनुग्रहार्थी स्तोताका आह्वान सुनते हैं । जिस समय स्वयं स्तुति-वाक्यको वरण करनेका इच्छा करते हैं, रथ समय इव्यदाता यजमानके पास रथ ले जाते हैं ।

४ उत्तम धनके लाभकी इच्छासे यजमान द्वारा दिया हुआ अन्न, प्रचुर परिमाणमें, मक्षण करते तथा सहायता-वाले यजमानके शत्रुओंको पराजित करते हैं । विभिन्न आह्वानोंकी ध्वनिसे युक्त युद्धमें सत्यपाकक इन्द्र यजमानके कर्मकी प्रसिद्धि करते हुए इन्द्रको स्वीकार करते हैं ।

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रून्मिथ्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं प्राता त्वमु नो वृधे भूर्ध्या मेघवृजनं जीरवानुम् ॥५॥



१७६ सूक्त । इस सूक्तमें अगस्त्य, उनकी स्त्री (लोपामुद्रा) और शिष्यमें सम्मोग-विषयक कथोपकथन है; इसलिये सम्मोग ही इसका देवता है । त्रिष्टुप् और वृहती छन्द ।

पूर्वोर्हं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तो रुपसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जारिमा तनूनामप्युनु पत्नीवृषणो जगम्युः ॥१॥
ये चिद्धि पूर्वं ऋतसाप आसन्त्सार्कं देवेभिरवदन्तानि ।
ने चिद्धि सुर्नह्यन्तमापुः समूनुपत्नी वृषभिर्जगम्युः ॥२॥
न मृषा श्रान्त यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजि यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥
नदस्य मारु धतः काम आगन्ति आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषण नीरणाति धीरमधीरा धरति इवसन्तम् ॥४॥
इमं नु सोममगितो हस्तु पातमुपब्रुवे ।
यत् सोमागश्नकृमा तत् सुमृतु पुलकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

५ इन्द्र, तुम्हारी सहायता लेकर हम उन् शत्रुओंका बध करेंगे, जो अपनेको अवध्य समझते हैं । तुम हमारे आता हो । तुम हमारे घनके वद्धक बनो, ताकि हम अन्न, वल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१ (लोपामुद्रा) अगस्त्य, अनेक वर्षोंमें मैं दिन-रात बुढ़ापा लानेवाली उषाओंमें, तुम्हारी सेवा करके, श्रान्त हुई हूँ । जरा घरीरके सौन्दर्यका नाश करती है । इस समय क्या ? पुरुष स्त्रीके पास गमन करे ।

२ अगस्त्य, जो प्राचीन और सत्य-रक्षक श्राप लोग देवताओंके साथ सच्ची बात कहते थे, उन्होंने भी गेत का स्खलन किया है; परन्तु उन्हें भी अन्त नहीं मिला । पुरुष स्त्रीके साथ गमन करे ।

३ (अगस्त्य) हम लोग वृथा नहीं श्रान्त हुए; क्योंकि देवता लोग रक्षा करते हैं । हम सारे भोगोंका उपभोग कर सकते हैं । यदि हम दोनों चाहें, तो इस संसारमें हम सैकड़ों भोगोंके साधन प्राप्त कर सकते हैं ।

४ यद्यपि मैं जय और संबन्धमें नियुक्त हूँ; तथापि इसी कारण या किसी भी कारण, मुझे काम-भाव हो गया है । सेचन करनेवाली लोपामुद्रा पतकें साथ रंगत हों । अधीरा स्त्री धीर और महाप्राण पुरुषका उपभोग करे ।

५ (शिष्य) हृदयमें पीत इस सोमसे मैं आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि, सोम मुझे सुखी करे । मनुष्य बहुत कामनावाला होता है ।

अगस्त्यः सनमानः सानित्रीः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्त्वा देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥



२४ अनुवाक । १८० सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

युवो रजांसि सुयमासौ अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।

हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सखेभे ॥१॥

युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्तमनो नर्यस्य प्रयज्योः ।

स्वसा यद्वां विश्वगूर्तिं भर्गानि बाजायेद्रे मधुपात्रिवे च ॥२॥

युधं पय उल्लियायामध्वस एकमामायामध्व पूर्यङ्गोः ।

अन्तर्यद्वाननो वामृतप्लुङ्कारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३॥

यवं ह धर्मं मधुमन्तमश्रयेपो न श्रोदावृणीतमपे ।

तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथेव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

१ अथ अग्नि अगस्त्यने अनेक उपायोंका उद्भावन करके, बहुत पुत्रों और बलकी इच्छा करके, काम और तप, दोनों वरणीय वस्तुओंका पालन किया था । अगस्त्यने देवोंके पास सत्य आशीर्वाद प्राप्त किया था ।

१ अश्विनीकुमारों, जिस समय तुम्हारे शोभन गति घोड़े तुम्हें लेकर अभिमत प्रदेशमें जाते हैं, उस समय तुम्हारे हिरण्यमय रथकी जेब अभिमत प्रदेशमें भरती है; इसलिये तुम उपाकालमें सोमपान करने हुए यज्ञमें आ मिलो ।

२ सर्वस्तुत्य अश्विद्वय, जिस समय तुम्हारी भगिनी-स्थानीय उषा प्रस्तुत होती है, हे मधुपायी अश्विद्वय, जिस समय अन्न और बलके लिये यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उस समय यह तुम्हारा सतत-गन्ता, विश्विग्रगति-शील, मनुष्य-हितेयी और विशिष्ट रूपसे पूजनीय रथ मिम्नाभिमुख जाता है ।

३ अश्विद्वय, तुमने गार्ग्योंमें दुरघ स्थापित किया है । तुमने गार्ग्यके अधोदेशमें पूर्ववर्ती एकत्र दुरघ स्थापित किया है । सत्यरूप अश्विद्वय, वन-वृक्षावलीके बीच चोरकी तरह सदा जागरूक विशुद्ध-स्वभाव और हविवाला यजमान हविवाले यज्ञमें तुम्हारी स्तुति करता है ।

४ अश्विद्वय, तुमने सहायताकी इच्छावाले अश्व सुनिके लिये दीप्त दुरघ और पृतको जल-प्रवाहकी तरह किया था; इसलिये हे नराकार अश्विद्वय, तुम्हारे लिये अग्निमें यज्ञ किया जाता है । निम्न देशमें रथ-चक्रकी तरह सोमस तुम्हारे लिये आता है ।

आ वां दानाय बधृतीय दत्ता गीरोहेण तौग्र्यो न जिम्विः ।
 अयः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥
 नि यद्युवेधे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
 प्रे षद्वे षद्व्रातो न सूरिरामहे ददे सुव्रतो नवाजम् ॥६॥
 वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पर्णिहितावान् ।
 अधाचिद्धि ष्माश्विनावनिन्धा पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
 युवां चिद्धिष्माश्विनावनु द्यून्विहृदस्य प्रस्रवणदय सातौ ।
 अगस्त्यो नरां नृप प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥८॥
 प्र यद्वहेथ महिना रथस्य प्र स्पन्दा पाथो मनुष्य न होता ।
 धत्तं सूरिन्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रथिषाचः स्याम ॥९॥
 तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
 अरिष्टेनेमि परि द्यामिथानं विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥



५ अश्विनीकुमारो, बड़े तुम राजाके पुत्रकी तरह मैं स्तुति द्वारा अभिमत लाभके लिये तुम्हें यज्ञ-देशमें ले आऊँगा । तुम्हारी महिमासे शत्रुशत्रुविही परस्पर मिली है । राजनीय अश्विद्वय, यह जराजीर्ण श्वि पापमुक्त होकर दीर्घ जीवन लाभ करें ।

६ शोभन दानवाले अश्विद्वय, जिस समय तम नियुक्त नावके घंटाका जोगते हो, उस समय अग्नमे पृथिवीको भर देते हो; इसलिये वायुकी तरह स्तोता शीघ्र तुम दोनोंको वृष और व्यास करें । उत्तम धर्मवाले व्यक्तिकी तरह स्तोता, अपने महत्त्वके लिये, अग्न स्वीकार करते हैं ।

७ हम भी तुम्हारे स्तोता और सत्यप्रतिज्ञ होकर विभिन्न स्तव करते हैं । द्राण-कलश स्थापित हुआ है । हे स्तुतिपात्र और अमीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, देवोंके पास सोमपान करो ।

८ अश्विनीकुमारो, कर्मनिर्वाहक लोगोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य श्वि श्रीष्मके दुःखनिवारक ओषधी प्राप्तिके लिये, बन्ध उत्पन्न करनेवाले शङ्खल आदिकी तरह, हजार स्तुतिथियों द्वारा तुम्हें प्रतिदिन जगाते हैं ।

९ अश्विनीकुमारो, तुम रथकी महिमासे यज्ञ धारण करा । गति-शील अश्विनीकुमारो, यजमानके होताकी तरह तुम गमनागमन करो । स्तोताओंको बल दो, वस्त्र धोके दो । फलतः हे नास्त्यद्वय, हम धन प्राप्त करेंगे ।

१० अश्विद्वय, तुम्हारे स्तुतिपात्र, नये आकाशविहारी अभग्न चक्रवाले रथकी प्राप्तिके लिये स्तोत्र द्वारा उसे रक्ताते हैं । तर्क हम अग्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१८१ सूक्त। अश्विद्वय वेदता। त्रिष्टुप् छन्द।

कदु प्रेष्ठा विपां रयीणामध्वयन्ता यदुन्निनीथां अपाम् ।
 अयं वां यज्ञो अकृतप्रशस्तिं वसुधितो अशितारा जगानाम् ॥१॥
 आ वामश्वासः शुचयः पयस्पवातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
 मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना बहन्तु ॥२॥
 आ वां रथो वनिर्न प्रवत्वान्तस्त्वप्रबन्धुरः सुविताय गम्याः ।
 वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहं पूर्वं यजतो विष्णयायः ॥३॥
 इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
 जिष्णुर्वामन्यः सुमन्त्रस्य सृग्दिवो मन्यः सुमगः पुत्र ऊह ॥४॥
 प्र वां निचेरुः ककुहो वशां अनु पिशङ्गरूपः सदनानिगम्याः ।
 हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथा रजांस्यश्विना विघोषैः ॥५॥
 प्र वां शग्द्वान्वृषभो न निः पारः पूर्वोत्पिध्वरति मरुव इष्णन् ।
 एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरुध्वां नद्यां न आगुः ॥६॥

१ प्रियतम अश्विद्वय, तुम कब अन्न और घनको ऊपरके देशमें ले जाओगे कि, यह समाप्त करकेकी इच्छा करते हुए जलको नीचे गिरावा जा सकेगा ? हे घनधाराके और मनुष्योंके आभयदाता अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है ।

२ अश्विद्वय, तुम्हारे वीसिशाली, वृष्टिपान करनेवाले, वायुकी तरह वेगवाले, स्वर्गीय गतिशील, मनकी तरह वेगवान् युवा और शोभन पृष्ठवाले अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें ।

३ हे ऊँचे स्थानके योग्य और रथासौन अश्विद्वय, भूमिकी तरह अत्यन्त विस्तृत, उत्तम बन्धुरवाले, वषणसमर्थ, मनकी तरह वेगवाले, अहंकारी और यजनीय रथ यज्ञमें ले आवे ।

४ अश्विद्वय, तुमने सूर्य और चन्द्रके रूपसे जन्म ग्रहण किया था और पाप-बन्ध हो । तुम्हारे शरीर-सौन्दर्य और नाम-महिमाके कारण मैं बार-बार तुम्हारे स्तुति करता हूँ । तुममें एक यज्ञ-प्रवर्त्तक होकर संसारको धारण करते हैं और दूसरे धुलोकके पुत्र-रूप होकर विविध रश्मियोंको धारण करते हुए संसारको धारण किसे हुए हैं ।

५ अश्विद्वय, तुममेंसे एकका छेष्ट और पीतवर्ण रथ, इच्छानुसार, हमारे यज्ञ-गृहमें जाय और एक अन्नके हाँ नामके अश्वोंको मनुष्य लोग मघन-निष्पादित खाद्य और स्तुतिसे प्रसन्न करें ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे बीच एक जन मेघोंको विघोषण करते हैं । वह इन्द्रकी तरह अश्वोंको बिकाकले हुए हठकी अभिकाषासे, बहुत अन्न-दानके क्रिये, जाते हैं । दूसरेके गमनके लिये यत्रमान लोग इन्द्र द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हैं । उनके द्वारा भेजी हुई व्यापक और तटलक्षिणी नदियाँ हमारे पास आती हैं ।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गोर्वाह्वे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
 उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामन्धृणुतं हव मे ॥७॥
 उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिर्बहिषि स्वसि पिन्वतेनृ न ।
 वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥
 युवां पूषेवाश्विना पुरग्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
 हवे षट्त्रिं वरिवस्या गृणानो विद्यामेवं वृजनं जीरवानुम् ॥९॥



१८२ सूक्त । अश्विद्वय देवता त्रिष्टुप् छन्द ।

अभूविदं वयुनमोषु भूषता रथो वृषतान्मदता मनीषिणः ।
 धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो न पाता सुकृते शुचिमता ॥॥
 इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दक्षा दंसिष्ठा रथवा रथीतमा ।
 पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वानं समुप याथो अश्विना ॥२॥

७ विधाता अश्विद्वय, तुम्हारी स्थिरताकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त स्थिर स्तुतिर्वा बनायी जाती है । वह तीन तरहसे तुम्हारे पास जाती है । तुम प्रशस्तिन होकर याचमान यजमानकी रक्षा करो । जाकर या खड़े होकर उसका आह्वान करो ।

८ अश्विद्वय, तुम्हारी प्रशस्त स्तुति कुशत्रय-युक्त यज्ञ-साधन द्वारा यजमानोंको प्रसन्न करे । अभीष्ट-वर्चिद्वय, तुम्हारा मेघ जल-वर्ण करते हुए, जल-सेवनकी तरह, मनुष्योंको घन देकर प्रसन्न करे ।

९ अश्विद्वय, पूषाकी तरह बहु प्रशशाली और हविष्मान् यजमान, अग्नि और उषाकी तरह, तुम्हारी स्तुति करता है । जिस समय पूजा-परायण स्रोत स्तुति करता है, उस समय यजमान भी स्तुति करता है, जिससे हम अन्न, वस्त्र और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ मनीषी क्षत्रिको, हमारी ऐसी धारणा हो रही है कि, अश्विनीकुमारोंका अभीष्टवर्षी रथ उपस्थित है । उसके आगे जाकर उनकी प्रतीक्षा करो । वे पुण्यवात्सलोंके कर्मको करते हैं । वे स्तुतियोग्य हैं । उन्होंने विश्पलाका भका किया था । वे स्वर्गके गता हैं । उनका कर्म क्षुब्ध है ।

२ अश्विद्वय, तुम अवरय ही इन्द्रभेष्ट, स्तुति-योग्य, मरुत्भेष्ट, वज्रनाशक, उत्कृष्टकर्मकारी, रथवान् और रथियों-में उत्तम हो । तुम मनुष्य हो । तुम चारो ओर सम्मन्वित रथको ले जाते हो । इसी रथपर कृपा करके इष्यवासाके पास जाओ ।

किमत्र दत्ता कृणुथः किमासाद्ये जनो यः कश्चिद्वहविर्महीयते ।
 अति कमिष्टं जुरनं पणेरस् ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥१॥
 जम्भयतमभिर्वा रायतः शुनो हतं मृशं विदधुस्तान्यश्विना ।
 वाचं वाचं अरितूरतिनी कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४॥
 युधमेतं चक्रथुः सिन्धुपु पुत्रमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौप्रयाय कम् ।
 येन देवत्रा मनसा निरुहथुः सुपतर्नापेथुः क्षोदसो महः ॥५॥
 अवविद्धं तौप्रयमपस्वन्तरणारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
 चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ।
 कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसोयं तौप्रयो ना धितः पर्यषस्वजम् ।
 पर्णा मृगस्य पतरोस्विराम उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७॥
 तद्वां नरा नासत्यावनुप्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
 अमावद्य सवसः सोम्यादा विद्यामेषं घृजनं जीरदातुम् ॥८॥



३ अश्विद्वय, यहाँ क्या करते हो ? यहाँ क्यों हो ? इव्य-द्वय जो कोई व्यक्ति पूजनीय हुआ हो, उसे परास्त करो । पणि या अवाञ्छितका प्राण नाश करो । मैं मेधावोकी और तुम्हारी स्तुतिका अभिलाषी हूँ । मुझे ज्योति दो ।

४ अश्विद्वय, जो कुत्तेकी तरह जवन्म शब्द करते हुए हमारे विराणके लिये आते हैं, उन्हें नष्ट करो । वे लड़ाई करना चाहते हैं, उन्हें मार डालो । उन्हें मारनेका उपाय तुम जानते हो । जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी प्रत्येक कथाको रत्नवत्ती करो । नासत्यद्वय, तुम दोनों मेरी स्तुतिकी रक्षा करो ।

५ अश्विद्वय, तुम राजाके पुत्रके लिये तुमने समुद्र-जलमें प्रसिद्ध, हड़ और पक्ष-विशिष्ट नौका बनायी थी । इसीमें तुमने ही अनुबह करके नौका द्वारा उसको निकाला था । अनायास आकर तुमने महासमुद्रसे उसका उद्धार किया था ।

६ जलके बीच, किन्नसुख गिराया हुआ तुमपुत्र अवलम्बनरहित अन्धकारके बीच अतीव पीड़ित हुए थे । अश्विद्वयकी प्रेरित जलके बीच प्रविष्ट चार नौकाएँ उमे मिली थीं ।

७ तुमपुत्रने बाधमान होकर जलके मध्य जिस निरवल वृक्षका आकिर्जन किया था, वह वृक्ष क्या है ? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित ठठाकर विपुल कीर्ति प्राप्त की है ।

८ नराकर अश्विद्वय, तुम्हारे पूजकोंने जो स्तव किया है, उसे तुम ग्रहण करो । अश्विद्वय, आज वृक्षके सोम-वाग-सम्पादक स्तोत्रमें गयी बनी, जिससे हम अन्न, कल और धन प्राप्त करें ।

१८३ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्निबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
 येनोपयाथः पुरुतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विनपणैः ॥१॥
 सुवृद्रथो वर्तते यन्नभिक्षं यत्तिष्ठतः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
 वपुर्वपुष्या सचतामिणं गोर्दिवो दुहित्रोपसा सचथे ॥२॥
 आतिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनुव्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
 येन नरा नासत्येषयध्रै वर्तिषाथस्मनयाय त्मने च ॥३॥
 मा वां वृको मा वृकीराध्वर्षीन्मा परिवर्कमुत मातिधक्कम् ।
 अयं वां भागो निहित इयं गोर्वस्त्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥
 युषां गोमः पुरुमीहो अत्रिदंसा हवतेवसे हविष्मान् ।
 दिशं न दिष्टा मृज्यूयेव यन्ता मे हवं नासत्योपयातम् ॥५॥
 अतारिष्म तमसस्पा रमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
 एह यातं पथिभिर्दवयानैर्विद्यामेघं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

१ अमोष्टवर्षी अश्विद्वय, जो रथ मनकी अपेक्षा भी वेगशाली है, जिसमें तीन सारणि-स्थान और तीन चक्र हैं, जो अमोष्टवर्षी और धातुत्रय-विशिष्ट है, जिस रथपर चढ़कर जैसे पक्षी पक्षोंके बल जाता है, वैसे ही तुम सङ्कलनकारीके घर जाते हो, उसी रथको तैयार करो ।

२ अश्विनीकुमारो, तुम संकल्पवान् होकर इष्यके लिये जिस रथपर चढ़ते हो, वही तुम्हारा भली भाँति आवर्त्तनकारी रथ, देवयजनभूमिके सामने, जाता है । तुम्हारे शरीरकी हितकारी स्तुति तुम्हारे साथ मिले । तुम घुलोककी पुत्री उषाके साथ मिलो ।

३ अश्विद्वय, जो रथ हविवासे यजमानके कमका लक्ष्य करके जाता है, हे नराकार नासत्यद्वय, तुम जिस रथसे यज्ञ-शाला जानेकी इच्छा करते हो, उसी अच्छी तरह आवर्त्तनकारी रथपर चढ़कर यजमानके पुत्र और अपने हितकी प्राप्तिके लिये यज्ञ-गृहमें जाओ ।

४ अश्विद्वय, तुम्हारी कृपासे वृक और वृकी मुझे न रगड़ें । मुझे छोड़कर दूसरेको दान नहीं करना । अश्विनी-कुमारो, वही तुम्हारा इष्य-भाग है, यही तुम्हारी स्तुति है, वही तुम्हारे लिये सोमरसका पात्र है ।

५ अश्विद्वय, जैसे मार्ग जाननेके लिये, पथिक पथ-प्रदर्शकको घुलाता है, वैसे ही गौतम, पुषमीध और अत्रि इष्य ग्रहण करके लृप्त करनेके लिये तुम्हें बुलाते हैं । अश्विद्वय, मेरे आह्वानके पास आओ ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे अनुग्रहसे हम अन्धकारके पाश चित्रे जायेंगे । तुम्हारे उद्देश्यसे यह स्तुति बनायी गयी है । देवोंके गन्तव्य पथ यशमें आओ । वेसा होनेपर हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे ।

सप्तम अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय



१८४ सूक्त । अश्विनय देवता । अनुष्टुप् छन्द ।

ता वामद्य नावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
 नासत्या कुह चित्सन्तावयो विधो नपाता सुदास्तराय ॥१॥
 अस्म ऊपु वृषणा मादयेथामुत्पणीहंतमूर्ध्या मदन्ता ।
 श्रुतं मे अच्छोक्तिर्मर्मतीनामेष्टा नरा निचेताग न कर्णेः ॥२॥
 ध्रिरे पूर्पान्नपृकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
 वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जुर्णैव वरुणस्य भूरेः ।
 अस्मे मा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनात मान्यस्य काराः ।
 अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय वर्षणयो मदन्ति ॥४॥
 यय वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेमिमेधवाना सुवृक्ष ।
 यात वनिस्तनयाय नृ ने वागस्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

१ अन्वकारका विनाश करनेके लिये उषाके आनेपर हम आजके यज्ञमें और दूसरे दिनेके यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं । अश्वनीकुमारो, तुम अरुणशून्य और शुलोवके नेता हो । तुम जहाँ-वहीं रहो, स्तोता आर्य श्रुवेदीय मंत्र द्वारा, विशिष्ट दानशील यजमानके लिये, तुम्हारे स्तुति करता है ।

२ अभीष्टवर्षी अश्वनीकुमारो, सांसारसमे बलवान् होकर तू हमारी तृप्ति करो और पणियोंका समूह नाश करो । हे नेमृद्वय, तुम्हें सामने लानेके लिये हम जो तृप्त-प्रद स्तुति करते हैं, उसे सुनो; क्योंकि तुमलोग स्तुतिके अध्येषक और सम्पन्न करनेवाले हो ।

३ नासत्यद्वय, हे सूर्य-चन्द्र-रूपी अश्वनीकुमारो, कल्याणप्राप्तिके लिये, तीरकी तरह, शीघ्रगामी होकर सूर्य-तनवाको ले जाओ । पूर्व युगकी तरह यज्ञ-कालमें सम्पादित स्तुति महान् वरुणको तुष्टिके लिये तुम्हें स्तुत करती है ।

४ मधुपाशवाले अश्वनीकुमारो, तू कवि मान्यकी स्तुति अंगीकार करो । तुम्हारा दान हमारे उद्देश्यसे प्रवृत्त हो । क्षुभ-फल-प्रदाता अश्वनीकुमारो, अन्नकी हस्त्यामे और वीर्यशाली यजमानके हितके लिये मनुष्य वा पुरोहित तुम्हारे साथ हर्षयुक्त हों ।

५ अन्नवान् अश्वनीकुमारो, तुम्हारे लिये दृव्यके साथ यह पाप-विनाशी स्तोत्र रचित हुआ है । अश्वनीकुमारो, अगस्त्यके प्रति सन्तुष्ट होकर यजमानके पुत्रादि और अपने सुख-भोगके लिये यज्ञ-भूमिमें आगमन करो ।

अतारिष्म तमसस्पादमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यात पथिभिर्देव यानैर्विधामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥



१८५ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को विवेद ।
विश्वं ह्यना विभृतो यद्ग नाम विवर्तते अहनी चक्रियेव ॥१॥
भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पटन्तं गर्भमपदी दधाते ।
निरत्यं न मृतुं पित्रोः रुपस्थे द्यावा रक्षत पृथिवीं नां अम्वात् ॥२॥
अनेहो दात्रमक्षितं नर्व हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयत जग्निं द्यावा० ॥३॥
अनप्यमाने अशसाधन्ती अनुष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभ देवानामुभयेभिरह्ना-द्यावाः ॥४॥
संगच्छमाने युधती समन्ते स्वसारा जामीपित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ता भुवनस्य नामिं द्यावा० ॥५॥

६ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी कृपासे हम अन्धकारको पार कर जायेंगे । तुम्हारे उद्देशसे यह स्तव रचित हुआ है ।
देवोंके गन्तव्य पक्षसे यज्ञमें आओ, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१ कविगण, धृ और पृथिवीमें पहले कौन उत्पन्न हुआ है, पीछे कौन उत्पन्न हुआ है, किसलिये उत्पन्न हुए हैं, यह बात कौन जानता है ? वे दूसरेके ऊपर निर्भर होकर सारे संसारको चारण करते हैं और दिन तथा रात्रिकी तरह चक्रवत् परिवर्तित होते रहते हैं ।

२ पाद-रहित और अविचल द्यावापृथिवी पादयुक्त तथा सचल गर्भस्थित प्राणियोंको, पिता-माताकी गोहमें पुत्रकी तरह, चारण करते हैं । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

३ हम अक्षितसे पाप-रहित, अक्षीण, हिंसा-रहित, अन्नयुक्त और स्वर्गतुल्य धनके क्रिये प्रार्थना करते हैं ।
द्यावापृथिवी, स्तोत्रा यजमानके लिये, वही धन उत्पन्न करते हो । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

४ हम प्रकाशमान दिन और रात्रिके उभयविध धनके लिये दुःख-रहित और अन्न द्वारा तृप्तिकारी द्यावा-पृथिवीका अनुगमन कर सकें । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

५ परस्पर संसक्त, सदा तक्षण, समान सीमासे संयुक्त, भगनीभूत और बन्धु-महद्य द्यावापृथिवी, पिता-माताके कोटस्थित और प्राणियोंके नाभि-स्वरूप, जलका घ्राण करते हुए, हमें महापापसे बचावें ।

उर्वी सद्यन्ती बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
 दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ॥६॥
 उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रूवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
 दधाते ये सुमगे सुप्रतीकी द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ॥७॥
 देवान्वा यच्चकृमाकञ्चिदागः सखायं वा सद्मिउआरूपतिं वा ।
 इयं धीभूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ॥८॥
 उमा शसा नर्या मामविष्टामुमे मामूती अवसा सचेताम् ।
 भूरि चिद्वर्यः सुदास्तरायेषा प्रबन्त इषयेम देवाः ॥९॥
 ऋतं दिवे तद्वोचं पृथिव्या अमिश्रानाय प्रथमं सुमेधा ।
 पातामवद्यादुदुरितादभोके पिता माता च रक्षतामवोमिः ॥१०॥
 इदं द्यावा पृथिवी सत्यमस्तु पितृमातर्यद्विहोपबु वेवाम् ।
 भूतं देवानामथमे अवोभिर्विद्यामेयं यृजनं जीरदानुम् ॥११॥



६ देवोंकी प्रसन्नताके लिये मैं विस्तीर्ण-निवासभूत, महाबुद्धि और शस्यादि-समुत्पादक द्यावापृथिवीको यज्ञके लिये बुलाता हूँ । इनका रूप आश्चर्य-जनक है और ये जल धारण करते हैं । द्यावापृथिवी, हमें महा पापसे बचाओ ।

७ महान्, पृथु, अनेक आकारोंसे विविष्ट और अनन्त द्यावापृथिवीकी, यज्ञस्थलमें, मैं, नमस्कार-मंत्र द्वारा, स्तुति करता हूँ । हे सौभाग्यवती और उदार-कुलाला द्यावापृथिवी, तुम संसारको धारण करो और हमें महा पापसे बचाओ ।

८ हम देवोंके पास जो सदा अपराध करते हैं, बन्धु और जामाताके प्रति जो सब अपराध करते हैं, हमारा वह यज्ञ उल सब पापोंको दूर करे ।

९ स्तुति-योग्य और मनुष्योंके हितकर द्यावापृथिवी मुझे, आश्चर्य-प्रदान करें । आश्चर्यदाता द्यावापृथिवी आश्चर्य देनेके लिये मेरे साथ मिलें । देवो, हम तुम्हारे स्तोता हैं; अन्न द्वारा तुम्हें नृत्य करते हुए प्रचुर दानके लिये प्रचुर अन्न चाहते हैं ।

१० मैं बुद्धिमान् हूँ । द्यावापृथिवीके उद्देशसे चारो दिशाओंमें प्रकाशके लिये मैंने अत्युत्तम स्तोत्र किया है । पिता-माता निन्दनीय पापसे हमें बचाव तथा हमें सदा पासमें रखकर नृत्यकर वस्तु द्वारा पालित करें ।

११ हे पिता और हे माता, तुम्हारे लिये इस यज्ञमें मैंने जो स्तोत्र पढ़े हैं, उन्हें सार्थक करो । द्यावापृथिवी, आश्चर्य-दाता द्वारा तुम स्तोताओंके समीपवर्ती बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१८६ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इदमिदं विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।
 अपि यथा युवानो मत्सथानो विश्वं जगदभिपित्वे मनोपा ॥१॥
 आ नो विश्व आस्का गमन्तु देवा मित्रो अर्थमा वरुणः सजोपाः ।
 भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्तसुपाहा विथुरं न शवः ॥२॥
 प्रेष्टं वो अतिथि गृणीषेभि शस्तिभिस्तुवणः सजोपाः ।
 असद्यथा नो वरुणः सुकीर्त्तिरिपश्च पर्यदरिगूर्तः सूरिः ॥३॥
 उप न एवे नमसा जिगीषोषासामका सुदुधेव धेनुः ।
 समाने अहन्विमिमनो अर्कं विपुरुषं पर्यासि सस्मिन्नूधन् ॥४॥
 उत नोहिर्बुध्न्यामयस्कः शिशुं न पिप्युथीव वेति सिन्धुः ।
 येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं बहन्ति ॥५॥
 उत न ईं त्वष्टागन्तवच्छा स्मत् सूरिभिर्भापित्वं सजोपाः ।
 आ वृत्रहन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६॥
 उत न ईं मतयोश्चयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिरहन्ति ।
 तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुग्मिष्टमं नरां न सन्त ॥७॥

१ अग्नि और सविता हमारी स्तुतिार्थक कारण सूस्थानीय देवों के साथ यज्ञ-स्थलमें आवें। युवकगण, हमारे यज्ञमें इच्छापूर्वक आकर सारे जगत्की तरह हमें भी प्रसन्न करा।

२ शत्रुओं के आक्रमण-कर्ता मित्र, वरुण और अर्थमा ये सब समान प्रीति-युक्त होकर आगमन करें। हमारे सब बहंयिता हों और शत्रुओं को परास्त करके, जिस प्रकार हमारा अन्न हीन न हो, ऐसा करें।

३ देवगण, मैं क्षिप्रकारी और तुम्हारी तरह प्रीति-युक्त होकर तुम्हारा श्रेष्ठ अतिथि (अग्नि) की स्तुति-मन्त्रों द्वारा स्तुति करता हूँ। उत्तम कीर्तिवाले सूरि वरुण हमारे ही हों। वरुण शत्रुओं के प्रति हूँकार करते हुए अन्न द्वारा हमें परिपूर्ण करें।

४ देवों, दिन-रात नमस्कार करते हुए, पाप-विजयके लिये, दुग्धवती धेनुकी तरह तुम्हारे पास उपस्थित होते हैं। हम, यथासमय, अथः स्थानसे एक मात्र उत्पन्न नाना रूप खाद्य द्रव्य मिश्रित करके लाये हैं।

५ अहिर्बुध्न्यामक अम्तरिक्षचारी देव हमें छल दें। सिन्धु, वत्सकी तरह, हमें प्रसन्न करें। हम जलके गता अग्निदेव स्तुति करते हुए प्राप्त हुए हैं। मनकी तरह वेगशाली मेघ उन्हें ले जाते हैं।

६ त्वष्टा हमारे सामने आवें। यज्ञके कारण त्वष्टा स्तोताओं के साथ समान-प्रीति-सम्पन्न हों। अतीव विशाल, वृक्षवातक और मनुष्यों के अभीष्ट-पूरक इन्द्र हमारे यज्ञस्थलमें आवें।

७ जैसे गाये बह्वर्णों को चाटती हैं, वैसे ही अश्वदुत्पन्न हमारा मन तरुण इन्द्रकी स्तुति करता है। जैसे स्त्रियाँ पतिको प्राप्त कर सम्मानवाली होती हैं, वैसे ही हमारी स्तुति, अतिथि यथोक्त इन्द्रको प्राप्तकर फल उत्पन्न करती है।

उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः समद्रादसी समनसः सदन्तु ।
 पृषदश्वास्वोवनया न रथा रिशास्वो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥
 प्र ऋ यदेषां महिना चिकित्रे प्रयुजते प्रयुजस्ते सुवृत्ति ।
 अध यदेषां सुदिने न शरुचिश्चमेणिं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥
 प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्रपूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
 अह्वषो विष्णुर्वीत ऋभक्षा अच्छा सुम्नाय ववृक्षीय देवान ॥१०॥
 इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यज्ञत्रा अपि प्राणी च सदनी च भूयाः ।
 नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेपं जीरदानुम ॥११॥



१८७ सूक्त । पितृ देवता । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

पितृं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्हयत ॥१॥
 स्वादो पितो मधो पिनो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२॥
 उप नः पितवाचर शिवः शिवाभिरुतिभिः । मयोभुरद्विषेत्यः सत्त्वा सुशेवो अह्वयाः ॥३॥

८ अतोव बलशाली, समान-प्रति-युक्त, पृषत् नामके अश्वसे सम्पन्न, अवनतस्वभाव और शत्रु-भक्षक मरु-गण, मेघ्रीवाले श्रुषियांकी तरह, यावापृथिवीके पासमे एकत्र हमारे इस यज्ञमें आये ।

९ मरुतोंकी महिमा पसिद्ध है: क्योंकि वे स्तुतिका प्रयोग जानते हैं । अनन्तर, जैसे प्रकाश संसारको व्याप्त करता है, वैसे ही सुदिनमें अन्धकार-विनाशक मरुतोंकी वृष्टि-प्रद सेना सारे अनुवंर देशोंको उत्पादिका शक्तिये सम्पन्न करती है ।

१० अश्विको, हमारी रक्षाके लिये अश्विनाकुमारों और पूषाकी स्तुति करो । द्रव-क्षुब्ध विष्णु, वायु और इन्द्र (ऋभक्षा) नामके स्वतंत्र बल-वर्धन देवोंकी स्तुति करो । सबके लिये मैं सारे देवोंको सामने लाऊंगा ।

११ यज्ञनीय देवों, तुम्हारी पसिद्ध ज्योति हमारे लिये प्राणदाता और निवास-स्थान बने । तुम्हारी अन्नवती ज्योति देवोंको प्रकाशित करे, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।



१ मैं, क्षिप्रकारी होकर, विशाल, सबके धारक और बलात्मक पितृ (अग्नि)की स्तुति करता हूँ । उनकी ही शक्तिये अग्निदेव या इन्द्रने वृत्रकी सन्धियां काटकर उसका वध किया था ।

२ हे स्वादु पितृ, हे मधुर पितृ, हम तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम हमारी रक्षा करो ।

३ हे पितृ, तुम सगलमय हो । कल्याणवादी आश्रयदाता द्वारा हमारे पास आकर, हमें छल दो । हमारे किये तुम्हारा रस अप्रिय न हो । तुम हमारे किये मित्र और अश्वितीय छलकर बनों ।

तव त्वे पितो रसा रजांस्यनुविष्टिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥
 तव त्वे पितो ददतस्तव स्वादिष्टते पितो । प्र स्वादुमानो रसानां तुविष्मिवा इवेरते ॥५॥
 त्वे पितो महानां देवानां मनोहितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥
 यद्वो पितो अजगन्निवस्व पर्वतानाम् । अत्राचिन्तो मधो पितोरम्भक्षाय गम्याः ॥७॥
 यदपामोषधीनां परिसमाश्रितमहे । वातापे पीव इन्द्रव ॥८॥
 यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वाता पे पीव इन्द्रव ॥९॥
 कर्मम ओषधे भव पीवां वृकः उदारधिः । वातापे पीव इन्द्रव ॥१०॥
 तं त्वा वयम् पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुपूदिम ।
 देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥



१८८ सूक्त । आसी देवता । गायत्री छन्द ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥१॥

४ पितु, जेसे वसु अन्तरीक्षकाभ । अद्य किये हुए हैं, वेसे ही तुम्हारा रस सारे संसारक अनुकूल व्याप्त है ।

५ स्वादुतम पितु, जो लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, वे भोक्ता हैं । पितु, तुम्हारी कृपासे वे तुम्हें दान देते हैं । तुम्हारे रसका आस्वादन करनेवालोंकी गर्दन ऊँची या मजबूत होती है ।

६ पितु, महान् देवोंने तुममें ही मन निहित किया है । पितु, तुम्हारी चाव बुद्धि और आश्रय द्वारा ही अहिंसा बच किया गया था ।

७ पितु, जिस समय मेघ प्रसिद्ध जलको लाते हैं, उस समय हे मधुर पितु, हमारे सम्पूर्ण भोजनके किये पास आना ।

८ चूँकि हम यथेष्ट जल और यव आदि ओषधियोंको खाते हैं; इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

९ सोम, तुम्हारे यव आदि और दुरव आदिसे मिश्रित अंशका हम भक्षण करते हैं । इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

१० हे कर्मम ओषधि या सत्तु पितृव, तुम स्थूलता-सम्पादक, रोग-निवारक और इन्द्रियोद्दीपक बनो । हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

११ पितु, गायोंके पास जेसे हव्य गृहीत होता है, वेसे ही तुम्हारे पास स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं । यह रस देवोंको ही नहीं, हमें भी दृष्ट करता है ।



१ अग्नि, ऋत्विगों द्वारा भकी भाँति आज समिद्ध नामक अग्नि सन्निभित होते हैं । हे सहस्रजित् देव, तुम कवि और दूत हो । तुम भकी भाँति हव्य ग्रहण करो ।

तनूनपादृतम् यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिपः ॥२॥
 आजुह्वानो न इह्यो देवा आवक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥३॥
 प्राचीनं बहिर्गोजसा सहस्रवीर्यमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
 विराट् सम्राड्विम्बीः प्रम्बीर्वह्नाभ्य भूयसीभ्य याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५॥
 सुरुक्ष्मे हि सुपेशसाधिश्रिया विराजतः । उपासावेह सीदताम् ॥६॥
 प्रथमा हि सुवानसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिम् ॥७॥
 भारतीडे सरस्वति यावः सर्वा उपम्र वे । ता नश्चादयतः श्रियं ॥८॥
 त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥९॥
 उपत्स्यत्या वनस्पते पाथां देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०॥
 पुरोगा अग्निर्दवानाम् गायत्रीण समज्यते । स्वाहाकृतोषु रोचते ॥११॥



१८६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युर्योध्यस्मज्ज हुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

२ पूजनीय तनूनपात नामक अग्नि हजार प्रकारोंमें अन्न धारण करके, यजमानके लिये, मधुर रसमें युक्त द्रव्यमें मिकते हैं ।

३ हे इह्य नामक अग्नि, तुम हमारे द्वारा आहूत होकर हमारे लिये यज्ञभागों देवोंको बुलाओ । अग्नि, तुम असीम अन्नके दाता हो ।

४ सहस्र वीरोंवाले और पूर्वोभिमुखमें अप्र भागमें युक्त जिस अग्निरूप कुशपर आदित्य लोग बैठे हैं, उसे ऋत्विक् लोग, मंत्रके प्रभावसे, आच्छादित करते हैं ।

५ यज्ञशालाका विराट्, सम्राट्, विभु, प्रभु, बहु, और भूयान् (अग्निरूप) दुवार जल गिराता है ।

६ दोस आभरणमें युक्त और छन्द-रूप-संयुक्त अग्नि रूप दिवा-रात्रि, अतीव शोभाशाली होकर विराजित होते हैं । वे यहाँ बैठे ।

७ वह अत्युत्तम और प्रियभावी अग्निरूप देव होता तथा दिव्य कवि-द्वय हमारे यज्ञमें उषस्थित हों ।

८ हे अग्निरूपिणी भारती, सरस्वती और इला, मैं तुम सबको बुलाता हूँ । जेमें मैं सम्पत्तिशाली हो सकूँ, वेसा करो ।

९ अग्निरूप त्वष्टा रूप देनेमें समर्थ हैं । वह सारे पशुओंका रूप व्यक्त करते हैं । त्वष्टा, हमें बहुत पशु दो ।

१० हे अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंका पशु रूप अन्न उत्पन्न करो । अग्नि सब इह्योंको स्वादित करे ।

११ देवोंके अन्नगामी अग्नि गायत्री छन्दसे लक्षित हुआ करते हैं । स्वाहा देनेके समय वह प्रवीस होते हैं ।

१ ऋत्विक्विष्ट अग्नि, तुम सब प्रकारके ज्ञान जानते हो; इसलिये हमें समार्गपर, चलकी ओर, ले जाओ । तुम कृत्तिक पापको हमारे पाससे ले जाओ । हम बार-बार तुम्हें प्रणाम करते हैं ।

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
 पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वीभवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥२॥
 अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमोवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टोः ।
 पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यज्ञत्र ॥३॥
 पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्
 मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥
 मा नो अग्नेव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनाये ।
 मा दत्त्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसाधन् परा दाः ॥ ५ ॥
 वि घ त्वावां ऋतजात यंसदुगृणानो अग्नं तन्वे वरुधम् ।
 विश्वाद्भिरिक्षोक्त वा निनित्सोरमिह तामसि हि देव विष्पद् ॥ ६ ॥
 त्वं तां अन्न उभयान्विविद्वान्वेपि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
 अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्ममृजेन्य उशिग्भिर्नाकः ॥७॥

१ अग्नि, तुम नये हो । स्तुतिके कारण हमें तुम सारे दुर्गम पापोंसे मुक्त करो । हमारा नगर अतीव प्रबल हो । हमारी भूमि प्रशस्त हो । तुम हमारे पुत्रों और अपत्योंको सुख प्रदान करो ।

२ अग्नि, तुम हमारे पाससे सब रोग दूर करो । जो अग्निहोत्र नहीं करते या जो हमारे विद्रोही हैं, उन्हें भी हटाओ । देव, तुम हमें शोभन फल देनेके लिये सारे मरण-रहित देवोंके साथ यज्ञघाटमें आओ ।

४ अग्नि, तुम सतत आश्रय-दान द्वारा हमें पालित करो । हमारे प्रिय यज्ञ-गृहमें चारो ओर दीप्ति-युक्त बनो । युवक अग्नि, मैं तुम्हारा स्तोता हूँ । मुझे आज और न पीछे कभी भय उत्पन्न हो ।

५ अग्नि, हमें अन्नप्राप्ति, हिंसक और क्षमनाशक शत्रुके हाथमें नहीं समर्पण करना । हमें दन्त-विशिष्ट और दंष्टक संप्रदायिके हाथमें नहीं सौंपना; दन्त-शून्य शृंगादिवाले पशुओंको नहीं सौंपना । बलिष्ठ अग्नि, हिंसक और, राक्षस आदिके हाथ भी हमें नहीं सौंपना ।

६ यज्ञोत्पन्न अग्निदेव, तुम वरणीय हो । शरीर पुष्टिके लिये स्तुति करते हुए लोग तुम्हें प्राप्त करके सारे हिंसक और निष्कृष्यक्तियोंके हाथोंसे अपनेको बचाते हैं । अग्नि, जो सामने कुटिल आचरण करते हैं, ऐसे दुष्टका तुम दमन करो ।

७ यज्ञनीय अभि, तुम यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले लोगोंको जानकर यज्ञकर्ताकी ही कामना करो । आक्रमणकारी अग्नि, पवित्रताभिकापी यज्ञमान जैसे श्रुतिवर्कोंके लिये शिक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी, यवासमय, यज्ञमानके शिक्षणीय हो ।

अथोन्नाम निषत्वनान्यस्मिन्मानस्य स्रुतः सहस्राने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेयं बृजनम् जीरदानुम् ॥ ८ ॥

१६० सूक्त । बृहस्पति देवता । त्रिष्टुप्छन्द ।

अन्नवर्षाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम् बृहस्पतिं वर्धयानव्यमर्कः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मताः ॥ १ ॥
तमृत्विद्या उपवाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसजि ।
बृहस्पतिः सहाजो वरांसि विश्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥
उपस्तुति नमस उद्यति च श्लोकं यंसत् सवितैव प्रावह ।
अस्य कृत्वाह्न्यो यो अस्ति मृगो न भीमा अरक्षस्तुतिष्मान् ॥ ३ ॥
अस्य श्लोका दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यस्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हिनयो यन्ति चेमा बृहस्पतेर्गहमायां अमिधून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोन्निकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दुह्ये अनुद्दासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥

८ मंत्र-पुत्र और शत्रुनाशक इन अरिनेके लिये ये सारे स्तोत्र बनाये गये हैं । हम इन अतोन्मय-प्रकाशक मंत्रों द्वारा सहस्र धन प्राप्त करेंगे । हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे ।

१ होता, अभीष्टवर्षी मिष्टजिह्व और स्तुतियोग्य बृहस्पतिको पूजा-साधक मंत्रों द्वारा वर्द्धित करो । वह स्तोत्राको नहीं छोड़ते । दीप्तियुक्त और स्तुतमान बृहस्पतिको गाथा-पाठक देवगण और मनुष्यगण स्तुति सुनाते हैं ।

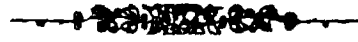
२ वर्षा ऋतु-सम्बन्धिनी स्तुतियाँ बृजन-कर्तृ-रूप बृहस्पतिके पास जाती हैं । वह देवाभिलाषियोंको फल देते हैं । वह सारे विश्वको व्यक्त करते हैं । वह स्वर्गव्यापी मातरिशवाकी तरह वरणीय फल उत्पन्न करके यज्ञके लिये सम्भूत हुए हैं ।

३ जैसे सूर्य किरणें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही बृहस्पति, यजमानोंकी स्तुति, अन्न, दान और मंत्रोंके स्वीकारके लिये चेष्टा करते हैं । राक्षसों और शत्रुओंसे शून्य बृहस्पतिको शक्तिसे दिवसकालीन सूर्य भयंकर जगत्तुकी तरह थलशाली होकर घूमते हैं ।

४ मृलोक और ध्रुलोकमें बृहस्पतिको कीर्ति व्याप्त होती है । बृहस्पति सर्गकी तरह पूजित हव्य धारण करते हैं । वह प्राणिजोंमें चैतन्य प्रदान करते और फल देते हैं । बृहस्पतिका आयुध शिकारी पुलकोंक आयुधकी तरह जाता है । उनका आयुध मायाविषोंके सामने प्रतिदिन दोबारा है ।

५ बृहस्पति, जो पापी लोग कस्यणवाही बृहस्पतिको बूढ़ा बेल जानते हैं, उन्हें तुम वरणीय धन नहीं देना । बृहस्पतिदेव, जो सोमयज्ञ करता है, उसपर तुम अवश्य कृपा रखते हो ।

सुप्रैतुः सुयवसो न पन्था दुर्नियंतुः परिप्रीतो न मित्रः ।
 अनर्वाणो अभि ये चक्षतेः नोपीवृता अपार्णवन्तो अस्थुः ॥६॥
 सं यं स्तुमोवन्धो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
 स विद्वान् उभयं चष्टे अस्तवृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥
 एवामहस्तुविजातस्तुविष्मान्वृहस्पतिवृषभो धायि देवः ।
 स नःस्तुतो वीरवद्धातु गोमन्त्रिद्यामेपं वृजनं जीरवानुम् ॥८॥



१६१ सूक्त । जल, तृण और सूर्य देवता । त्रिष्टुप् और महा पंक्ति छन्द ।
 कङ्कषी न कङ्कतोथो सतीनकङ्कतः ।
 द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥१॥
 अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ती परायती ।
 अथो अत्रन्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिपती ॥२॥
 शरासः कुशरासो दर्मासः सैर्या उत ।
 मौञ्जा अदृष्टाः घेरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

६ वृहस्पति, तुम सुखगामी और सुखाद्य-विशिष्ट यजमानके मार्गरूप और वृष्टवृन्ता राजाके बन्धु हो । जो हमारी निष्ठा करते हैं, उनके सुरक्षित होनेपर भी, उन्हें रक्षा-शून्य करो ।

७ जैसे मनुष्य राजासे मिलता है, तद्वत्पृथ्वी नदी जैसे समुद्रमें मिलती है, वैसे ही सारी स्तुतियाँ वृहस्पतिमें मिलती हैं । वह विद्वान् हैं । आकाशचारी पक्षीको तरह वृहस्पति-रूपसे जल और तट, दोनोंको देखते हैं । अथवा वृष्टिकामी अभिक्ष वृहस्पति, मध्यमें स्थित होकर तट और जल दोनोंको उत्पन्न करते हैं ।

८ इसी रूपसे वृहस्पति महान्, बलवान्, अभीष्टवर्षी, दीप्तिमान् होकर और बहुतोंके उपकारके लिये उत्पन्न हुए हैं । उनका स्तव करनेपर वह हमें वीर-विशिष्ट करें, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ अल्प विषवाले, महा विषवाले, जतीय अल्प विषवाले, दो प्रकारके, जलचर और स्थलचर, बाह्य प्राणी तथा अदृश्य प्राणी मुझे विष द्वारा, अच्छी तरह, लिस किये हुए हैं ।

२ जो औषध खाता है, वह अदृश्य विषचर प्राणीको विनष्ट करता है और प्रत्यावर्तन कालमें उसे विनष्ट करता है । बिनाशके समय नाश करता और पिसे जानेके समय पिसता है ।

३ शर, कुण्डर, दर्भ, सैर्य, मुञ्ज वीरण, आदि घासोंमें छिपे विषचरण मिलकर मुझे लिप्प करते हैं ।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविभक्त ।
 नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्तत ॥४॥
 वत छत्ये प्रत्यदृशन्प्रदोषं तत्करा इव ।
 अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥
 द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
 अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६॥
 ये अस्या ये अंग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
 अदृष्टाः किञ्चनेह वः सर्व साकं नि जस्यत ॥७॥
 उत् पुरस्तात् सूर्य पति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
 अदृष्टान्तसर्वाङ्गं भयनत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥
 उदपन्नदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्धन् ।
 आवित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥

४ जिस समय गाँव गोष्ठमें बेठी रहती हैं, जिस समय हरिण, अपने-अपने स्थानोंपर, विभक्त करते हैं और जिस समय मनुष्य निद्रामें रहता है, उस समय अदृश्य विचर मुक्त लिप्त किये हुए हैं ।

५ तत्करकी तरह वन सबको रातको देखा जाता है । वे, अदृश्य होनेपर भी, सारे संसारको देखते हैं; इसलिये मनुष्य सावधान हो जायें ।

६ स्वर्ग पिता, पृथिवी माता, सोम भ्राता और अदिति भगिनी हैं । अदृष्ट-समक्षी कोग, सुम कोग अपने-अपने स्थानपर रहो और यथासुख गमन करो ।

७ जो विचर स्कन्धवाले हैं, जो अंगवाले (सर्प) हैं, जो सूचीवाले (हरिणकादि) हैं, जो अतीव विचर हैं, वेते अदृष्ट विचरगणका यहाँ क्या है ? तुम सब कोग हमारे पाससे चले जाओ ।

८ पूर्व दिशामें सूर्य उगते हैं, वह सारे संसारको देखते और अदृष्ट विचरोंका विनाश करते हैं । वह सारे अदृष्टों और यातुधानी [राक्षसी वा महोरगी] का विनाश करते हैं ।

९ सूर्य, बड़ी संख्यामें, विषोंका विनाश करते हुए, उदित होते हैं । सर्वक्षी और अदृष्टोंके विनाशक आवित्य जीवोंके मंगलके लिये उदित होते हैं ।

सूर्ये विषमा सजामि द्रुतिं सुरावतो गृहे ।
 सो चिन्न न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
 सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
 ताश्चिन्नु न मरान्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
 सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनम्
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्तस्वसानो अग्रवः ।
 तास्ते विषं विजग्मिर उदकं कृष्मिर्नारिव ॥१४॥

१० शौचिकके घरमें चर्ममय सुरापानकी तरह में सूर्यमण्डलमें वि वर्षकता हुई । जैसे पूजनीय सूर्यदेव प्राण-त्याग नहीं करते, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते । अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत कर देती है ।

११ जैसे क्षुद्र शकुन्तिका पक्षीने तुम्हारा विष खाकर डगल दिया है, जैसे उसने प्राण त्याग नहीं किया, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करेंगे । अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है ।

१२ अग्निकी सातों जिह्वाओंमेंसे प्रत्येकमें श्वेत, लोहित और कृष्ण आदि तीन वर्ण अथवा २१ प्रकारके पक्षी विषकी पुष्टिवा विनाश करते हैं । वे कभी नहीं मरते; वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते । अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्य दूरस्थित विषका अपनयन करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है ।

१३ में सारी विष-नाशक जिनवानवे नदियोंके नामोंका कीर्तन करता हूँ । अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूर-स्थित विषका अपनोदन करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृत बना देगी ।

१४ जैसे स्त्रियाँ वक्त्रमें जल ले जाती हैं, हे देह, वैसे ही २१ मयूरियाँ (पक्षी) और सात नदियाँ तुम्हारा विष दूर करे ।

इयत्तकः कुषुम्भक स्तकं मिनदुम्यश्मना ।
 ततो विषं प्र धावते पगचौरनुसंवतः ॥१५॥
 कुषुम्भकस्तदग्नवीदुगिरेः प्रवतमानिकः ।
 वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

१५ देह, अतोव छोटा नकुल तुम्हारा विष दूर करे । यदि न करे, तो मैं इस कुटिसत जन्तुको कोष्ट द्वारा मार डालूँगा । मेरे शरीरसे विष दूर हो और दूर देशमें चला जाय ।

१६ पर्वतसे आकर, उस समय, नकुलने कहा—“वृश्चिकका विष रस-रस्य है ।” हे वृश्चिक, तुम्हारा विष रसशून्य है ।

पञ्चम अध्याय समाप्त



प्रथम मण्डल समाप्त



द्वितीय मण्डल



२ अष्टक । २ मण्डल । ५ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । गृत्समद् ऋषि ।* जगती छन्द ।

त्वमग्ने द्युमिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।

त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधोभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुविः ॥१॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्विष्यं तव नेष्टं त्वमग्निदूतायतः ।

तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि अग्रा चासि गृहपतिश्च नो द्मे ॥२॥

१ मनुष्यों के स्वामी अग्निदेव, यज्ञ-दिनमें तुम उत्पन्न होओ। सर्वतः दीमशाकी होकर उत्पन्न होओ। जलमें उत्पन्न होओ। पाषाणमें उत्पन्न होओ। वनसे उत्पन्न होओ। ओषधियोंमें उत्पन्न होओ।

२ अग्निदेव, होता, पोता, ऋत्विक् और नेष्टा आदिका कार्य तुम्हारा ही कर्म है। तुम आनोष हो। त्रिष्य तुम यज्ञकी हुक्मा करने हो, उस समय प्रशास्ताका काम भी तुम्हारा ही है। तुम्हीं अध्वर्यु और अग्रा ऋषि हो। हमारे घरमें तुम ही गृहपति हो।*

ॐ अथर्ववेदके प्रथम और दशम मण्डलोंके रचयिता अनेक ऋषि हैं; परन्तु अवशिष्ट मण्डलोंके अथर्ववेदके अथर्व ऋषि उनके वंशीय हैं। जिन मण्डलोंके जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—१ के गृत्समद्, २ के शौनक, ३ के शौनक, ४ के वामदेव, ५ के अत्रि, ६ के भारद्वाज, ७ के त्रिमिष, ८ के कश्यप और ९ के अङ्गिरा ऋषि या इन पुराणोंके वंशीयभूष रचयिता हैं।

कहा जाता है, अङ्गिरा ऋषिके वंशीयभू नहोत्र ऋषिके पुत्रका नाम गृत्समद् था। एक बार अश्वर काया गृत्समद् के पक्ष में गये। पीछे इन्द्रने गृत्समद्का उद्धार किया और उनको भृगुवंशीय शुनकके पुत्र शौनक कहकर आश्रित किया। शौनककी अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है। इससे मालूम पड़ता है, अङ्गिराके वंशको छोड़कर गृत्समद्के वंशीयता प्राप्त की थी। महाभारत (अनुशासन पर्व)में विदित होता है कि, गृत्समद् वैश्य अत्रियोंके राजा और शौनकके पुत्र थे। एक बार काशीराज प्रतर्दनके भयसे वीतिहव्य भृगुके आश्रममें जा छिपे। भृगुने उन्हें शरणमें रख लिया। वीतिहव्यको खोजते हुए प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें जा घुसके। पक्ष्मनेपर भृगुने कहा कि, मेरे आश्रममें अत्रिय नहीं आते। ऋषि-वाक्य असत्य नहीं होता; इसलिये हमी दिनसे वीतिहव्य आश्रम हो गये और उन्होंने पुत्र गृत्समद् कहा। किसी पुराणके मतसे तो गृत्समद् सुहोत्रके पुत्र और शुनक वा शौनकके पिता हैं। गृत्समद्ने ही जाति-परिभाषाकी सृष्टि की—यह भी उल्लेख है। किसीके मतसे नेमिवारण्यमें जो द्वादशवर्ष-आपी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद् (शौनक) प्रधान थे।

* ये यज्ञके कई ऋत्विकोंके नाम हैं। बड़े यज्ञमें ११ ऋत्विक् रहते थे। १२ मण्डलके अनुक्रममें इनके विवरण हैं।

त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुहगायो नमस्यः ।
 त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३॥
 त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
 त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्यं सम्भुजं त्वमंशो विद्ये देव भाजयुः ॥४॥
 त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नाधो मित्रमहः सजात्यम् ।
 त्वमाशुहेमा ररिपे स्वश्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरुवसुः ॥५॥
 त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मादतं पृक्ष ईशिपे ।
 त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्खयस्त्वं पूषाविधतः पासि नु त्मना ॥६॥
 त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
 त्वं भगो नृपते वस्व ईशिपे त्वं पायुर्वमे यस्तेविधत् ॥७॥
 त्वामग्ने दम आविशपतिं विशस्त्वां राजानं सुविद्वत्रमृजते ।
 त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८॥

३ अग्निदेव, तुम साधुओंका मनोरथ पूर्ण करते हो; इसलिये तुम्हारी विष्णु हो, तुम बहुतोंके स्तुतिपात्र हो; तुम नमस्कारके योग्य हो। घनवान् स्तुतिके अधिपति, तुम मन्त्रोंके स्वामी हो, तुम विविध पदार्थोंकी सृष्टि करते और विभिन्न बुद्धियोंमें रहते हो।

४ अग्नि, तुम धृतव्रत हो; इसलिये तुम राजा वरुण हो। तुम क्षत्रियोंके विनाशक और स्तुति-योग्य हो; इसलिये तुम भिन्न हो। तुम साधुओंके रक्षक हो, इसलिये तुम अर्यमा हो। अर्यमाका दान सर्वव्यापी है। तुम अंश (सूर्य) हो। अग्निदेव, तुम हमारे यज्ञमें फलदान करो।

५ अग्निदेव, तुम त्वष्टा हो। तुम अपने सेवकोंके वीर्यरूप हो। सारी स्तुतियाँ तुम्हारी ही हैं। तुम्हारा तेज हितकारी है। तुम हमारे बन्धु हो। तुम शीघ्र उत्साहित करते हो और हमें उत्तम अश्व-युक्त घन देते हो। तुम्हारे पास बहुत घन है। तुम मनुष्योंके बल हो।

६ अग्नि, तुम महान् आकाशके असुर रुद्र हो। तुम मरुतोंके बलस्वरूप हो। तुम अन्नके ईश्वर हो। तुम सुखके आधार-स्वरूप हो। लोहित-वर्ण और वायु-सदृश अश्वपर जाते हो। तुम पूषा हो, तुम स्वयं कृपा करके परिचालक मनुष्योंकी रक्षा करते हो।

७ अग्नि, अलंकारकारी यजमानकेलिये तुम स्वर्गदाता हो। तुम प्रकाशमान सूर्य और रत्नोंके आधार-स्वरूप हो। नृपति, तुम भजनीय घनदाता हो। यज्ञ-गृहमें जो यजमान तुम्हारी सेवा करता है, उसको तुम रक्षा करते हो।

८ अग्नि, लोग अपने-अपने घरमें तुम्हें प्राप्त करते और तुम्हें विभूषित करते हैं। तुम मनुष्योंके पालक, दीप्तिमान् और हमारे प्रति अजुब-सम्पन्न हो। तुम्हारी सेवा अत्युत्तम है। तुम सारे इन्द्रियोंके ईश्वर हो। तुम हमारो, सेकड़ो और दूधो फल देते हो।

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्राताय शम्या तनून्वम् ।
 त्वं पुत्रो भवसि यस्तेविधत्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥९॥
 त्वमग्ने अमुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
 त्वं विभास्यनुधक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यक्षमातनिः ॥१०॥
 त्वमग्ने अदितिदध दाशुषे त्व होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
 त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥
 त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्त्ववरुणार्हं वर्ण आ सन्दृशि श्रियः ।
 त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतरुपथुः ॥१२॥
 त्वामग्ने आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुच्यभ्रकिरे कवे ।
 त्वां रातिपात्रो अध्वरेषु सश्रिरे त्वं देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥
 त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रूह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
 त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञियं शुचिः ॥१४॥
 त्वं तानत्सञ्च प्रतिचासि मज्मानाग्ने सुजात प्रचदैवर्ग्यसे ।
 पृथो यदत्र महिनावितै भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

९ अग्नि, यज्ञ द्वारा लोग तुम्हें तृप्त करते हैं; क्योंकि तुम पिता हो । तुम्हारा अमृतत्व प्राप्त करनेके लिये लोग कर्म द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं । तुम भी उनका शरीर प्रदीप्त कर देते हो । जो तुम्हारी सेवा करता है, तुम उसके पुत्र हो । तुम सखा, शुभकर्ता और शत्रु-निवारक होकर रक्षा करो ।

१० अग्नि, तुम श्रु भू हो । तुम प्रत्यक्ष स्तुति-योग्य हो । तुम सर्वत्र विभूत घन और अन्नके स्वामी हो । तुम अतीव उज्ज्वल हो । अंधकारके विनाशके लिये तुम धीरे-धीरे काष्ठ आदिका दहन करते हो । तुम भली भाँति यज्ञका निर्वाह और उसके फलका विस्तार करते हो ।

११ अग्निदेव, तुम इन्द्रदेवताके लिये अदिति हो । तुम होत्रा और भारती हो । स्तुति द्वारा तुम वृद्धि प्राप्त करो । तुम सौ वर्षोंकी भूमि हो । तुम दानमें समर्थ हो । हे घन-पालक, तुम वृत्रहन्ता और सरस्वती हो ।

१२ अग्निदेव, अच्छी तरह पुष्ट होनेपर तुम्हीं उत्तम अन्न हो । तुम्हारे स्पृहणीय और उत्तम वर्णमें ऐश्वर्य रहता है । तुम्हीं अन्न, प्राता, बृहत्, घन, बहुल और सर्वत्र विस्तीर्ण हो ।

१३ अग्निदेव, आदित्यों तुम्हें मुख दिया है । हे कवि, पवित्र देवताओंने तुम्हें जीभ दी है । दानके समय एकत्र देवता यज्ञमें तुम्हारी अपेक्षा करते और तुम्हें ही आहुति रूपमें दिया हुआ इन्द्र्य भक्षण करते हैं ।

१४ अग्निदेव, कारे अमर और शेष-रहित देवगण तुम्हारे मुखमें, आहुतिरूपमें, प्रदत्त हविका भक्षण करते हैं । मर्त्यगण भी तुम्हारे द्वारा अन्नादिका आस्वाद पाते हैं । तुम सत्ता आदिके गर्भ — (उत्ताप)-रूप हो । पवित्र होकर तुमके जन्म ग्रहण किया है ।

१५ अग्निदेव, बल द्वारा तुम प्रसिद्ध देवोंके साथ मिलो और उनसे पृथक् होओ । सजात देव, तुम इनसे बलिष्ठ बनो; क्योंकि तुम्हारी ही महिमासे यह यज्ञ-स्थित अन्न शब्दायमान द्यावापृथिवीके बीच व्याप्त होता है ।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्रे रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च ताँश्च प्रहिनेषि वस्य आवृहद्वैम विदधे सुवीराः ॥१६॥



२ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
रुमिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं यक्ष होतारं वृजनेषु धुषेदम ॥१॥
अग्नि एता नकोरुषसां ववाशिरग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिवइवेदरातमानुषा युगाक्षयो भासि परुषार संयतः ॥२॥
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंसरुन्दिनस्पृथिव्यास्तरति न्येरिरे ।
रथमिच वेद्यं शुक्रशोचिपमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥
तमुक्षमाणं रजसि स्वआदमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्यार आदधुः ।
पृथ्व्याः पतरं त्रिकन्द्यतमशमिः पाथो न पाथुं जनसी उभे अनु ॥४॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मेनुष ऋजने गिरा ।
हिरिशिषो वृधस्तानासु जर्भरद्योर्नस्तृमिश्रतयत्रोत्सी अनु ॥५॥

इति, जो मेधावी स्तोत्रार्थों को गौ और लक्ष्म आदि दान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें देनेवाले हैं, और ये युक्त होकर यज्ञमें विशाल मन्त्र पढ़ेंगे ।

१। यज्ञोपवीत धोपितमान्, शोभन-स्वस्त-सम्पन्न, स्वरादासा, उद्दीप्त, होम-निष्पादक और बलप्रदाता हैं । इन सर्व-
श्रेष्ठों को दान द्वाया वर्द्धित करें और यज्ञ तथा विस्तृत स्तुति द्वारा पूजा करो ।

२। अग्ने, जैसे दिनों में राखे लकड़ों की इच्छा करती हैं, वैसे ही हमें यजमान लोग दिन और रात्रिमें चाहते हैं ।
कैलास पर्वत-अग्निदेव, तुम संयत होकर आलोकमें व्याप्त हो । मनुष्योंके यज्ञोंमें सदा रहते हो । रातमें प्रदीप्त
हो ।

३। अग्नि सवर्ण, आवापृथिवीके ईश्वर, धन-पुत्री रथके सट्टण, दीप्तवर्ण, ज्वाला-स्वरूप, कार्यसाधक और यज्ञ-
श्रेष्ठ । अग्नि देवता लोग उन्हीं अग्निको संसारके मूल देशमें स्थापित करते हैं ।

४। अग्नि अन्तरिक्षमें वृद्धि-बल-दाता, चन्द्रमाकी तरफ दीप्ति-विशिष्ट, अन्तरोक्षगामी ज्वाला द्वारा लोगोंको
पथ-दर्शक, नक्षत्र-रक्षक और सबको जनयित्री आवापृथिवीको व्याप्त करनेवाले हैं । उन्हीं अग्निको उस विजय
द्वारा बल-प्रदाता माना गया है ।

५। अग्नि होवादक होकर अग्निदेव सारे यज्ञोंको व्याप्त करें । मानवोंने हव्य और स्तुति द्वारा उन्हें अलंकृत किया
है । तपस्व-शत्रुयुक्त अग्नि बद्धमान ओषधियोंके बीच जलकर, जैसे नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं, वैसे ही, आवापृ-
थिवीको प्रकाशित करते हैं ।

स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये सन्धवस्वानयिमस्मासु दीदिहि ।
 आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देववीतये ॥६॥
 दा नो अग्ने बृहतो दाः सक्षिणो वुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
 प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्णं शुक्रमुषसो वि विद्युतुः ॥७॥
 स इधान उषसो रम्या अनु स्वर्णदीदेदारुणेण भानुना ।
 होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चाहरायवे ॥८॥
 एवानो अग्ने अमृतेषु पूर्यं व्रीष्पीपाय बृहद्विषेभु मानुषा ।
 दुहाना धेनुवृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुषमिषणि ॥९॥
 वयमग्ने अर्षता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमाजनां अति ।
 अस्माकं धृस्त्रमधि पञ्च कण्टिपृश्वा स्वर्णं शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥
 स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त् सुजाता इषयन्त सूरयः ।
 यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

६ अग्निरेव, हमारे मङ्गलके लिये क्रमागत और वद्धित धन देते हुए तुम प्रज्वलित होकर प्रकाशित होओ ।
 अग्नि, द्यावापृथिवीमें हमें कल दो । मनुष्यों द्वारा प्रदत्त इव्य देवोंके भक्षणके लिये लाया जाय ।

७ अग्नि, हमें यथेष्ट गौ, अश्व आदि तथा सहस्र-संख्यक पुत्र, पौत्र आदि दो । कीर्तिके लिये अन्न दो और अन्नका द्वार खोको । उत्कृष्ट यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको हमारे अनुकूल करो । आदित्यकी तरह उपाय तुम्हें प्रकाशित करती हैं ।

८ रमणीय उषामें अग्नि प्रज्वलित होकर, सूर्यकी तरह, उज्ज्वल क्षिरणोंमें देदीप्यमान होते हैं । मनुष्योंके होम-साधक, स्तुति द्वारा स्तुयमान, उत्तम यज्ञवाले और प्रजाओंके स्वामी अग्नि यजमानके पास, प्रिय अतिथिकी तरह, आते हैं ।

९ अग्नि, तुम यथेष्ट धृतिवाले हो । देवोंके पूर्ववर्ती मनुष्योंकी स्तुति तुम्हें आप्यायित करती है । दूधवाली गायकी तरह यह स्तुति यज्ञस्थित स्तोताकी तरह स्वयं अपरिमित और विविध प्रकार धन प्रदान करती है ।

१० अग्नि, हम तुम्हारे दिये अन्न और अश्वसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके सबको लांच जायेंगे और इससे, हमारी अनन्त और वृक्षोंके लिये अप्राप्य जनराशि सूर्यकी तरह, चार वर्णों (चार वर्ण और ८३२ निषाद)के ऊपर होक्षिमान होगी ।

११ वज्र-पराकेता अग्नि, तुम हमारी स्तुतिके बोधय हो । हमारा स्तोत्र अवज करो । छज्जमा स्तोता कोण तुम्हारे ही उद्देशसे स्तुति करते हैं । अग्नि, रस और पुत्रकी प्राप्तिके लिये इव्य-विशिष्ट यजमानके यागगृहमें दीप्यमान और यजनीय अग्निकी पूजा की जाती है ।

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अने सूरयश्च शर्मणि ।
 वस्त्रो रायः पुरुश्चन्द्रस्य मूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२॥
 ये स्तोतृभ्यो गो अग्रामश्चपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
 अस्माञ्चतांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम पिदधे सुविराः ॥१३॥



१ सूक्त । आप्री देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।
 समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्गविश्वानि भुवनान्यस्यात् ।
 होना पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजस्वग्निरहन ॥१॥
 नराशंसः प्रति धामान्यज्जितस्त्रोः दिवः प्रति मत्ता स्वन्निः ।
 घृतप्रपा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान ॥२॥
 ईलितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषान्पूर्वो अद्य ।
 स आवह मरुतां शश्रौ अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषद् यजध्वम् ॥३॥
 देव बर्हिषध्रमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
 घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

१२ सर्वभूतज्ञ अग्नि, तुम्हारा स्तोता और मेधावी यजमान—इस दोनों छल-प्राप्तके लिये तुम्हारे ही होंगे ।
 हमारे निवास-देव, अतिशय आह्लाद-प्रद, प्रभूत और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त घन दो ।

१३ अग्नि, जो मेधावी लोग स्तोताओंको गौ और अश्व आदि घन प्रदान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें ले चलो । वीर-युक्त होकर इस यज्ञमें बृहत् मन्त्रका उच्चारण करेंगे ।

१ वेदीपर निहित समिद्ध नामक अग्नि सारे गृहके सामने अर्वास्थित है । होम-निष्पादक, विशुद्धताकारी, प्राचीन, प्रजा-संभूत, धोतमान और पूजा-योग्य अग्नि देवोंकी पूजा करें ।

२ नराशंस नामक अग्नि, सुन्दर ज्वालासे युक्त होकर, अपनी महिमासे, प्रत्येक आहुति-स्थल और प्रकाश-मान तीर्थों लोकोंको व्यक्त करते हुए, धी बरसानेकी इच्छासे, हव्य स्निग्ध करके, यज्ञके सामने देवोंको प्रकाशित करें ।

३ इक्षित या इका नामक अग्निदेव, हमपर प्रमत्त चित्तमें, यागकर्मके योग्य होकर, आज, हमारे लिये, मनुष्योंके पूर्ववर्ती होकर देवोंका यज्ञ करो । मरुतों और अच्युत इन्द्रका सम्बोधन करो । श्रुतिविको, कुशपर बैठे हुए इन्द्रका यज्ञ करो ।

४ धोतमान कुश-स्वरूप अग्नि, हमारे घन-लाभके लिये, इस वेदीपर अच्छी तरह विस्तृत हो जाओ । तुम सदा बढ़नेवाले और वीर-प्रदाता हो । वसुओं, विरवदेवों, यज्ञ-योग्य आदित्यों, तुम धी-लगाये कुशपर बैठो ।

विश्रयन्तामुविद्या हूयमाना द्वारा देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
 व्यवस्वतीविप्रथन्तामजुर्बावर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥
 साध्वर्पांसि सनता न उक्षिने उषास्नानका वय्येव रन्विते ।
 तन्तुं तत सन्वयन्ती समाची यज्ञस्य पेशः सुदुग्धे पयस्वती ॥६॥
 देव्या हांतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षतः समृवा वपुष्टरा ।
 देवान्ययजन्तावृनुथा समञ्जतो नामा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥
 सरस्वती साधयन्तो धियं न इलादेवी भारती विश्वतूर्तीः ।
 तिस्रो देवीः स्वधया बाहरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निपद्य ॥८॥
 पिशङ्गकूपः सुमरो षयाधाः श्रष्टा वीरा जायते देवकामः ।
 प्रजां त्वष्टा विष्यतु नामिमस्मे अथादेवानामप्येतु पाथः ॥९॥
 वनस्पतिरवसृजन्नुपस्थाद्ग्रिहविः सद्याति प्रघोभिः ।
 त्रिधा समकं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो देव्यः समिताप इव्यम् ॥१०॥

५ हे बासमान, द्वारा-रूप आदि, तुम कुल जानो । तुम महान् हो । लोग नमस्कार करते हुए तुम्हारे लिये इवन करते और सरलतासे तुम्हारे पास जाते । तुम व्यापक, अहिंसनीय, वीर-विशिष्ट, यशायुक्त और वर्णनीय रूपके सम्पादक हो । तुम भलो भौति प्राप्त देहात्मा ।

६ हमें अच्छे कर्म-फल देनेवाली अग्नि-रूप उषाएँ रात्रिको वयन-वतुश दे रमणियाँको तरह, सहायताके लिये, परस्पर जाते-आते, यज्ञका रूप बनानेके लिये, परस्पर अनुकूल होकर बड़े सन्तुका वयन करती हैं । वे अतीव फलदाता और जल-युक्त हैं ।

७ अग्निरूप दिव्य वा होता पहन ही यज्ञक याग्य हैं । वे सर्वपिक्षा विद्वान् और विशाल शरीरसे संयुक्त हैं । वे मन्त्र द्वारा अच्छी तरह पूजा करते और यथासमय देवोंके लिये यज्ञ करते हैं । वे पृथिवीको नामि-रूपिणी उत्तर-वेदों के गाहेपत्य आदि तीन अग्निर्षोंके प्राति गमन करते हैं ।

८ हमारे यज्ञकी निष्पादिका अग्निरूप सरस्वती, इला और सर्वव्यापिका भारती, ये तीनों देवियाँ याग-गृहका आश्रय करके, इव्य-लाभके लिये, निर्दोष रूपसे, हमारे यज्ञका पालन करें ।

९ अग्नि-स्वरूप त्वष्टाकी दयासे हमारे पिशङ्ग वर्ण, यज्ञकर्ता, अन्नदाता, क्षिप्रकर्ता, देवाभिकाषी और वीर पुत्र उत्पन्न हो । त्वष्टा हमें कुल-रक्षक सन्तान दे । देवोंका अन्न हमारे पास आवे ।

१० वनस्पति-रूप अग्नि हमारे कर्म जानकर हमारे पास हैं । विशेष कर्म द्वारा अग्नि मज्जी भौति इव्य पकाते हैं । दिव्य क्षमिता नामके अग्नि तीन प्रकारसे अच्छी तरह सिक्त इव्यका जानकर उसे देवोंके निकट ले जायें ।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिघृते श्रितो घृतस्वस्य घाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥

४ सूक्त । अग्नि देवता । भृगुके अपत्य सोमाहति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

बुधे वः सुद्योत्मानं सुवृत्तिं विशामग्निमतिथि सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिपायवोभूद्देव आदेवे जने जातयेदाः ॥१॥
इमं विधन्तो अपां सधस्ये द्विता दधुर्भृगवो विश्वायोः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२॥
अग्नि देवासो मानुषीषु विश्वं प्रियं धुः क्षेप्यन्तो न मित्रम् ।
सवीद्यदुशलीरूम्या आदक्षायो यो दास्वते दम आ ॥३॥
अस्य रक्षा स्वस्येव पुष्टिः सद्दृष्टिरस्य हिवानस्य दक्षोः ।
वि यो मरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोघवीति वारान् ॥४॥
आयन्मे अश्वं वनदः पनन्तोशिभ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकितेरंसुभासा जुजुवां यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥

११ में अग्निमें धी ढाकता हूँ । घृत ही उनकी जन्मभूमि, आश्रय-स्थान और दीप्ति है । अभीष्टवर्षी अग्नि, हव्य देनेके समय देवोंको बुलाकर उनकी प्रसन्नता उत्पादन करो और अग्नि-रूप स्वाहाकारमें प्रवृत्त हव्य ले जाओ ।

१ यजमानो, मैं तुम्हारे लिये अतीव दीप्तियुक्त, निष्पाप, यजमानोंके अतिथि-स्वरूप और हव्य-युक्त अग्निको बुलाता हूँ । वे सर्व-भूत-ज्ञाता और मनुष्योंसे देवोंतकके धारणकर्ता हैं ।

२ भृगुओंने अग्निकी सेवा करके उन्हें जलके निवासस्थान, अन्तरीक्ष और मानवोंकी सन्तानोंके बीच स्थापित किया था । शीघ्रगामो अववाले और देवोंके स्वामी अग्नि हमारे समस्त विरोधी प्राणियोंको पराभूत करें ।

३ स्वर्ग जाते समय देवोंने, मित्रकी तरह, अग्निको मनुष्योंके बीच स्थापित किया था । वह अग्नि हव्यदाता यजमानके लिये, उसके योग्य गृहमें स्थापित होकर, अपनी अभिलाषा करनेवाली रात्रियोंमें दोह होते हैं ।

४ अपने शरीरकी पुष्टि करनेके सहस्र अग्निके शरीरकी पुष्टि करना भी रमणीय है । जिस समय अग्नि चारो ओर फैलते और काष्ठको भस्म करते हैं, उस समय उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है । जैसे रथका अश्व बार-बार पूछें कँपाता है, वैसे ही अग्नि भी काठोंपर अपनी शिखा कँपाते हैं ।

५ मेरे सहयोगी स्तोता लोग अग्निके महत्त्वकी स्तुति करते हैं, वे आपही ऋत्विकोंके पास अपना रूप प्रकाशित करते हैं । अग्नि रमणीय हव्यके लिये विचित्र किरणमालासे प्रकाशित होते हैं । अग्नि बुद्ध होकर भी बार-बार वसी क्षण युवा हो सकते हैं ।

आ यो वना तातृषाणो न भाति बाणं पथा रथ्येव स्वानीत् ।
 कृष्णाध्वा तपू रण्वञ्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥
 स यो व्यस्थादमिदक्षदुर्वो पशुर्नेति स्वयुरगोपाः ।
 अग्निः शोचिष्मा अतसान्गुष्णन्कृष्णव्यधिरस्वदयं न भूम ॥७॥
 नू ते पूर्वस्थावसो अधीतो तृतीये विदयं मन्म शंसि ।
 अस्मे अग्ने संयद्गीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजंस्वपत्यं रयि दाः ॥८॥
 त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपरी अभि ष्युः ।
 सुवीराशो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥

५ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
 प्रयक्षं जेन्यं वसु शकेम धाजिनो यमम् ॥१॥
 आ यस्मिन्त्सप्तर्श्मयस्तता यक्षस्य नेतरि ।
 मनुष्वदैव्यमष्टमं पोता विश्व तदिन्धति ॥२॥

६ तृषाणुकी तरह जो अग्नि वनोंको दग्ध करते हैं, जलकी तरह इधर-उधर जाते हैं, रथवाहक अश्वकी तरह शब्द करते हैं, वह कृष्ण-मार्ग और सापक होनेपर भी नभोमण्डलवाले शूलोकी तरह शोभन हैं ।

७ जो अग्नि विश्वको व्याप्त करते हैं, जो अग्नि विस्तृत पृथिवीपर बढ़ते हैं, जो अग्नि रक्षक-रहित पशुकी तरह अपनी इच्छासे गमन कर विचरण करते हैं, वही दोसिमान् अग्नि सूखे वृक्ष आदिको जलाकर, वध्याकारो कण्टक आदिको दूरकर, अच्छी तरह रसास्वदन करते हैं ।

८ अग्निदेव, तुमसे पहले, प्रथम सवनमें, जो रक्षा की थी, उते हम आज भी स्मरण करके तृतीय सवनमें मनाहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं । अग्नि, तुम हमें वीर-विशिष्ट करो । तुम हमें महान् कीर्त्तिमान् करो । हमें सुन्दर अपत्य और धन दो ।

९ अग्नि, गृत्समद-वंशीय ऋषि लोग तुम्हें रक्षक पाकर, जम्बका पाठ करते हुए, गुहामें अवस्थित उत्कृष्ट स्थान पर वर्त्तमान धन-विशेष प्राप्त करेंगे । वे उत्तम पुत्र आदिको प्राप्त कर शत्रुओंको परास्त करेंगे । मेधावी और स्तुतिकारो यजमानोंको बहुत अधिक और प्रसिद्ध धन दो ।

१ होता, चेतन्यदाता और पिता अग्नि पितरोंकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुए । हम भी इष्ट-युक्त होकर असीव पूजनीय, जीतने और रक्षा करने योग्य धन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ।

२ यज्ञ-वेत्ता अग्निमें सात रश्मियाँ विस्तृत हैं । देवोंके पोताके समान, अग्नि मनुष्योंके पोताकी तरह, वृक्षके अन्धम स्थानीय होकर उग्राप्त होते हैं ।

दधन्ये वा यदीमनु वान्द्रुप्रह्णाणि वेरुतत् ।
 परिविश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥
 साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुवाजनि ।
 विद्वानस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानुराहते ॥४॥
 ता अस्य वर्णमायुत्रो नेष्टः सचन्त धेनवः ।
 कुर्वन्तिसुभ्य आवरं स्वसारो या इव ययुः ॥५॥
 यदीमातुरुपस्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
 तासामध्वर्युरागतौ यवो घृष्टीव मादते ॥६॥
 स्वः स्वाय धायसे कृणतामृत्स्विगृत्विजम् ।
 स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमाररिमा वयम् ॥७॥
 यथा विद्वान् अरङ्कुरद्विष्वेभ्या यजतेभ्यः ।
 अयमग्न त्वे अपि यं यज्ञं चक्रमा वयम् ॥८॥



६ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।
 इमां मे अग्नं समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उप श्रुधो गिरः ॥१॥

२ अथवा इस यज्ञमें श्रुत्विक्कण जो हव्यादि धारण करते, जो मंत्र आदि पढ़ते हैं, सो सब अग्निदेव जानते हैं ।

४ पवित्र प्रशास्ता अग्नि पुष्यक्रतुके साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे लोग फल तोड़नेके लिये एक ढालसे दूसरो ढाल-पर जाते हैं, वैसे ही यजमान, अग्निके यज्ञको अवश्य फल-दाता समझकर, एकके अनन्तर दूसरा अनुष्ठान करता है ।

५ जो अंगुलियाँ इस कार्यमें लगी रहती हैं, वे इन नेष्टा अग्निके लिये घेनु-स्वरूप हैं और इनकी सेवा करते हैं तथा आङ्गिर्य हाकर इनके गादपत्य आदि तीन उत्कृष्ट रूपोंको सेवा करते हैं ।

६ जिस समय जूहु मातृ-रूपिणी वेदोके पास अग्निकोके समान घृत-पूर्ण करके रखा जाता है, उस समय जैसे वृद्धिमें यव पुष्ट होता है, वैसे ही अध्वर्युरूप अग्नि भी इष्ट होते हैं ।

७ ये श्रुत्विक्-रूप अग्नि अपने कर्मके लिये श्रुत्विक्का कर्म करते हैं । हम भी, उसके अनन्तर ही, स्तोम, यज्ञ और हव्य प्रदान करेंगे ।

८ अग्नि, तुम्हारी माहिमा जाननेवाला यजमान जैसे सारे देवोंकी भकी भाँति वृत्ति कर सके, वैसे करो । हम जिस यज्ञका करेंगे, वह भी, अग्नि, तुम्हारा ही है ।

१ अग्नि, तुम मेरो इस समिधा और आहुतिका उपभोग करो; मेरी यह स्तुति छनो ।

अयाते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥२॥
 रधं त्वा गीर्मिर्गवणसन्द्रविणस्यु द्रविणोदः । सपयम सपर्यवः ॥३॥
 स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुशवन् । युयोध्यस्मद्वे षांसि ॥४॥
 स नो वृष्टिं दिवस्पति स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥
 ईलाना यावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरागहि ॥६॥
 अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाज्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥
 सविद्धां आच पिप्रयो यक्षि श्रित्व आनुपक् । आचास्मिन्सत्सि बर्हिषि ॥८॥



● सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्नेद्यं मन्तमाभर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥
 मानो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्पितस्या उत्तद्विषः ॥२॥
 विश्वा उत स्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥

२ अग्नि, इस इस आहुतिके द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे । वसुपुत्र, विस्तीर्ण-यज्ञशाली और सुजन्मा अग्नि, इस स्तुतिसे तुम्हें हम प्रसन्न करेंगे ।

३ वनद अग्नि, तुम स्तुतिके योग्य और यज्ञके अभिलाषी हो । हम तुम्हारे सेवक हैं । स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे ।

४ अग्नि, तुम धनवान्, विद्वान् और धनद हो । ठठो और हमारे शत्रुओंको दूर करो ।

५ वही अग्नि, हमारे लिये, अन्तरीक्षसे वृष्टि प्रदान करते हैं । वे हमें सहान् बल और अनन्त प्रकारके अन्न दें ।

६ तत्कृतम देव-दूत, अतिशय यजनीय अग्नि, मैंने तुम्हारी स्तुति की है; इस लिये आओ । मैं तुम्हारा पूजक हूँ और तुम्हारा प्रभव चाहता हूँ ।

७ मेधावी अग्नि, तुम मनुष्योंके हृदयको पहचानते हो; तुम उभयरूप जन्म जानते हो । तुम संसार और बन्धु-ओंके दूत-रूप हो ।

८ अग्नि, तुम विद्वान् हो । हमारी मनाःकामना पूर्ण करो । तुम चैतन्यवाले हो । यथाक्रम तुम देवोंका यज्ञ करा और कुशके ऊपर बैठो ।

१ हे तत्कृतम, अरण्यकलां और व्यास अग्नि, अतिशय प्रशंसनीय, दीप्तिमान् और बहुजन-वाञ्छित धन ले आओ ।

२ अग्नि, मनुष्यों या देवोंकी शत्रुता हमें पराभूत न करे । हमें दोनों प्रकारके शत्रुओंसे बचाओ ।

३ अग्नि, अलकी धाराकी तरह हम सारे शत्रुओंको स्वयं ही लौच जायेंगे ।

शुचिः पावक वन्धोऽग्रे बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥
 त्वं नो असि भारताग्रे वशाभिरुक्षमिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥
 द्रवणः सर्पिरासुतिः प्रज्ञा हाता वरेण्यः । सदसस्पुत्रो अहुतः ॥६॥

८ सूक्त । अग्नि देवता । गृत्समद् ऋषि । गायत्री अनुष्टुप् छन्द ।
 वाजयन्तिव नू रथान्योगाँ अग्रे रुपस्तुहि । यशस्तमस्य मीह षः ॥१॥
 यः सुनीथोदशुषेजुर्यो जरयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥
 य उश्रिया इमेष्वादाषोषसि प्रशस्यते । यस्य घृतं न मीयते ॥३॥
 आयः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अज्जानो अजरैरभि ॥४॥
 अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधिश्रियो दधे ॥५॥
 अग्रे रिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
 अरिष्यन्तः सचेमह्यभिष्याम पृतन्यतः ॥६॥

४ अग्नि, तुम शुद्ध, पवित्रकर्ता और वन्दनीय हो । घृत द्वारा आहुत होकर तुम अत्यन्त दीप्त हुए हो ।
 ५ भरपूरता अग्नि, तुम हमारे हो । तुम वन्द्या गौ, वृष और गर्भिणी गौ द्वारा आहुत हुए हो ।
 ६ जिनका अन्न समिधा है, जिनमें घृत सिक्त होता है, वही पुरातन, होमनिष्पादक, वरेणीय और बलके पुत्र अग्नि अतीव रमणीय हैं ।

१ हाता, अन्नाभिलाषी, पुरुषकी तरह प्रभूत यशवाले और अभीष्टदाता अग्निके अश्वोंकी स्तुति करो ।
 २ सुनेमा, अजर और मनोहर गतिवाले अग्नि इविशीना यजमानके शत्रु-नाशके लिये आहुत हुए हैं ।
 ३ सुन्दर ज्वालावाले जो अग्नि गृहमें आते हुए दिन-रात स्तुत होते हैं, इनका घृत कभी नहीं क्षीण होता ।
 ४ उमे किरण-रूप सूर्य प्रकाशित होते हैं, विचित्र अग्नि भी अजर शिखाओं द्वारा चारों ओर प्रकाशित होकर घसे हो रश्मियों द्वारा प्रकाशित होते हैं ।

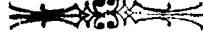
५ शत्रुओंके विनाशक और स्वयं सुशोभित अग्निके लिये सारे ऋह्मन्त्र वर्धित होते हैं । अग्निने सारी शोभाएँ धारण की हैं ।

६ हमने अग्नि, इन्द्र, सोम और अन्य देवोंका प्रभय प्राप्त किया है । हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता । हम शत्रुओंको जीतेंगे ।

पञ्चम अध्याय समाप्त



षष्ठ अध्याय



९ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

नि होता होतृषद्वै विद्वानस्त्वेपो दीदिवी असदत्सुवक्षः ।
 अदध्वप्रतप्रमतिवसिष्ठः सहस्रं भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥
 त्वं दूतस्त्वमुनः पररूपास्त्वं वस्य आवृषभ प्रणेता ।
 अग्ने तोकस्यनस्तनेतनूनामप्रयुच्छन्दीधद्वोधि गोपाः ॥२॥
 विधेम ते परमे जन्मन्मग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
 यस्माद्योनेरुदारिथायजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥
 अग्ने यजस्व हविषा यजीयाऽष्टु ष्टी देष्णममिगुणीहि राधः ।
 त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥
 वमयन्ते न क्षीयते वसव्यं विवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
 कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पति स्वपत्यस्य राधः ॥५॥
 सेनानी केन सुविद्वो अरुमे यष्टा देवा आयजिष्ठः स्वस्ति ।
 अदध्वो गोपा उत नः पररूपा अग्ने द्युमदुतरेवद्विदीहि ॥६॥



१ अग्नि देवोंके होता, विद्वान्, प्रज्वलित, दीप्तिमान्, प्रकण्ठबल-वाली, अप्रतिहत, अनुग्रह-विशिष्ट, निवास-वाला, सबके भरणकर्ता और विबुद्ध विद्यावाले हैं। होताके भवनमें अग्नि अच्छी तरह बैठे।

२ अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम हमारे दूत बनो। हमें आपहुंसे बचाओ। हमारे पास धन हो। प्रमाद-रूप्य और शीघ्रिवाली होकर हमारे और हमारे पुत्रोंके रक्षक बनो। अग्नि, जागो।

३ अग्नि, हम तुम्हारे उत्तम जन्मस्थानमें तुम्हारी सेवा करेंगे। जिस स्थानसे तुम उदगात हुए हो, उसकी भी पूजा करेंगे। वहाँ तुम्हारे प्रज्वलित होनेपर अश्वयुं कोश तुम्हें कल्प कर इष्य प्रदान करते हैं।

४ अग्नि देव, याज्ञिकोंमें तुम अष्ट हो। इष्य द्वारा तुम यज्ञ करो। तत्पर होकर तुम देवोंके पास हमारे दिये जाने योग्य अन्नकी प्रशंसा करो। तुम धनोंमें उत्कृष्ट धनके अधिपति हो। तुम हमारे प्रदीप्त स्तोत्रको जानो।

५ वृषांभोय अग्नि, तुम प्रतिदिन उत्पन्न होते हो। तुम्हारा दिव्य और पार्थिव धन नष्ट नहीं होता। यज्ञताः तुम स्तोत्रकर्ता यजमानको अन्न-युक्त करो। उसे सुन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बनाओ।

६ अग्निदेव, तुम अपने दलके साथ हमारे प्रति अनुग्रह करो। तुम दोनोंके याज्ञक, सर्वापेक्षा उत्तम यज्ञ-कर्ता, देवोंके रक्षक और हमारे पालक हो। कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता। धन और कान्तिसे युक्त होकर तुम चारों ओर देवीप्यमान बनो।

१० सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

जोहृत्रो अग्निः प्रथमः पितेवैलरूपे मनुषा यत् समिद्धः ।
 श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्त्यजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥
 श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
 श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृवः ॥२॥
 उत्तानायामजनयन्त्सुपूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
 शिरिणायां चिक्षुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥
 जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
 पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यन्विष्टमन्त्रे रभसं दूशानम् ॥४॥
 आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुपेन ।
 मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥५॥
 ज्ञेया भागं सहसानो घरेण त्वा दूतासो मनुवद्वदेम ।
 अनूनमग्नि जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥

१ अग्नि सबसे प्रथम होतव्य और पिताके समान हैं । अग्नि मनुष्यों द्वारा यज्ञ-स्थानमें प्रज्वलित हुए हैं । वह दीप्ति-पूर्ण, मरण-रहित, विभिन्न-प्रज्ञा-युक्त, अन्नवान्, बलवान् और सबके सेवनीय हैं ।

२ अमर, विशिष्ट प्रज्ञावाले, विचित्र दीप्ति-युक्त अग्नि मेरे सब स्तुति-युक्त आह्वान सुनें । दो काल चोढ़े अग्निका रथ वहन करते हैं । वह विविध स्थानोंमें जाते हैं ।

३ अन्वयुं लोगोंने ऊर्ध्वमुख अरणि या काष्ठमें प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया है । अग्नि विविध ओषधियोंमें, गर्भरूपसे, अवस्थित हैं । रातमें उत्तम-ज्ञानवान् अग्नि, महादीप्ति-युक्त होकर, वास करते हैं । उन्हें अन्वकार नहीं क्षिपा सकता ।

४ सारे भुवनोंके अधिष्ठाता, महान्, सर्वत्रगामी, शरीरवान्, प्रबुद्ध हव्य द्वारा व्याप्त, बलवान् और सबके हव्य-मान अधिष्ठाता हम हव्य-घृतके द्वारा पूजा करते हैं ।

५ सर्वव्यापी और यज्ञके अभिमुख आनेकी इच्छा करते हुए अग्निको घृत द्वारा हम सिक्त करते हैं । वह, शान्त चिक्षते, इस घृतको ग्रहण करें । मनुष्योंके भजनीय और श्लाघनीय वर्णवाले अग्निके पूर्ण प्रज्वलित होनेपर उन्हें कोई ह्म नहीं सकता ।

६ अपने तेजोबलसे शत्रुओंको पराजित करनेके समय, हे अग्नि, तুম हमारी सम्भोग-योग्य स्तुतिको जानो । तुम्हारा आश्रय पाकर हम मनुष्योंकी तरह स्तोत्र करते हैं । उन बहुल-मधुस्पर्शी और धन-प्रद अग्निका जुहू और स्तुति द्वारा मैं आह्वान करता हूँ ।

११ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिपयः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
 इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥
 सूजो महीरिन्द्र या अपिग्धः परिष्ठिता वहिना शूर पूर्वाः ।
 अमर्त्यं चिदाक्षं मन्यमानमवामिनदुक्त्यैर्वावृधानः ॥२॥
 उक्त्येष्विन्द्र शूर येषु चाकन्तुतोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
 तुम्येदेता यासु मन्दसानः प्रवायवे सिन्धते न शुभ्राः ॥३॥
 शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाहोर्वधानाः ।
 शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मेदासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥
 गुहाहितं गुह्यं गूढमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
 उतो अपो द्यां तस्तम्बांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥
 स्तवानुत इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूनना कृतानि ।
 स्तवावज्रं बाहोःशन्तं स्तवाहरी सूर्यस्य केतू ॥६॥
 हरो नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चतुं स्वारमस्वाष्टीम् ।
 वि समना भूमिरप्रधिष्ठारंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

१ इन्द्र, तुम मेरी स्तुति सुनो । तिरस्कार नहीं करना । हम तुम्हारे घन-दानके पात्र हैं । नदीकी तरह प्रवाहशाली यह इन्द्र यज्ञमानके किये धनेचक्रा करता है । यह तुम्हें वर्द्धित करे ।

२ शूर इन्द्र, तुमने जो जल बरसाया था, वृत्रने उसी प्रभूत जलपर आक्रमण किया था । तुमने उस जलको छोड़ दिया था । उस वसु या दास (वृत्र) ने अपनेको अमर समझा था । स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर इसको तुमने नीचे पटक दिया ।

३ शूर इन्द्र, जिस छलकर या रुद्रकृत् शूडमंत्र और स्तोत्रकी तुम इच्छा करते हो और जिसमें तुम्हें आनन्द मिलता है, वह सब शुभ्र और दीप्यमान स्तुति, यज्ञके प्रति, तुम्हारे लिये प्रसृत होती है ।

४ इन्द्र, स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारा छलकर बल वर्द्धित करने तथा तुम्हारे हाथोंमें दीप्त वज्र अर्पण करते हैं । वर्द्धित और तेजोयुक्त होकर तुम दास लोगोंको, सूर्य-रूप आयुध द्वारा, पराभूत करते हो ।

५ शूर इन्द्र, गुह्यमें अवस्थित, अप्रकाश्य, लुक्कायित, विरहित और जकमें अवस्थित जिस वृत्र (अङ्घ्रि)ने अपनी शक्तिसे अन्तरीक्ष और पृथ्वीको विस्मित किया था, उसको वज्र द्वारा तुमने विनष्ट किया था ।

६ इन्द्र, हम तुम्हारी प्राचीन महत्कीर्तियोंको स्तुति करते हैं तथा तुम्हारे आधुनिक कृतकर्मोंकी स्तुति करते हैं । तुम्हारे दोनों हाथोंमें दीप्यमान वज्रकी स्तुति करते हैं । तुम सूर्यात्मा हो । तुम्हारे पताका-स्वरूप हरि नामके अश्वोंको हम स्तुति करते हैं ।

७ इन्द्र, तुम्हारे शीघ्रगामी दोनों घोड़ जलवर्षी मेघचरिण करते हैं । समतल पृथिवी मेघ-गर्जन सुनकर प्रसन्न हुई । मेघने भी, इधर-उधर, घूमकर शोभा प्राप्त की ।

नि पर्वतः साधप्रगुच्छन्तसं मानृगिषां वशानां अकान ।
 दूरे परिवाणी वधयन्त इन्द्र पितां धमन्ति पप्रथन्ति ॥८॥
 इन्द्रो महा सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्ति ।
 अरोजतां रोदसी मियानेकनिकदतां वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥
 अरोरवीवृष्णो अस्य वज्रो मानुषं यग्मानुषो निज्वात् ।
 नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्यपिवात्सुतस्य ॥१०॥
 पिबापिवेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
 पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्या सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥
 त्वे इन्द्राप्यभुम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
 अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सगस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥
 स्यामतेत इन्द्र येत ऊती अवस्यन्त ऊजं वर्धयन्तः ।
 शुष्मन्तमं यं चाकनाम देवास्म रायिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥
 रासि क्षयं रासि मित्रमस्म रासिशय इन्द्र मीरन्तं नः ।
 सजोषसा ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

८ प्रमाद-गुन्य मेघ अन्तरीक्षमें आया और मातृ-भूत जलके साथ इधर-उधर घूमने लगा । मस्तोनि अत्यन्त दूर अन्तरीक्षमें अवस्थित शब्दों को वदित करने हुए इन्द्र द्वारा प्रेषित उप शब्दों को चारों ओर फैला दिया ।

९ वही इन्द्रने इधर-उधर संचारी मेघोंमें अवस्थित मायावी वृत्रको मार गिराया । जलवर्षक इन्द्रके वज्रके व्यापक शब्दमें भय पाकर आवापथिही कम्पित हुई ।

१० जिस समय मनुष्योंके हितकारो इन्द्रने मनुष्योंके वृत्र वृत्रके विनाशकी इच्छा की थी, उस समय अभीष्ट-वर्षक इन्द्रका वज्र बार-बार गर्जन करने लगा । इन्द्रने अदिभुत सोमदान करके मायावी दानवकी मारी मायाको निपातित कर दिया था ।

११ इन्द्र, तुम अभिपुत सोमदान करो । अर्द्धांश स्तोत्रम् तुम्हें आसीदित करें । सोमरस तुम्हारे उदरकी पूर्ति करके तुम्हें प्रसन्न करे । इस प्रकार वर पुरुष सोमरस इन्द्रका गणने रहे ।

१२ इन्द्र हम मेघावी है । हम तुम्हारे अन्तरा अन्तरा पावना । क्रमफलकी कामनामें हम तुम्हारी सेवा करके यज्ञ करेंगे । तुम्हारा आश्रय पानेकी इच्छामें हम तुम्हारी प्रशंसाका ध्यान करते हैं, ताकि हम इसी क्षण तुम्हारे वन-दानका प्राप्त हो सकें ।

१३ इन्द्र, तुम्हारे आश्रय-लाभकी इच्छामें जा तुम्हारा दन्त वर्द्धित करते हैं, हम भी उन्हींकी तरह तुम्हारे आश्रित हो जायें । अतिमान् इन्द्र, हम जिस जनकी इच्छा करते हैं, तुम हमें सर्वोपेक्षा बलवान् और वीर-पुत्र-पुत्र नहीं बन दो ।

१४ इन्द्र तुम हमें गृह दो, वन्य दो और महापुरुषोंकी तरह वीर्य दो, प्रसन्न-चित्त वायुगज असीव आनन्दित होकर आगे लाया हुआ सोम दान करें ।

यथा चक्षुषेभ्यु मन्त्रसाधस्तृणसामं । वहि दद्याद्विन्द्र ।
 अस्मान्तस्तु पृत्स्वातरुवावधया धां वृद्धिर्गर्गः ॥१५॥
 वृहन्त इन्नु ये ते तरुवावधेभिर्वा सुम्नमाविवासान ।
 स्तृणानासो बहिः पस्त्यावस्वोत । इन्द्रि वाजमग्मन ॥१६॥
 उग्रं ध्विन्नु शूरा मन्दसानस्त्रिकदूकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
 प्रबोधुवच्छ्रम श्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥
 धिष्वाशवः शूरा येन वृत्रमवाभिनदानुमीणवाभम् ।
 अपावृणोऽर्थ्येतिरायाय निसव्यतः साहि दस्युरिन्द्र ॥१८॥
 सनेम येत ऊत्तिमिस्तरन्तो विश्वाः स्पृष आर्यण दस्यन् ।
 अस्मभ्यं नस्वाष्टं विश्वरूपमरुधयः साक्यस्य त्रिनाय ॥१९॥
 अस्यसुवानस्य मन्विनस्त्रितस्य न्यवृद्धं वावृषानो अस्तः ।
 अवतयत् सूर्यो न चक्रं भिनन्नलभिनदो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥
 नूनं सा ते प्रति वरं ऊरित्रं दुहोयान्द्र वक्षिणा मघोतो ।
 शिखास्तोतृभ्या मातिभ्यमगा नो वृद्धदेम विदध सुवागः ॥२१॥



१५ इन्द्र, जिन मन्त्रोंके महायक होनेपर तुम दृष्ट होते हो, वे शीघ्र सोम पान करें। तुम भी अपनेको दृढ़ करके दृष्टिकर सोम पान करो। शत्रुनाशक इन्द्र, बलवान् और पूजनीय सर्वोंके साथ तुम युद्धमें हमें वर्द्धित करो—बल्लोकको भी वर्द्धित करो।

१६ अग्निहोत्रिदारक इन्द्र, तुम सुख-प्रद हो। जो पुरुष उससे दुरार तुम्हारी सेवा करता है, वह शीघ्र ही महान् हो जाता है। जो कुछ विकार तुम्हारी सेवा करता है, वह तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर गृहके साथ अन्न प्राप्त करते हैं।

१७ शूर इन्द्र, तुम सब शत्रु, दिव्य-वस्त्रों से अत्यन्त सुसज्जित होकर आओ। अन्तर प्रसन्न होकर और अपनी दाढ़ी-मूँहमें लगे आभूषणों से सुसज्जित होकर आओ।

१८ इन्द्र, जिस कलकल करने सुनने बलवान् जो वृद्धि करने में कामना में कामना लगे विनष्ट किया था, वही बल धारण करो। आर्यके लिये हमने लज्जा दी। जो शत्रु तुम्हारे आगे है।

१९ इन्द्र, जिन लोगोंने मन्त्रोंके आश्रय प्राप्त करने लगे शत्रु, शत्रुओं पर अतिक्रम किया है और आश्रय-भाव द्वारा इस्युका अतिक्रम किया है, हम सबको अस्त्रों से तुम्हारे शिखा-जम्बु-जोड़े-नदोंके पुत्र विवरूपका बध किया है। हमारे लिये भी दत्ता हो करा।

२० इन दृष्ट और धनवान् शूर दुरार, वधो शीघ्र उद्भव अवदध, अत्यन्त शक्तिशाली था। जैसे सूर्य-चक्र चलाते हैं, वैसे ही इन्द्रने अङ्गिरा लायिका सहायता प्राप्त करके वज्रका प्रयोग था और बलका विनष्ट किया था।

२१ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती वक्षिणा स्तनानाका मन्तर परा कला है, उसे हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें ओषध और विसीका भी नही देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस पदमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

१२ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
 यस्य शुष्माद्रोदसी अम्पसेतां नृणस्य महा स जनास इन्द्रः ॥१॥
 यः पृथिवीं व्यथमानामदृहयः पर्येतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।
 यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥
 यो हत्वाहिमणिषात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपथा बलस्य ।
 यो अश्मनोरन्तर्गन्नि जज्जान संवृक्समस्तु स जनास इन्द्रः ॥३॥
 येनेमा विश्वा ऋक्ना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
 श्वघ्नोष यो जिगीवाँलक्षमाद्दर्यः पुष्टानि स जानस इन्द्रः ॥४॥
 यं स्मा पृच्छन्ति कुह मेति घोरमुनेमह्वानयो अस्तीत्येनम् ।
 सो अयः पुष्ट्याविज्जिवा मिनाति श्रद्धस्मं धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥
 या रघस्य लोदिता यः कुशम्य यो व्रज्जणां नाधमानस्य कीरेः ।
 युक्त प्रावणां योविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

१ मनुष्यो या असुरो, जो प्रकाशित है, जिन्होंने जन्मके साथ ही देवीमें प्रधान और मनुष्योंमें अग्रणी होकर वारकर्म द्वारा सारे देवीको विभूषित किया था, जिनके शरीर-वस्त्रों धावापूविवा भीत हुई थी और जो महती सेनाके नायक थे, वही इन्द्र है ।

२ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने व्यापित पृथिवीको दृढ़ किया है, जिन्होंने प्रक्षिप्त पर्येतोंको निश्चिन्त किया है जिन्होंने प्रकाशित अन्तरीयक प्रताप है और जिन्होंने शूलोकाका स्तम्भ किया है, वही इन्द्र है ।

३ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वृत्रका विनशु करके आस नदियोंका पलायन किया है, जिन्होंने बल असुर द्वारा शकी हुई गायोंका उद्धार किया था, जो ही मेषोंके बीचमें शत्रुको हनपन्न करने हैं और जो समर-भूमिमें शत्रुओंका नाश करते हैं, वही इन्द्र है ।

४ मनुष्यो या असुरो, जिनके निम्न-१ विममे अन्तरिक्ष में है, जिन्होंने दासोंका निकृष्ट और गृह स्थानमें स्थापित किया है, जो लज्जित जीत कर व्यापक नरट शत्रु सारे धनका ग्रहण करते हैं, वही इन्द्र है ।

५ मनुष्यो या असुरो, जिनमें देवोंके सम्बन्धमें योग निरालसा करने हैं वह कहाँ हैं ? जिनके विषयमें लोग शोकते हैं कि, वह नहीं है और जो शासककी तरह शत्रुओंका सारा धन, विनष्ट करते हैं, विश्वास करो, वही इन्द्र है ।

६ मनुष्यो या असुरो, जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं जो दूरिद याचक और लोभियोंको धन देते हैं और जो शोभन हनु या केहुनीवाले होकर सोमाभिषेक-कला और हाथोंमें पस्करवाले यजमानके रक्षक हैं, वही इन्द्र है ।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
 यः सूर्यं य उपसं जजाल या अपां नेता स जाता स जनास इन्द्रः ॥७॥
 यं क्रन्दसी संयती विह्वयेत पर्वत उभया आमवाः ।
 समानं विद्रुपमातस्थिवांसो नाना ह्वेते स जनास इन्द्रः ॥८॥
 यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवरे ह्वन्ते ।
 यो विप्रस्य प्रतिमानं वभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥
 यः शश्वतो मघ्न नो दधानानमन्यमानाञ्छवा जघान ।
 या शयने नानुददाति श्रुध्यां यो दस्योहन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥
 यः शम्बर पर्वतेषु क्षियन्तं नस्वारिंशं शरयन्वविन्दत् ।
 ओजायमानं यो अहि जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥
 यः सप्तर्षिभर्तृषमस्तुविष्मानवासृजत् सतत्रे सप्तसिन्धून् ।
 यो रोहिणमरुफ्रतज्जवाहुर्गामरोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥
 द्यावा विदस्म पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
 यः सोमपा भिनितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

७ मनुष्यो या असुरा, सोम, गाव, ग्राम और विश्व जिनकी आज्ञाके आधीन हैं, जो सूर्य और अपाको उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रगट करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

८ मनुष्यो या असुरा, जो नेतात्, परापर मिलनेपर, जिन्हें दुलाते हैं, उत्तम-अधम दोनों प्रकारके शत्रु जिन्हें वधते हैं और एक ही तरहके रथोंपर सौ द्रुप दो मनुष्य जिन्हें नाना प्रकारसे वधते हैं, वही इन्द्र हैं ।

९ मनुष्यो या असुरा जिनके न रहनेसे कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकालमें, रक्षाके लिये, जिन्हें लोग बुलाते हैं, जो सारे संसारके प्रतिनिधि हैं और जो अथराहत पर्वतादिका भी नष्ट करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

१० मनुष्यो या असुरा, जिन्होंने वज्र द्वारा अनेक महापापी अपूजकोंका विनाश किया है, जो गवेंकारी मनुष्य को सिद्धि प्रदान करते हैं और जो दस्युओंके इन्ता हैं, वही इन्द्र हैं ।

११ मनुष्यो या असुरा, जिन्होंने पर्वतमें द्विषे शम्बर असुरको चालीस वर्ष शोषकर प्राप्त किया था और जिन्होंने बल प्रकाशक अहि नामके सागे द्रुप पर्वतका विनाश किया था, वही इन्द्र हैं ।

१२ मनुष्यो या असुरा, जो सप्त उष या उनाद, शम्बर, विप्र, सह, पूर्ण, स्वाधि, गृहमेध आदि सात रश्मियों वाले, अभीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नालवायु अर्थात्तः किया है और जिन्होंने वज्र-बाहु होकर स्वर्ग जानेको तयार रोहिणको विजय दिया था, वही इन्द्र हैं ।

१३ मनुष्यो या असुरा, जो सोमपान करनेवाले, वज्र-बाहु और वज्रयुक्त हैं, वही इन्द्र हैं ।

यः सुखदामननि यः पञ्चनं यः शंसन्नं यः शमशानमूनी ।
यस्य व्रतावधनं यस्य मोमो यस्येदं राघः स जनास इन्द्रः ॥१४॥
यः सुखते पञ्चते दुष्ट आचिञ्जितं दर्शय स किन्नासि सत्यः ।
वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथ्मावदेम ॥१५॥

१३ सूक्त । इन्द्र देवता । विश्वः अति जगती छन्दः ।
 अनुजनित्री तस्या अष्टम्या गच्छ जात आ विश्वानु वर्धते ।
 तदाहता अभवत् पिप्युपी पर्योशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥
 सध्रीमायन्ति परि विभ्रतीः पयो विश्वस्स्याय प्रभगन्त भोजनम् ।
 समानो रुध्वा प्रवता मनुष्यदे यस्ताऋणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥
 अन्येका ववति यद्वाति तद्रूपा मिनन्तत्पा एक ईयते ।
 विश्वा एकस्य विजुदस्मिन्तिक्षते यस्ताऋणाः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥
 प्रजास्यः पुष्टि विभजन्त आरुते रयिमिव पुष्टं प्रभवन्कमायते ।
 अस्तिवःदंष्ट्रेः पितृनि भोजनं यस्ताऋणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

१४ मनुष्यों, जो कोशामिका तथा चण्डालों की रक्षा करने के लिये प्रोत्साहित करि पुरातनकाल, सांगता और क्षत्रि-
पाठक यज्ञमानकी रक्षा करने के लिये चित्तों बद्ध होय, यथा वे ही कृत्य करण के लिये इच्छते हैं ।

१५ हस्त, दुर्घट होकर स्त्रीमात्रावस्था में आता है क्योंकि अश्वत्थ का अन्न प्रदान करते हैं, इसलिये सुन्हीं मृत्यु हो । इस प्रिय और वीर पुत्र, पौत्र आदिये दुष्ट होकर निरकालतक तन्महि स्त्रोत्रका पाठ करते ;

१ वर्षा ऋतु सोमकी जाता है। उत्पन्न होकर सोम जलमें बढ़ता है; इसलिये उसीमें प्रवेश करता है। जो सोम-लता जलकी सार-भूत होकर वृद्धि प्राप्त होती है, वह अभिवर्तक उपयुक्त है। उसी सोमलताका पीपूष इन्द्रका द्रव्य है।

२ परम्पर मिली हुई शहक-वाहिनी नदियाँ खारा और बहा रही हैं और साथे जलोत्पन्न अथवा समुद्रको भोजन प्रदान करती हैं। निम्नगामी जनका गन्तव्य हमें सूचित है। हमें, हमने पहले ये सब काम किये हैं, इसलिये हम स्तुति-योग्य हों।

इ एक यजमान जो दान करता है, दूसरा यजमान समुद्र पर करता है। एक जल पशुहिंसा करके, हिंसाकर्ता बनकर, जाता है, दूसरा स्वर्ग पर उड़ता है। यजमान कहता है, 'मैं जल पशु पर दान करता हूँ, इसलिये तुम स्तुति-पात्र हो।'

४ इन्द्र, जैसे गृहस्थ लोग आगत्य भूमिभित्तये प्रजापतिं वन्द्यते, वैसे ही समस्तान् दिया धन प्रजापतिमें विभक्त होकर रहता है। लोग पिता द्वारा दिया जायज्य दत्तवैति भवति इति इन्द्रः स्वमे पहले से सब कार्य किये हैं; इसलिये स्तुति-योग्य हो।

अथाकृणोः पृथिवीं सद्रूशे दिवे यो धीर्मानामहिहन्तारिणक् पथः ।
 तं स्वा स्तोमेभिरुद्भिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्मास्युक्थयः ॥५॥
 यो भोजनं च दयमे च वर्धनमाद्राद्दुष्कं सधुमदुक्तुहिय ।
 सशेवधि नि दधियं विनस्वति विश्वरूपैक ईशियं सास्युक्थयः ॥६॥
 यः पुष्पिणीश्च प्रसूश्च धर्मणाधिदाने व्यवनारधारयः ।
 यश्चासमा अजनां दिव्यतो दिव उरुर्वी अमितः सास्युक्थयः ॥७॥
 यो नाम्मरं सहवसुं निहन्तव पृथाय च दासधेसाय चायहः ।
 ऊर्जयस्तया कपरिविष्टमास्यमुतेवाय पुरुकृत् सास्युक्थयः ॥८॥
 शत वा यस्य दशमाकमाद्य एकस्य श्रुधौ यत्त चोदमानिय ।
 या जी दस्युन्समुनद्धभीतये सुप्रान्यो अभवः सास्युक्थयः ॥९॥
 निश्वेदनु रोधना अस्य योम्यं ददुस्मिं दधिये कृतवे धनम् ।
 पलम्नस्मा विन्तिरः यजसन्तशः परि परो अभवः सास्युक्थयः ॥१०॥
 सप्रवाचनं तव नौर मार्यं यदेकेन कनूना विन्दमे वसु ।
 ज्ञानप्रियस्य प्र तयः सहस्रवर्षो एव नवर्षं सेन्द्र विश्वास्युक्थयः ॥११॥

५ इन्द्र, तुमने आकाशक लिए पृथिवीको इजानीय किया है । तुमने प्रवाहित नदियोंका मार्ग गमन-योग्य किया है । जूत-इन्द्रा इन्द्र, उस जन्मे द्वारा भावको तुम दाने हो, तैमे ही स्तोमा लोग स्तोत्र द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं ।

६ इन्द्र, तुम भोजन और वर्धमान बन रहे हो और मात्रे दासकने शुक्ल और मधुर रसवाले शस्य आदिका रोहन करते हो । मेवक यत्मानका तुम प्रन देने हो । नोमारमें तुम अजनीय हो । इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो ।

७ इन्द्र, कम द्वारा तुमने वेजों कुल और कलवाली ओषधियोंका रक्षा की है । प्रकाशमान सूर्यकी नाना प्रकारकी ज्योति उत्पन्न की है । तुमने महान् होकर आरो और महान् प्राणियोंको उत्पन्न किया है । तुम स्तुति-पात्र हो ।

८ बहु-कर्म-कर्ता इन्द्र, तुमने इज्यप्राप्त और दासोंके विनाशके उद्देश्यसे नारिके पुत्र सहवसुका विनाश करने के लिये बलवती वज्रधाराका निर्मित मुख-प्रदेश इसको दिया था । तुम स्तुति-योग्य हो ।

९ इन्द्र, तुम एक हो । तुम्हारे सुखके लिये दस सौ घोड़े हैं : तुमने दीर्घायु क्षत्रिक लिये रज्जुबद्ध दस्युओंका विनाश किया था । तुम सबके प्राप्य हो : इमालिये स्तुति योग्य हो ।

१० सारी नदियाँ इन्द्रकी शक्तिका अनुवर्तन करती हैं । यजमान लोग इन्द्रका अन्न प्रदान करने हैं और सब लोग कर्मकर्ता इन्द्रके लिये घन धारण करते हैं । तुमने विशाल वा, पृथ्वी, दिन-रात्रि, जल और ओषधि नामके ऋ स्थानोंको निश्चित किया है । पंचजनके पालक हो । इन्द्र, तुम सबके स्तुति-पात्र हो ।

११ तुम्हारा वीर्य सबके लिये उलाचनीय है । तुमने एक कर्म द्वारा शत्रुओंका घन प्राप्त किया है । तुमने बलिष्ठ जातिधरको अन्न दिया है । चूँकि वह सब कार्य तुमने किये हैं, इमालिये तुम सबके स्तुति-पात्र हो ।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये न वयपाय च धृतिम् ।
 नान्ना सन्तमुदनयः पराधृज प्रान्त्रं श्रोणं श्रवयन्त् रक्षयुक्थ्यः ॥१२॥
 अस्मभ्यं तद्रसा दानाय राधः समर्थयन् बहु ते पुरुषम् ।
 इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनुद्युन्वृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥१३॥

१४ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चतामद्यमन्त्रः ।
 कामा हि वीरः सद्धमस्य पीतं जुहोत वृष्णं तदिदं वष्टि ॥१॥
 अध्वर्यवो यो अपो त्रिविधांसं वृषं जघामाशन्येव वृक्षम् ।
 तस्मा एतं भरत तद्रशाय ण्य इन्द्रो अर्हति पीमिमस्य ॥२॥
 अध्वर्यवो यो हवींश्च जघाम यो गा उदाजदप वि अर्हति ॥३॥
 तस्मा एतमन्त्रिक्षे न वासमिन्द्रं सोमेरोणं न जुने पश्ये ॥४॥
 अध्वर्यवो य उरणं जघान नव स्रग्धवांसं नवानं च पाह्नव ।
 यो अबुद्धमवनीचा पयाधे तमिन्द्रं सोमस्य भुवि दिहोत ॥५॥

१२ इन्द्र, सरपसासे। प्रवाइशाल जलके पर जलके लिये सुमम सुवीर न पति उरुका सारी दे दिया था । सुमने अन्ध और पङ्गु, पराधृजको हलके उदार करके राधको को लक्ष्य को प्रवाया है । इसलिये सुम स्तुति-योग्य हो ।

१३ निवास-दाहा इन्द्र, हम जगत् के लिये यो सोम मन्त्रों को प्रवाया है । यो प्रवाया है । इसलिये सोम स्तुति-योग्य हो ।
 हम प्रतिदिन इस घनके सोमको उच्छेद करने हैं । इस उच्छेद (उच्छेद) करने इस यज्ञमें प्रभुत्व स्थापना का पाठ करेगा ।

१ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सोम के आवा । सोमको इस अधिक अन्त आश्रमे फेंको । वीर इन्द्र सदा सोमपानके अधिकारी रहने । इस उच्छेदकी इच्छा । इस उच्छेद करने के लिये सोमको उच्छेद करने का पाठ करेगा ।

२ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने जलका वाच्छेद करने का उच्छेद, नदों से उच्छेद करके, विनाश किया है, उच्छेद सोमामन्त्रों इन्द्रके लिये काम के आवा । इन्द्रदेव सोमपानके अधिकारी पात्र है ।

३ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने दानाका उच्छेद किया था, उच्छेद करके अन्ध पङ्गु द्वारा अवश्य गायिका उच्छेद करके इसे विनष्ट किया था, उच्छेद इन्द्रके लिये, जिन वायु अन्तर्द्वारे व्याप्त है, उसे ही, सोमको सर्वत्र व्याप्त करे । जिन जीर्णको वृक्षके द्वारा आच्छादित किया जाता है, उसे ही सोम द्वारा इन्द्रको आच्छादित करे ।

४ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने नवपात्रों वाहु दानाका उच्छेद करने का उच्छेद किया था तथा अबुद्धको अधोमुख करके विनष्ट किया था, सोम सोमर हानिपर उच्छेद इन्द्रको प्रसन्न करे ।

अध्वर्यवो यः स्वश्रं जघान यः शुष्णं शुष्णं यो तस्मात् ।
 यः विप्रं नमुचिं यो रुधिरां तस्मात् शूद्रायान्ध्रयो जुहोत ॥५॥
 अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
 यो वचिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपानपद्भरता सोमतस्मै ॥६॥
 अध्वर्यवो यः शतमासदस्मं भूया दान्ध अजघ्रयान् ।
 कुन्दास्यायोनिभिरा द यो गन्धमृणममरता सोमतस्मै ॥७॥
 अध्वर्यवो यस्तस्य कामयाव्यं अष्टा बह्वर्षी नशथातोमन्द्रं ।
 गमरितपूर्तं भस्त ध्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यता जुहोत ॥८॥
 अध्वर्यवः कर्तव्यं अष्टिमन्त्रे वने विभूतं वन उन्तपध्वम् ।
 जुषाणो हस्त्यमभिवारो य इन्द्राय सोमं मदिनं जहोत ।
 अध्वर्यवः पथसां धर्यथागाः सोमभिरि पृणता भोजमिन्द्रम् ।
 वदामस्य निभृतं म एतद्विस्तन्तं भूया यजतश्चिकेत ॥९॥
 अध्वर्यवो यो दिठ्यस्य दस्यो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
 तमूदरं नपृणता ययेनेन्द्रं खोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥

५ अध्वर्युगण, जिन्हें इन्द्रने भरतनामे लम्बका विनाश किया था, जिन्होंने अष्टापणीय शुष्णको स्कन्धहीन करके सार डाला था, जिन्होंने पयस्य, हसुनि और रुधिरका वा पित्त छिड़ दिया था, इन्द्रों इन्द्रके लिये अन्न प्रदान करो ।

६ अध्वर्युगण, जिन्हें इन्द्रने अमरके मरुत वज्र द्वारा शम्बरकी लड़ाव प्रचान नगरियोंको हिन-भिन्न किया था, जिन्होंने वर्तक का हजार पुर्वीकी भूमिधायी किया था, उन्हें इन्द्रके लिये सोम ले आना ।

७ अध्वर्युगण, जिन्हें यन्तदन्ता इन्द्रने भूमकी गोर्धमे सौ हजार असुरोंको मार गिराया था, जिन्हें इन्द्रने कुन्स, आयु और अतिथिरवके प्रातस्तन्त्रियोंका बध किया था, उनके लिये सोम ले आना ।

८ नेमा अध्वर्युगण, मृग जा चाहते हैं, वह इन्द्रका सोम प्रदान करनेपर सुरत मिल जायगा । पथिख इन्द्रके लिये दम्भ द्वारा शोधित सोम ले आओ । हे यज्ञकण्ठ, इन्द्रके लिये वह प्रदान करो ।

९ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सुखकर सोम तैयार करो । सोम-वस्त्र जलमे शोधित सोम ऊपर ले आओ । इन्द्र प्रान्त होकर तुम्हारे हाथोंमे तैयार किया हुआ सोम चाहते हैं । इन्द्रके लिये तुम लोग मदकारक सोम प्रदान करो ।

१० अध्वर्युगण, गायकी अधोदेह जमे कुरघने पूर्ण रहना है, ऐसे ही इन फल-प्रदाता इन्द्रको सोम द्वारा पूर्ण करो । सोमका गूढ़ स्वभाव मे जानता हूँ । यज्ञनीय इन्द्र सोमप्रद यजमानको अच्छी तरह जानते हैं ।

११ अध्वर्युगण, इन्द्रदेव, स्वर्गी, पृथिवी और अन्तरीक्षके चतुर्के राजा हैं । जमे यव (जौ) मे धान्य रखनेका स्थान पूर्ण किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रका पूर्ण करो । वह कार्य तुम लोगोंके द्वारा पूर्ण हो ।

अस्मभ्यं तदसौ दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र बलिवत्रं अवस्या अनुद्य न्वृहद्वदेम विदधे सुधीराः ॥१५॥

१५ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रधान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
तिकद्र केवपिवन् सुतस्यास्य मदे अदिमिन्द्रो जघान ॥१॥
अवशो द्यामन् भायद्वृहन्तमा रोवसा अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥२॥
सदमेष प्राचो वि मिमाय मानेर्वज्र ण खान्यन्तृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्वीर्ययाथैः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥३॥
स प्रवोहलृन् परिणत्या दभोतिविश्वमधामागुधमिदं अग्नौ ।
सङ्गोभिर्गवैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥४॥

१२ निवास-प्रश्न इन्द्र, हमें भोगों लिये धन प्रदान करो । तुम्हारा वह धन प्रभुत्व, वास-योग्य और शक्तिमान है । हम प्रतिदिन उसी धनको भोग करनेकी इच्छा करते हैं । इस उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभुत्व स्वीकृता पाठ करेंगे ।

१ मैं बलवान् हूँ । मन्व-संक्रान्त इन्द्रकी यथार्थ और महती कर्तारियोंका वर्णन करता हूँ । इन्द्रने त्रिष्टुप् यज्ञमें सोम पान किया है । सोमजन्य प्रसन्नता होनेपर इन्द्रने अहिका बल किया ।

२ आकाशमें इन्द्रने गल्लोकका रोक रखा है । खावापृथिवी और अन्तरीक्षकी अग्नि तेजसे पूर्ण किया है । विस्तीर्ण पृथिवीको धारण किया है और उसे प्रसिद्ध किया है । सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

३ यज्ञ-गुरुकी तरह इन्द्रने माप करके, सारे संसारकी पुराणिमुख करके बनाया है । उन्होंने वज्र द्वारा नदीके निकलनेवाले र्वव जोंकी खोक दिया । उन्होंने अनायास ही वीध कालसक जाने योग्य मार्गोंमें नदियोंको प्रेरित किया था । सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

४ जो अस्त्र दभोति श्रुषिको उनके तगरके बाहर ले जा रहे थे, मार्गमें उपस्थित होकर इन्द्रने उनके सारे आयुर्वीको दीप्यमान अग्निमें दग्ध कर डाला । अनन्तर दभोतिको अनेक मार्ग, बाँड़ और रथ दिये । सोमजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

स ईं महीं धुनिमेतांरम्णान् सो अस्नात् नपाययत् स्वस्ति ।
 त उत्क्राय रयिममि प्रतस्तुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥
 सोदश्वं सिन्धुमरिणान् महित्वा वज्र णान उपसः सार्मपेष ।
 अजवसो जयितीमिवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥
 स विट्वा अपगाहं कनोनामाविर्मक्नुदतिष्ठन् परावृक् ।
 प्रति श्रोणः स्थाद्वघनगन्धत् सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥
 भिनठलमङ्गिरोमिष्ट णानो वि धवतस्य दृढितान्यैरत् ।
 रिणयोर्धोसि कृत्रिमाणयेषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८॥
 स्वप्नेनाभ्युष्या च्मुरिं धुनिं च जघन्य दस्युं प्र दमोतिमायः ।
 रम्भां चिद्व विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥
 नून सा न प्रतित्वरं जग्म्व दुहीषदिन्द्र दक्षिणा मघोना ।
 सिक्षास्तोतृभ्यो मतिधगमगो नो वृहददेम विरथे सुवारा ॥१०॥



५. उन इन्द्रने धुनि, इरावती या पद्मती नामक महानदीको, पार जानके लिये, शान्त किया था। नदीके पार जानेमें असमर्थ लोगोंको पार पद पार किया था। ये नदी पार होकर घनको लप्य करके गये थे। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

६. अपनी महिमामें इन्द्रने सिन्धुको उत्तर-वाहिनी किया है। ये राती सेनाके दुबारा, दुर्बल सेनाको भिन्न करके वज्र द्वारा उषाके रथको चला किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

७. अपने कयाङ्क लिये अन्धा दुई कन्याओंकी अगला जानकर परावृत्त आदि सबके सामने ही बैठकर स्वयं हो गये। पत्नी होनेपर भी कन्याओंके प्रति हीन; वज्रहीन होनेपर भी उन्हें दत्ता, क्योंकि स्तुतिमें प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें पेर-अर्क दे दी था। सोमजन्य हर्ष होनेपर इन्द्रने यह सब किया था।

८. अङ्गिरा लोगोंको स्तुति करनेपर इन्द्रने बलका विदार्ण किया था। पवनक गुह्य द्वारको खोला था। इनकी कृत्रिण एकावटकी भी दृष्टाया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

९. इन्द्र, सुमने च्मुरि और धुनि नामके अश्वोंको, दोष निद्धामें प्रसिद्ध करके, विनष्ट किया था। रम्भाति नामक राजर्षिकी रक्षा की थी। उनके वेत्रधारी दौवारिकने सा शत्रुका द्विषय प्राप्त किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

१०. इन्द्र, सुम्हानी जो घनवती दक्षिणा स्तुतिमें रक्षा गन्तारथ पुग करती है, वहीं दक्षिणा सुम हमें प्रदान करो। सुम भजनीय है, हमें जोड़कर और किसीका नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रोंमें युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभुत्व स्तुति करेंगे।



१६ सूक्तम् । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छंदः ।

प्र वः सतां उपैष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्मरे ।
 इन्द्रमजुयं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥
 यस्मादिन्द्राद्बृहत्तः किञ्चनेमृते विश्वान्बस्मिन्सम्भृताधिधीर्षा ।
 जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते धज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥
 न क्षाणाभ्यां परिभवे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैर्गिन्द्र ते रथः ।
 न ते धज्रमन्वश्रोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥
 विश्वेहास्मै यजताय धृष्णयं क्रतुं भवान्त वृषभाय सश्वते ।
 वृषा यजस्व हविषा विदुष्ट्यः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥
 वृष्णाः कोशः पवते मध्व ऊर्मिवृषभान्नाय वृषभाय पानव ।
 वृषणाऽवर्ष्य वृषभासां अश्वो वृषणं सोमं वृषभ य सुष्वति ॥५॥
 वृषा ते धज्र उत ते वृषा रथा वृषणा हरी वृषभान्यायुधा ।
 वृष्णो मदस्य वृषभत्वमीशिष इन्द्र सोमस्य तृष्णाहि ॥६॥

१ तुम्हारे उपकारके लिये देवोंमें जोष्ठतम इन्द्रके लिये दीप्यमान अग्निमें हम हव्य पदान करते हैं । अनन्तर उनकी मनोहर स्तुति करते हैं । अग्नी रक्षाके लिये वर्यो जग रक्षित, सोम संसारही जग देनेवाले, सोमसिक्त, सनामान और सक्षय-वयस्क इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ विराट् इन्द्रके विना संसार नहीं है । जिन इन्द्रमें लगी शक्तियाँ हैं, वही इन्द्र उद्गर्भमें सोमरस धारण करते हैं । उनके शरीरमें बल और तेज है । उनके हाथमें धज्र और समुद्रमें क्रतु है ।

३ इन्द्र, जब कि तुम शीघ्रतासे अश्वद्वय चढ़कर अनेक योजना जने हो, तब धावापृथ्वी तुम्हारे बलका पराजित नहीं कर सकती । समुद्र और पर्वत तुम्हारा रथका परिसर नहीं कर सकते । कोई भी व्यक्ति तुम्हारे बलका परिसर नहीं कर सकता ।

४ सब लोग यजमंथ, ध्युनाशङ्क, अभीष्टवर्षी और मदः सजित इन्द्रका यज्ञ करते हैं । तुम सोम-दाता और विद्वान हो । इन्द्रके लिये तुम भी यज्ञ करो । इन्द्र, अभीष्टवर्षी और दीप्यमान अग्निके साथ सोम पान करो ।

५ अभीष्टवर्षी और मादक सामास अनुष्ठानाओंके लिये उत्तजक होकर बलप्रद अन्न-विशिष्ट और अभीष्ट-वर्षी इन्द्रके पानके लिये जाता है । सोमरसपद अन्नार्थ और अभीष्टवर्षी अभिषव-पुस्तक अभीष्टवर्षी सोमका, तुम्हारे लिये अभिषवण करते हैं । तुम भी अभीष्टवर्षी हो ।

६ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे वज्र, रथ को न रोक पावे और तुम्हारे सारे हथियार अभीष्टवर्षी हैं । तुम भी मादक और अभीष्टवर्षी सोमके अधिकारी हो । इन्द्र, अभीष्टवर्षी सोमसे तुम भी तृप्त बनो ।

प्र ते नावं न समने वन्स्सुवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधुषिः ॥
 कुर्वन्तां तस्य वन्सो निवाधिषादिन्द्रमुत्सं न धसुनः सिन्वामहे ॥३॥
 पुरा संवाधादन्वावृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्पुषी ।
 सकृन्सुते सुमतिभिः शतक्रतो सम्पत्ताभिनं वृषणो नसीमहि ॥४॥
 नूनं सा ते प्रति वरं जग्ने दुहीषदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
 शिक्षास्मोतुभ्यो मातिधगं भग नो बृहद्वैम विदथे सुधीराः ॥५॥



१७ सूक्त । इन्द्र देवता । । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।
 तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदन्वत शुष्मा यदस्य प्रजयो दोरते ।
 विश्वा यदगोवा सहसा पयोवता मदे सोमस्य दृष्टिनाभ्यंगरत् ॥१॥
 स्व भृतु यो ह प्रथमाय धायस आंजी मिमानो महिमानमातिरत् ।
 शूरो यो युत्स तन्वं परिव्यत शीषेणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्जत ॥२॥
 अधाहणाः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्यागं ब्रह्मणा शुष्ममेव ।
 गोष्ठेन द्यष्टयेन विन्युताः प्रजारायः सिन्वते सध्रयकपृथक् ॥३॥

७ तम शतब्राह्मण ही । तम यज्ञमर्च्ये पातयामिलाकी और नौकाली तरह प्रकाश हो । यज्ञ-कालमें मैं पौष्टिक और गरम दूधके पास जाता हूँ । इन्द्र हमारे इस स्तुतिवाक्यकी अन्तही तरह जानो, हम कुपकी तरह दानाधार इन्द्रको सिक्क करोगे ।

८ जैसे वृत्र खाकर गन्ध पाद वस्त्रको लौटाती है, वैसे ही है इन्द्र हमें आगस्टमें पठने ही लौटा दो । शतक्रतो, "मे पविशौ युवाका व्यापार करोगे हँ, चले हो हम सुन्दर स्मोत्र द्वारा । एक बार तुम्हें व्यापार करोगे ।

९ इन्द्र, सुम्हारी जगं धनदानी दक्षिणा स्नाताक सां मनोय्य प्रशान कातो है, वह दक्षिणा तुम हमें प्रदान करा । तुम मजतीय ह्य । हमें खाएकर अन्नको नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत बनने करोगे ।

१ स्तोत्राभ्यो, तुम लोग अङ्गिरा लोगीकी तरह, सभी भूत द्वारा, इन्द्र की उपासना करो, क्योंकि इन्द्र का स्तोत्रक तेज, पूर्वकालका तरह, बढ़ित होता है । सोमजानित हविर्ह उत्पन्न होनेपर इन्द्र ने वृत्र द्वारा आक्रान्त सारी भेष-मांशका सद्योगतत किया था ।

२ जिन इन्द्रने बलका प्रकाश करने प्रथम सोमपानक लिए अपनी राहिमाकी बढ़ाया है और जिन शत्रुइन्ता इन्द्रने दुर्बलाकमें अपने शरीरको धराभूत रखा था, वे ही इन्द्र प्रसन्न हो । उन्होंने अपनी मांदिमासे अपने मस्तकपर स्तुतिवाक्यी आग किया था ।

३ इन्द्र, तुमने अपना महावाय प्रवट किया है, क्योंकि अग्नि द्वारा प्रसन्न होकर तुमने शत्रु-विनाशक बल प्रका किया है । सुम्हारे रथस्थित हरि नमक अश्वोंक द्वारा, स्वस्थानमें विद्युत् होकर अनिच्छकारी लोगोंमेंसे कुछ दक शीघ्र और कुछ अलग-अलग होकर भाग गये हैं ।

अथा यो विश्वा भुवनाभिमज्जनेशानकृत् प्रथया अभ्यवर्धत ।
 आद्रोदसी ज्योतिषा वहिनरा नोत्सीध्यं तमांसि दुधित्वा समव्ययत् ॥४॥
 सा प्राचीनान् पर्वतान् दृढदंजसाधराचीनमकृणादपामपः ।
 अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तम्नान् मायया ग्रामवन्त्रसः ॥५॥
 सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादाजनुषो वेदसम्परि ।
 येना पृथिव्यां नि क्रिषि शयभ्यै वज्रेण हव्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६॥
 अमाजुर्व पित्रोः सत्वा सतो समानादासदसम्भवामिमे भगम् ।
 कृधि प्रकृतमुप माम्यामर दग्वि भागं तन्वोयेन मामपः ॥७॥
 भोजं त्वामिन्द्र वषं हुवेम ददित्वाभिन्द्रापाणि वाजान् ।
 अविद्वहीन्द्र चित्रयान ऊती कृधि वृषन्तिन्द्र वस्यसो नः ॥८॥
 नूनं सा ते प्रति वरं जग्मिरे दुदोयदिन्द्र दक्षिणा मघोना ।
 शिक्षा स्मोतृभ्यो माति भग भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

—१५४०००—

४ बहुत अन्नवाले इन्द्र अपने बलसे सारे भुवनोको अभिभूत करने और अपनेको सबका अधिपति करने बड़ा ही दृढ़ है । अन्नसे संसारके बाहक इन्द्रने सारे पृथिवीको व्याप्त किया है । इन्द्रने दुग्धित तमोगाशिको चारों ओर फैलते हुए संसारको व्याप्त किया है ।

५ इन्द्रने दुधर-दुधर पुरुषके लिये पर्वतोंको, अपने बलसे, अन्नत्न किया है । पर्वत-अध्वज जलराशिको नीचे गिराया है । उन्होंने संसार-धारयित्री पृथिवीके अपने बलसे धारण किया है । और दुग्ध-बलसे शूलोंको पतलसे बचाया है ।

६ इन्द्र, इस संसारके लिये तैयार हुए हैं । वे सबके रक्षक हैं । उन्होंने सारे जीवोंकी अपेक्षा ब्रह्मरूप ज्ञान-बलसे अपने हाथों संसारको निर्माण किया है । विविध-क्षितिमान् इन्द्रने इस ज्ञानसे क्रिषिको वज्र दुवारा मारते हुए, पृथिवीपर सेटकर रहनेके लिये, विनष्ट किया था ।

७ इन्द्र, जैसे आपसमें पिता-माताके साथ रहनेवाली पुत्री अपने पितृ-कुलमें ही रहनेके लिये प्रार्थना करती हैं, वैसे ही मैं इन्द्रने पालन करनेवाली माता-पिता रहने हुए । इस पालनोत्तम सबके पास प्रकट करो, उस धनको मागो और उसे सम्पादन करो । मैंने शरीरके भोजनसे योग्य धन देा । इस धनसे स्तोताओंको सम्मानित करो ।

८ इन्द्र, तुम पालक हो । इस तुम्हें बुलाने है । तुम कर्म और अन्नके दाता हो । नाना प्रकारसे आश्रय प्रदान कर तुम हमें बचाओ । अभीष्टरूपी इन्द्र, तुम हमें अत्यन्त धनशाली करो ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनयती दक्षिणा स्तोताको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वही दक्षिणा तुम हमें दो । तुम भजनीय हो । हमें छोड़कर अन्य किसीको नहीं देना । हम पुत्र-पौत्रोंसे संयुक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्राता रथो नवो योजि स्मिन्श्चतुर्गुगन्त्रिकशः समरश्मिः ।
 दशारिणो मनुष्यः स्वर्गाः स इष्टिमिमतिभो रंहा भूत् ॥१॥
 सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
 अन्यस्या गभमन्य ऊजनन्त सो अन्येभिः सन्तते जन्त्या वृथा ॥२॥
 हरी नुक्तं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तं न वनसा नधेन ।
 मोषु त्वामत्र बहवो हि विप्रा निरीरमन् यजमानासो अन्ये ॥३॥
 आ त्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहा चतुर्भिरावड्भिह्व यमानः ।
 अष्टाभिर्वशभिः सामपेयमयं सुतः सुमन्त्र मा मृचस्कः ॥४॥
 आ विशत्या त्रिंशता याहाव्रीडा चत्वारिंशता हरिमियुं जानः ।
 आ पञ्चाशता सुरधेभिरिन्द्रा पाठवा समन्या सामपेयम् ॥५॥
 आशीत्या नवत्या याहाव्रीडाशतेन हरिमिरुहमानः ।
 अयं हि ते शुनतोत्रेषु साम इन्द्र त्वाया परिषिक्ता मदाय ॥६॥

१ मनुष्योपदेव और त्रिष्टुप् यज्ञ प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ है । इस यज्ञमें चार पत्थर, तीन प्रकारके स्वर, सप्त प्रकारके छन्द और दस प्रकारके पाय हैं । यः मनुष्योंके लिये हितकर और स्वर्ग-प्रदाता है । यह रानी मनुषि और हाथ आदिके द्वारा समिद्ध होता है ।

२ यह यज्ञ इन इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें गवष्ट हुआ । वह मानवोंके लिये शुभ फल ले आता है । दूसरे भूमिवाक् लोग भी दूसरे प्रसिद्ध वायोंका गले उत्पन्न करते हैं । अमीषट्कर्षी और जयशील पडा अन्य देवोंके साथ मिलित होता है ।

३ इन्द्रके रथमें नये स्तोत्रोंके द्वारा, शीघ्र जानके लिये, हरिनामके अर्घोंका जोड़ा जाता है । इस यज्ञमें अनेक मेघावो स्तोता हैं । दूसरे यजमान लोग दुष्टे ऊपछी तरह तृप्त नहीं कर सकते ।

४ इन्द्र, तुम बुलाये जाकर दो, चार, दस, आठ अथवा दस हरि नामके घोड़ोंके द्वारा सोमपानके दिवे आओ । सोमन घनवासे इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये प्रस्तुत हुआ है । तुम उसे हिसमत नहीं करना ।

५ इन्द्र, तुम उत्तम गतिवाले बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ अथवा सत्तर घोड़ोंके द्वारा हमारे सामने, सोमपानके लिये, आओ ।

६ इन्द्र, अस्सी, सत्तर अथवा सौ अर्घ्योंके द्वारा तुम्हारे सामने आओ; क्योंकि इन्द्र, तुम्हारे लिये, तुम्हारे आनन्दके लिये, पाऊँमें सोम रखा हुआ है ।

मम ब्रह्मेन्द्रयाहच्छा विश्वा हरी भुरि धिष्वा रथस्य ।
 पुरुषा हि विहव्यो बभूयास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७॥
 न म इन्द्रेण सकृद्यं वि योपदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
 उपज्येष्टे वरूथे गमस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः साम ॥८॥
 नूनं सा ते प्रतिवरं जरिष्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
 शिक्षा स्तोतृभ्यो मतिघग भगो नो बृहद्वैम विदथे सुवीराः ॥९॥

१६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
 यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥
 अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोहिमिन्द्रो अर्णो^६ अन्ति विवृश्वत् ।
 प्र यज्ञयो न स्वसराज्यच्छाप्रयांसि च नदीनां सक्रमन्त ॥२॥
 म मादिन इन्द्रो अर्णो अपां पेर्यद्विहाच्छा समुद्रम ।
 अजनयन् सूर्यं चिद्वगा अक्तनादां वयुनां निम्नाभ्यन् ॥३॥

७ इन्द्र, मेरी स्तुतिके सामने आओ । जादुआपी भूतों अर्णोको रखकर जग भागमें संयोजित करो । बहु-
 संख्यक यजमान तुम्हें बुलाते हैं । शूर, दुम इस यज्ञमें हस्त होओ ।

८ इन्द्रके साथ मेरी मैत्री विद्युत न हो । इन्द्रकी यह दक्षिणा हमें अभिरूप फल प्रदान कर । हम इन्द्रके
 प्रहंसनीय और आपबुको इटानेवासे दोनों दायोंके पास अवस्थित करते हैं । प्रत्येक युद्धमें हम विजयी बने ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोत्रोंके मन्त्ररथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें प्रदान करो ।
 तुम भजनीय हो । हमें छोड़कर दूसरेकी दक्षिणा नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१ सोमाभिषेककर्त्ता मनीषी यजमानका मादक अन्न, आनन्दके लिये, इन्द्र भक्षण करें । इस प्राचीन अन्नमें
 वर्द्धमान होकर इन्द्र इसमें निवास करते हैं । इन्द्रके स्तोत्राभिलाषी क्षत्रिवक् भी इसमें निवास कर चुके हैं ।

२ इस मदकर सोममे आनन्द-निमग्न होकर, इन्द्रने दायोंमें वज्र धारण करके, जलके आवरण अहिका
 छेदन किया था । उस समय प्रसन्नता-दायक जल-राशि, जैसे पश्चिमण पुष्करिणीके सामने जाते हैं, वैसे हो,
 समुद्रके सामने जाने लगी ।

३ अहिहन्ता और पृथ्वीय इन्द्रने जल-प्रवाहको समुद्रके सामने प्रेरित किया । इन्द्रोंने समुद्रको उत्पन्न
 करके गायं प्राप्त की तथा तेजोबलमे दिवसोंको प्रकाशित किया ।

सो ऋप्रतीनि मनवे पुरुषीन्द्रः दशहाशुप हन्ति वृत्रम् ।
 मया यो नृमरे अतसाद्योमन् एस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सार्ता ॥४॥
 स सुन्वत इन्द्रः सूर्यम ॥ १ ॥ रिण्डुमन्त्याय स्तवान् ।
 आ यद्रयि गुहदवयमस्य भवदंशं नैतशो दक्षम्यन् ॥५॥
 सगन्धयत् सदिनः सारथ्ये शृणामशुपं कृपयं कृत्वाय ।
 दिवोदासाय नवतिं च ननेन्द्रः पुरो व्यैरच्छस्वरस्य ॥६॥
 एवा न इन्द्रोन्नयमहेम श्रवम्या नमना वाजयन्तः ।
 अश्वाम तन् सासमाशुषाणा ननमो नधरदेवस्य पीयाः ॥७॥
 एवा ते गृत्समदाः शृण मन्मावस्ववो न वयुनानि तक्षुः ।
 ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं मुश्रिणि सुस्रमस्युः ॥८॥
 नूनं सा ते प्रति वरं जग्विं दुरीषदिन्द्र दक्षिणा मघानो ।
 शिश्वास्तोतम्यां मातिधम भगो नो बृहद्वैम विदथे सुवीराः ॥९॥



४ इन्द्रने हन्यदाता मनुष्यको यज्ञमन्त्रों लिये बहुमूल्यक उत्कृष्ट धन दान किया । वृत्रका विनाश किया । सूर्यको पामिके लिये स्तोत्राओं द्वारा वरस्वित होनेपर इन्द्र आश्रवदाता हुए थे ।

५ इन्द्रकी स्तुति करनेपर प्रकाशमान इन्द्र सोमपिपातकतां मनुष्य पत्रशंके लिये सूर्यको लाये थे, क्योंकि जैसे पितृ पुत्रको धन प्रदान करता है, वैसे ही यज्ञकालमें पृथग्ने इन्द्रका प्रवृत्तन और अमूल्य सोम प्रदान दिया था ।

६ अपने सारथि राजपि कृपयके लिये दीप्तियुक्त इन्द्रने शृण अश्व और कृपयको वशीभूत किया था और दिवोदासके लिये शम्भरकी निम्नधानधे नगरोंको भगन किया था ।

७ इन्द्र, अश्वको अभिलाषाने इस तुम्हें बलवान् करके तुम्हारी स्तुति करने हैं । तुम्हें प्राप्त करके हम सप्तपदी मलयताका लाभ करें । देवशुन्य पीयुके विगणमें तुम वज्र पाँकों ।

८ बलिष्ठ इन्द्र, जैसे गमनाभिलषी पथिक मार्ग साफ करता है, वैसे ही गृत्समदयन तुम्हारे लिये मनोरम स्तुतिकी रचना करते हैं । तुम सर्वोपक्षा नृपन हो । तुम्हारे कर्षोक्षाभिलाषी गृत्समदयन अश्व, वज्र, गृह और सुख प्राप्त करें ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जाँचनदमो दक्षिणा स्तोत्रांक सार्व मनास्थ पूर्ण करता है, वही दक्षिणा हमें दो । तुम मजनीय हो । हमें द्वाककर अन्य कियोंको नडा देना । हम पृत्र और पीत्रने युक्त द्वाक हम यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

२० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धिपुणः प्रमरामहे वाजयुनं रथम् ।
 विपन्यवो दीधनो मनोषा सुस्रामिपक्षन्तस्त्वावतो नृन् ॥१॥
 त्वं न इन्द्र त्वामिरूतीस्वायतो अमिष्टिपासि जनान् ।
 त्वमिनो दाशुपो वरुनेत्याधोरमि यो नक्षात त्वा ॥२॥
 स नो युवेन्द्रो जोहवः सखा शिषो नरामस्तु पाता ।
 यः संसन्तं यः शशमानमूतः पन्नन्तं च स्तुवन्तं च प्रणपत् ॥३॥
 तमुस्तुव इन्द्र तं गृणीषे यस्मिन् पुग वावृधुः शाशवुश्च ।
 स वरुनः कामं पापदिवानां ब्रह्मण्यता नूतनस्याथोः ॥ ४ ॥
 सो अङ्गिरसामुत्था जुजुष्वान ब्रह्मन्तोदिन्द्रो गातुमिष्यन् ।
 मुष्णन्नुपसः सूर्येण स्तवानश्नश्न चिच्छिश्नयन् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥

१ इन्द्र, जिसे प्रकार अन्नामिताषो वर्णिक रथ सेवार करता है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे लिये अन्न सेवार करते हैं । तुम हमें अच्छी तरह जानते हो । हम स्तुति द्वारा तुम्हें शोध्यमान करते हैं । हम तुम्हारे जैसे पुरुषसे सुख मांगते हैं ।

२ इन्द्र, तुम हमारा पालन करने हुए हमारी रक्षा करो । जो तुम्हें चढ़ा है, उनकी, तुम शत्रुओंसे, रक्षा करते हो । तुम इष्यदाता यजमानके ईश्वर और उसके शत्रु को दूर करने-वाले हो । इष्य द्वारा जो तुम्हारी सेवा करता है, उसके लिये तुम यह सब कर्म करते हो ।

३ हम यज्ञ-कार्य करते हैं । तृण वयम्, अङ्गिरान्-योषि, मित्र-तृण और सुविदा इन्द्र, हमारी रक्षा करें । जो स्तोत्रका उच्चारण करता है, क्रियाका समाधान करता है, इष्यका पाक करता है और स्तुति करता है, उसे आश्रय देकर इन्द्र कर्मके पार ले जाते हैं ।

४ मैं वहीं इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, उन्हींको प्रशंसा करता हूँ । उनका स्तोता पहले वर्द्धित हुए थे और उन्होंने शत्रुओंका विनाश किया था । इन्द्रके निकट प्रार्थना करनेपर इन्द्र स्तोत्राभिषेक नये यजमानकी घनेच्छाको पूरण करते हैं ।

५ अङ्गिरा लोगोंने मंत्रों द्वारा प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें गाय लानेका मार्ग दिखा दिया था और उनकी स्तुति भी पूरे की थी । स्तोताओंकी स्तुति करनेपर इन्द्रने, सूर्यके द्वारा उषाका अपहरण करके, आनन्द प्राचीन नगरों-का विनाश किया था ।

सत्रासाहा जनमक्षो जनं सहश्च्यवने युष्मो अनुजोपमुक्षितः ।
 वृतञ्चयः सद्गुर्विश्वाहित इन्द्रस्य वोचं प्रकृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
 अनानुषो वृषभो दोधनो वधोगम्भोर ऋषो असमष्टकाव्यः ।
 रघ्नोदः श्रयनो वीलित स्पृष्टरिन्द्रः सुयज्ञ उपसः स्वर्जनन् ॥ ४ ॥
 यज्ञ न गातुमसूरो विविद्विरेधियो हिन्वाना उशजो मनीषिणः ।
 अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
 इन्द्र श्र प्ठानि द्रविणानि ग्रहि वित्तिं दक्षस्य सुमगत्वमस्मै ।
 पापं रयोणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनन्वमहाम् ॥ ६ ॥



२२ सूक्त । इन्द्र देवता । अष्टि, अत्यष्टि और शक्ती छन्द ।

त्रिकद्रे केषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्वृष्यामपिबद्विष्णुना तुनं यथावशात् ।
 स ई ममाद् महि कमेकर्तवे सहामुक्तं सनं अश्वदे वो देवं सन्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ॥ ॥
 अथ त्विषोमर्मा अग्नेजसा क्रिचि युधामवदा रोदसा अपृणदस्मज्जमना प्र वावृधे
 अधत्तान्यं जटरे प्र मरिचयत सनं सश्वदे वो देवं सन्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

३ बहुलके पराजयकता, लोगोके भजनीय, बलवानोके विजेता, शत्रु निवारक, योद्धा, हर्षकर-सोम-सिक्त, शत्रु-
 हिंसक, शत्रुओंके अभिमव-कता और प्रहापालक इन्द्रके सकृष्ट वीर-कर्मकी सब स्तुति करते हैं ।

४ अतुलदानसम्पन्न, असीधवशी, हिंसकीके हन्ता, गम्भीर, दर्शनीय कर्ममें अपराजेय, समृद्ध लोगोके उत्साह-
 दाता, शत्रुओंके कर्तनकारी, हृद्गुप्त, जगदुत्पापी और सुन्दर-यज्ञ-विशिष्ट इन्द्रने उपामे सूर्यको उत्पन्न किया है ।

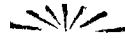
५ इन्द्रके स्तोत्रा, इन्द्राभिलाषी और मनीषी अजिज्ञा लोगोंने यज्ञ द्वारा जल-प्रसक्त इन्द्रके पास चुराये दूई
 गायोंका मारी जाना है । लज्जित रक्षार्थ अभिलाषी इन्द्रके ताता अजिज्ञा लोगोंने स्तोत्र और पुजाके द्वारा
 गोचन प्राप्त किया है ।

६ इन्द्र, हमें उत्तम धन दे । हमें निपुणताकी प्रसिद्धि दे । हमें श्रीभाग्य दे । हमारा धन बढ़ा दो । हमारे
 शरीरकी रक्षा करो । बालोंमें मोटापन हो । दिनको छुटन करो ।

१ पूजनीय, बहुबलशाली और तृप्तिकर इन्द्रने जेभी पहने इच्छा की थी, जेमे ही त्रिकद्रे को यव मिलाया ।
 अभिषुक्त सोम विष्णुके साथ पाल कर्त । महान् सोमने तेजस्वी इन्द्रको महान् कार्यकी सिद्धिके लिये प्रसन्न किया
 था । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

२ दीप्तिमान् इन्द्रने अपने जलमे युद्ध द्वारा क्रिचिको जीता था । अपने तेजसे इन्द्रने यावापृथिवीको
 चारों ओरसे पूर्ण किया था । वे सोमके बलमे बहुत बढ़े हैं । इन्द्रने एक भाग अपने पेटमें धारण करके अन्य भागको
 देवोंको प्रदान किया । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

साक जातः क्रतुना साकमोजसा ववश्रिय साकं वृद्धा वीर्यैः सासहिर्मृश्रो वीचर्षणिः ।
 दाता राघ, सन्वते काम्यं वसु सनं सश्रद्धं ना देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥
 नयत्य नयं नृनां इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं त्रिवि प्रवाच्यं कृतं यद् वस्य शवसा प्रारिणा अमुं गिणन्तपः ।
 भुवद्विश्वमभ्या देवमोजसा विद्वद्वृजं शतक्रतुर्विदाविपम् ॥ ४ ॥



३ अनुवाक । २३ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम् ।

अष्टराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पति आ नः अण्वन्नृतिभिः सविंसादनम् ॥ १ ॥

देवाश्चित्ते अमृत्यं प्रचेतसो बृहस्पते यक्षियं भागमानशुः ।

अत्रा इव सूर्यो ज्योतिषा सहो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणाप्रसि ॥ २ ॥

आ विवाध्या परिगपस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य निठमि ।

बृहस्पते भीममभिन्नदम्भनं रक्षोहणं गोत्रमिवं स्वविन्दवम् ॥ ३ ॥

सुनीतिभिर्नयसि त्रायमे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्ववत् ।

ब्रह्मदिनपस्तप नो मर्युमीरसि बृहस्पते महि सन्ते मन्वित्वनम् ॥ ४ ॥

३ इन्द्र, तुम यज्ञके साथ अवल उत्पन्न हुए हो । तुम सब से जानकी इच्छा कर हो । तुमने पराक्रमके साथ बढ़कर हिंसकी जीता है । तुम मनु और असतृक विचारक हो । तुम हमोसाके कर्मसाधक और वाक्छनीय बन हो । सत्य और शासमान से जो सत्य और प्रशशमान इन्द्रको व्याप्त करें ।

४ इन्द्र तुम सूर्यो नचायेयां हो । तुम से जो पूरे कालमें मनुष्योंके हितकर कर्म को किया था, वह तुम्हारे श्लाघनीय हुआ है । अदने पराक्रमसे तुम ने देव (वृद्ध) की ताण-हिंसा करके उसके द्वारा जलको बढ़ा दिया था । इन्द्रने अपने बलसे वृद्ध या अदेवकी पराजित किया । शतक्रतु बल और अन्न जानें ।



१ हे ब्रह्मणस्पति, तुम देवोंमें गणपति और कवियोंमें कवि हो । तुम्हारा अन्न सर्वोप और उपमान-भूत है । तुम प्रशसनीय लोगोंमें राजा और मंदोंके स्वासी हो । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम हमारी स्तुति सुनकर, आश्रय प्रदान करनेके लिये, यज्ञगृहमें आओ ।

* अष्टराजता और अष्टराजानी बृहस्पति, देवोंने तुम्हारा वजीय प्राप्त किया है । जैसे ज्योतिष द्वारा पृथ्वीय सूर्य किरण उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब मंत्र उत्पन्न कर ।

२ बृहस्पति, चारों तरफसे मित्रों और अन्यकारोंका दूर, कर्मके तुम ज्योतिमान यज्ञ-प्राप्तक, मयानक, शय-हिसक, राक्षसनाशक, मेघ-मेष्टक और स्वर्गप्रदायक रखने रह हो ।

३ बृहस्पति, जो तुम्हें हृदय देता है, उसे तुम सन्मार्गमें ले जाने हो । उसे बधाते हो । उसे दाप नहीं मिलता । तुम्हारा ऐसा माहात्म्य है कि, तुम मन्त्र-द्विषयिक सन्नापक और प्रोषक हिंसक हो ।

४ दूसरा अनुवाक १२ वं सूक्तमें ही प्रारम्भ होता है । मूलमें वहाँ नहीं दिया जा सका ।

न तमंहा न दुरितं कुतश्चन नागतयस्तिनिरुनं दूयवाविनः ।
 विश्वा इदममातृ तस्मै विवाधमेयं सुगोपा रक्षस्मि व्रतास्पते ॥ ५ ॥
 त्वं नो गोपोः पश्चिद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जगामहे ।
 वृहस्पते यो नो अभिहरो वधे स्वा तं मर्त्यं बुच्छुना हरस्वतो ॥ ६ ॥
 उत वा यो नो मर्त्यावनागसोराभीवा मर्तः सानुको वृकः ।
 वृहस्पते अप तं वत्तयापथः सुगं नो अस्यै देववोतया कुधि ॥ ७ ॥
 आभारं त्वा तनूनां हवामहेवस्पतरं प्रिवक्तारमस्यधुम् ।
 वृहस्पते दैवनिदो निबर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुप्तमुन्नशन ॥ ८ ॥
 त्वया यः सुवृथा व्रजणस्पते स्पाहां वसु मनुष्या वर्तमहि ।
 या नो दूरे तल्लता या करातदोभिस्सन्ति जम्भया ता अग्नयसः ॥ ९ ॥
 त्वया वयमुत्तमं धीमहे ययो वृहस्पते परिणा सस्मिना युजा ।
 मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुगीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥
 अतानुदो वधभो जमिराहवो निष्टता शत्रुं प्रतनासु सासहिः ।
 अस्मि सस्य ऋणया व्रजणस्पत उग्रस्य चिद्विमिना वीरुद्वपिणः ॥ ११ ॥

५ सरलक व्रजणस्पति, जिसको तुम रक्षा करते हो, उसे दुष्ट कष्ट नहीं दे सकते, पाप उसे कष्ट नहीं दे सकें । शत्रु कोग उसे किसी तरह हार नहीं सकते, या उसे मरवा नहीं सकते । उसके लिये तुम माँ हिंसकों को दूर कर दो ।

६ वृहस्पति, तुम हमारे गुरु, सम्मार्गदर्शक और विश्वरूप हो । तुम्हारे पालन के लिये दुष्टों द्वारा हम मर्त्य करने हैं । जो हमारे प्रति कुटिल आचरण करता है, उसको दूरे बुद्धि देगवनी होकर उसे शीघ्र विनष्ट करे ।

७ वृहस्पति, जो गवोरमत्त और सर्वेश्वरी शक्ति हमारे सामने लाकर हमारी हिंसा करता है, हमें सम्मान दे डाले । और उसके लिये हमारा पक्ष समर्थ करे ।

८ वृहस्पति, तुम स्वयंको उपद्रवते बचाओ । तुम हमारे पौत्र आदिका पालन करो । हमारे लिये मर्त्य वचन बोले और हमारे प्रति प्रमत्त होओ । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम देव-विन्दकों का विनाश करो । दूधुहि लोग हरकष्ट सुख न पायें ।

९ व्रजणस्पति, तुम्हारे द्वारा वदित होनेपर मनुष्यों के पाससे हम मनुष्यीय धन प्राप्त करें । दूर या पास हमारे जो शत्रु हमें पराजित करते हैं, उन यशहीन शत्रुओंको विनष्ट करे ।

१० वृहस्पति, हम मनुष्योंके पुरविषा और पवित्र हो । हम तुम्हारी सहायता पाकर वस्तुष्ट अन्न प्राप्त करेंगे । जो दृष्ट हमें पराजित करता चाहता है, वह हमारा अभिपति न हो । हम उत्काष्ट मर्त्य द्वारा पुण्यवान् होकर उन्नति करें ।

११ व्रजणस्पति, तुम्हारे शत्रुकी उपमा नहीं है । तुम अभीष्टवर्षी हो । युद्धमें जाकर तुम शत्रुओंको मत्ताप देते और उन्हें विनष्ट करते हो । तुम्हारा पात्रपत्र अन्न है । तुम धुनका परिशोध करते हो । तुम मर्त्य हो और मनुष्यमत्त व्यक्तियोंका दमन करते हो ।

अनेवेन मतसा यो विषययति शस्मानुषयः अयमानो जिघांसति ।
 बृहस्पतिं मा पणक्तस्य नो बधो नि कर्मो मय्यु दनेवस्य शर्पतः ॥१२॥
 अनेषु अय्योः नमस्योपमयो जन्ता वा जेप सतिता धनं धनम् ।
 विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वोमृषो बृहस्पतिर्विव वर्हा रगाँश्च ॥१३॥
 तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्वप ये त्वा निहै दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
 आविहस्तकुम्भ यद्वसन्त उक्थ्य बृहस्पते विपरिगणो उदय ॥१४॥
 बृहस्पते अति यदर्यो अर्हायु मदिभति कतुमजनेप ।
 यद्वीर्यच्छवस्य स्रतपजान पदस्मात् द्विणिं धेहि विप्रम् ॥१५॥
 मा नः स्तेनेभ्यो ये अभिद्र हस्पदै निगमिण रिषवो जेप प्रागृधुः ।
 आहै तापामो ते विप्रयो हृदि बृहस्पते न परः सास्रो विदुः ॥१६॥
 शिष्टेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परिस्थितास्तनू सास्रः साम्नः कविः ।
 स्य स्रणचिद्रुणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मद्र स्रतस्य धनंरि ॥ १७ ॥

१२ जो व्यक्ति देवगुरु जनमे हमारी हिमः करता है और जो उय आत्माभिमानो हमारा वच करनेकी हक
करता है, वृहस्पति, उसका आयुष हमें न हू मने । हम वेम यजमान और दुष्ट शत्रुका कोष नाश करनेमें समर्थ हों।

१३ बृह् कालमें बृहस्पति आहवाय-योग्य और नमस्कार-पूर्वक उपासना-योग्य है । वह युद्धमें जाते हैं । सब
पक्षोंका धन लेने उनके स्वामी बृहस्पति विजिगीषावाला माने हिमक मेवाओंको रथकी तरह, निहत और
विनाश करने हैं ।

१४ बृहस्पति, सामीप मोक्ष और वसनापक ऐति आयुषमें राक्षसोंको सन्तप्त करा । इन्हीं राक्षसोंसे, एहो परा-
क्रमके प्रभु होनेपर भी, एहो हर्षा निरक्त ही गी । पूर्व कालमें दुष्टारों के प्रसक्तिये नारी था, इस समय उसका आवि-
ष्कार करा और वसक द्वारा निरुक्तोंका विनाश करे ।

१५ यज्ञज्ञान बृहस्पति, जिन धनकी आये लोग पुत्र करने हैं जो लीम और यजमाना धन लोगोंमें शोभा
पाता है, जो धन अपने तेजसे वीमवाता है, वही विप्रध धन या सदायं तेज हमें दों ।

१६ बृहस्पति, जो लोग द्रोह करनेमें समर्थ होते हैं, जो शत्रु हैं, जो दमस्क धन चाहते हैं, जो अपने जनमे
सर्वाश्वः देवोंका अहंकार करनेकी तुल्ला करते हैं और जो राजस-नाशक साम स्पति नहीं जानते, उनके दास्ये हमें
नहीं देना ।

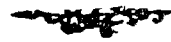
१७ बृहस्पति, राजा अपने स्रते अर्ध-श्रेष्ठ अपरुत हिम है । इन्हींके सम स्रते सामोंके सत्कारण कर्ता हो ।
यज्ञ आरम्भ करनेपर ब्रह्मणस्पति वसका मारा धुण पक्षोंका वरने और क्षणका परिहोय करते हैं । वह द्रोहकारोंका
विनाश करते हैं ।

तव श्रिये व्यजिहति पवन्तो गवां गोत्रमुवसृजा यदङ्गिरः ।

इन्द्रं ण युजा तमसा परीवृत बृहस्पते निरवामौव्जा अणवम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्य ।

चिष्वं तदुभद्रं यद्वन्ति देवा बृहदुदेम विदथे सुवीराः ॥ १९ ॥



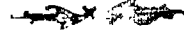
१८ अङ्गिरोवङ्गीय बृहस्पति, पवन्तो गायोंको क्षिपाया था । तुम्हारी सम्पत्तिके लिये जिस समय वह उद्व्यादित हुआ और तुमने गायोंको बाहर किया, उस समय इन्द्रका सहायक पाकर तुमने वृत्र दुवारा आक्रान्त जलाधारभूत जल-राशिको नीचे किया था ।

१९ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारक नियामक हो । इस सूक्तको जानो । हमारी मन्ततियोंको प्रसरन करो । देवता लोग जिसको रक्षा करते हैं, वह मलो भोंति कल्याणवाङ्क है । हम पुत्र और पौत्रवाने होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

पष्ठ अध्याय समाप्त



सप्तम अध्याय



२४ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और अगती छन्द ।

समामपिदृष्टि प्रभृति य ईशिपया विधम नवया महागिरा ।
यथा नो मातृवानस्तपते सन्वा तव बृहस्पते सापयः साव नो मतिम् ॥१॥
यो नन्वाभयनमन्योजसाताद्वभन्युना शम्भुराणि वि ।
प्राक्याभयदक्ष्युता ब्रह्मणस्पतिरावाविशद्रुपन्तं वि पर्वतम् ॥२॥
तद्वानां देवतमाय कर्त्तव्यमथनन्दृहलाग्रदन्त वीलिना ।
उद्गा आजवमिनद्रत्नाणा बलमगूहन्तमोव्यचक्षयन्स्वः ॥३॥
अशमास्यमवन्त ब्रह्मणस्पतिर्बुध्नात्मभि यमोजसात्पूणम् ।
नमेव विश्वे पापिरे स्वर्दृशो बहु साकं त्विसिचुरसमुद्रिणम् ॥४॥
मना ता काचिद्गवता भजन्त्वा मन्त्रिः शरद्भिर्दुरा वरन्त वा ।
अयन्ता चरन्तो अन्यदन्वदिष्टा स्वकार वयुता ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

१ ब्रह्मणस्पति, तुम सां संसारके स्वामी हैं । हमारे द्वारा भली भाँति की गयी स्तुतिको ग्रहण करो । हम तुम्हारी, इस नवीन और बृहत् स्तुतिके द्वारा, सेवा करते हैं । हमें अमिमम फल प्रदान करो, क्योंकि, बृहस्पति, तुम्हारे बन्धु हम हैं । हमारा स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करता है ।

२ बृहस्पति, अपनी सातव्यर्थ, तुमने तिरस्कारगोपिका तिरस्कार किया था, क्रोध-परवश होकर शम्भुको विरोध किया था, निरञ्जल जलको चालित किया था और गोधनपण पर्यन्त प्रवेष्ट किया था ।

३ देव-अष्ट देव बृहस्पतिके काममें सहृदयता स्थित हुआ था और स्थिर वृक्ष मग्न हुआ था । उन्होंने पायोका उद्धार किया था । मन्त्र द्वारा बलाघुरको मित्त किया था । अन्वकारकी अहण्य किया था । आदित्यको प्रकट किया था ।

४ बृहस्पतिने पथरको तरह लड़ मुन्वरात्रे, मधुर जलमें पूर्ण और निम्न अवन्त जिम मेघका, बल-प्रयोग द्वारा, अघ किया था, लसका आदित्य-किरणोंने जल पान किया था और उन्होंने ही जलधारा-मय घृष्टका मित्त किया था ।

५ स्तुतिको, तुम्हारे ही लिये बृहस्पतिके मनमान और वाचित्र प्रज्ञानमें महीने-महीने और साल साल होने वाली वर्षाका द्वार उदघाटित किया था । बृहस्पतिने ऐसे प्रजातोंको मन्त्र-विषयक किया था । स्मृता करके धावापृथिवी परस्पर छल बढ़ाती हैं ।

अभिन्नप्रन्तो अभि यै तमानशुनित्रि पणानां परमं सुहाहितम् ।
 ते विहास्य प्रतिचक्ष्यान्ता पुनयेत उ - यन्तदुदीक्षुराशिम् ॥६॥
 सृता रानः प्रतिचक्ष्यान्ता पुनरात आतस्थः कवयो महस्पथः ।
 ते बाह्व्या धर्मिमग्रिमश्मनि नकिण्यो अस्त्रयणा जहृहितम् ॥७॥
 सृतज्येन क्षिप्रं प्रह्वणस्पतिर्यत् वष्टि प्रतनश्रोति धन्वता ।
 तस्य साध्वीरिपयो याभिरम्यति नृक्षसो दृक्ष्य कर्णशो नभः ॥८॥
 ससंनयः सविनयः पुगेहितः स सुष्टुतः स युधि प्रह्वणसः तः ।
 चाक्ष्मो यद्वार्ज भरते मती धनादित्सूर्यस्तपाति तप्यतुर्वथा ॥९॥
 विभु प्रभु प्रथमं मेहनावता बृहस्पतेः सुविद्व्राण राध्या ।
 इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उमये भुजने विशः ॥१०॥
 यो वरं वृजने विश्वथा विभुर्महामुरगवः शयशा ववक्षि ।
 स देवो देवान् प्रति पथे पृथु निष्ठेदुता परिप्रह्वणस्पति ॥११॥
 वक्ष्यं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्रमिनश्चि वतं वाम् ।
 अच्छेन्द्रावह्वणस्पता दविर्नानि युजेव याजिना जिगातम् ॥१२॥

६ विज अङ्गिरः लोगोंने, चारों ओर खोजते हुए, पणियोंके दुर्गमें क्षिप्रये हुए परम धनको प्राप्त किया था । मायाका दर्शन करके वे जिस स्थानमें गये थे, फिर वहीं गये ।

७ सत्यपदी और सर्वज्ञ ना अङ्गिरा लोग, मायाका दर्शन करके, पुनः प्रवान मार्गमें, हमी ओर गये । उन्होंने हाथोंमें जकाये अभिगो पर्वतपर फँका । पड़से वह छर्वसक अग्नि बह्रा नहीं गे ।

८ बृहस्पति वाण-जैरक और सत्यरूप जयावन्ते हैं । वे जो चाहते हैं, धनसक द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । जिस वाण-को वह फँकते हैं, वह कार्य-साधनमें कष्ट न हो । वे वाण दधाना आपन्न हुए हैं । उर्ण हो : उनका उत्पत्ति-स्थान है ।

९ ब्रह्मणस्पति पुराहि, तः । वे लोग पशुओंका पृथक् और पृथक् करते हैं । सत्य उनकी स्तुति करते हैं । वह युद्धमें प्रवृत्त होते हैं । सर्वदेवी वृक्षाना जस्य सैन्य अन्न और धन पारग कर्त है, उस सत्य अनायास सूर्य उगते हैं ।

१० वृष्टिर्न वृद्धसा । येन चारा आर व्याप्त, प्रापगाय, प्रनृज जीत उत्तम है । कमनीय और अन्नवान् बृहस्पतिने यह सारा धन दान किया है । दाना प्रकारक मनुष्य (यजमान और स्तोता) व्यावावस्थित वित्तसे इस धनका उपभोग करते हैं ।

११ चारा आर व्याप्त और स्तवनीय ब्रह्मणस्पति अतीव और महान् यही, दोनों प्रकारके स्तोताओंकी, अपने शक्तिसे, रक्षा करने हैं । दानाद् गुणवान् बृहस्पति स्वर्ग प्रतिनधि रूपने सर्वक आयन्न विख्यात हैं । इसीलिये वह सारे प्राणियोंके स्वामी भी हुए हैं ।

१२ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, तुम धनवान् हो । सारा सत्य तुम्हें पहा है । तुम्हारे वतकी जल नहीं मार सकता जैसे रथमें जुन हुए बाघ खाद्यक सामने दीवते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे हव्यक लिये दोड़ो ।

कताशिष्टा अनुश्रुतवन्ति ब्रह्मः सगगो विप्रो भर्गो मनीषिना ।
 वातुष्टेष्वा अनुवशमृणमदतिः सहवर्जा समिधो ब्रह्मणस्पति ॥१३॥
 ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्या मन्युमति कर्माकर्षिततः ।
 यो गा उदात्तन् स दिव सिनामजन्वर्हो गतिः शवसास्रन् पृथक् ॥१४॥
 ब्रह्मणस्पते सुशमस्य विश्वहारायः स्याम रथ्या वयम्भतः ।
 वारिषु वारा उपपृगिषु नसुर्वं वदाशाना ब्रह्मणा वशि मे भवम् ॥१५॥
 ब्रह्मणस्पते त्व. स्य यन्ता मूकस्य बोधि तनयं न जिव ।
 विश्व तद्भद्रं भवन्ति देवा वृत्तदंभं विदथ सुवीराः ॥१६॥

२५ सूक्त - ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

१-धानो अग्नि वनदनुष्यतः कृतव्रता शशुवद्राततः । इत ।

जलेन ज्ञातमति स प्रवर्तुत यथं युजं कृण्वे ब्रह्मणस्पतिः ॥ ॥

१३ ब्रह्मणस्पति भगवान् वाक् हमारा स्तोत्र सुनते है । मेरा ही आरामभ्य अवयु, मनोरम स्तोत्र द्वारा, इत्य प्रवृत्त करते है । वनदनुष्यतः तमनकारा ब्रह्म स्पति हमारे पाप, इच्छानुसार, क्षण स्वीकार करते है । जन्मवान् ब्रह्मणस्पति युद्धमे हमारे प्रहण करे ।

१४ जिस समय ब्रह्मणस्पति किसी मरुत वसुमे प्रवृत्त होते है उस समय उनका मूक उनकी अमिताभाके अनुसार सकल होता है जिन्होंने मायाकी आकाशिका, वनदानी धूलिका लिये उनका भाग किया है । महान् सोमकी तरह गार्ग्य, अपने बलमे, अलग-अलग प्रवृत्त है ।

१५ ब्रह्मणस्पति, हम सब समय एकजुट मिलकर जिन मनसाव धनक अधिपत है । तब हमारे वीर पुत्रको पौत्र वा; क्योंकि तुम स्वर्ग ईश्वर हो । हमारे यशुति और जन्मके वाह ।

१६ ब्रह्मणस्पति, तुम इस समयके अभ्यासिक हो । तुम ही सुवर्ण जाति । तुम हमारी मन्त्रतियोका प्रमत्त करो । देवता लोग जिसकी रक्षा करने है वह कल्याणवादा है । पुत्र और पौत्रवाले द्वारकाय इस यज्ञमे प्रवृत्त रूप से करेंगे ।

अधिको प्रवृत्तिम शरण यजमान शशुर्होती दिना का म । यजमान पुत्र और अन्य दान करने हुए यजमान समृद्धि प्राप्त कर सके । जिस यजमान नेकी नस्य करके ब्रह्मणस्पति प्रहण करते है, वह पुत्रके पुत्रमे भी अधिक जीवित रहता है ।

वीरेभिर्वीरान्वनवदनुष्यतो सोमी रयि पप्रथद्वाधति त्वना ।
 लोकं च तस्य तज्यं च वधते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥
 सिन्धुर्न श्रोतः शिर्मावाँ ऋघ्रायतो वृषेव वध्नाँ रभिवष्ट्याजसा ।
 अग्रे रिव प्रसितानाँदवर्नव ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥
 तस्मा अर्पन्ति दिव्या असश्चतः सम-वभिः प्रथमं गोपु गच्छति ।
 अनिभृष्टतविग्रहन्त्यो नम्रा ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥
 तस्मा इतिग्वे धुनयस्त विन्धवाच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
 देवानां सुमं मुमगः स एधने ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥



२६ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

ऋजुरिच्छंसा वनवदनुष्यतो देवयन्तिरदेवयन्तमभ्यसत् ।

सुप्रवीरिडनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्जेद्वयज्योविमज्जानि भोजनम् ॥१॥

२ यजमान वीर पुरुषों के द्वार शत्रुओं के वीर पुरुषों को मार । वह साजसज्जालों से निरुप्राप्त हुआ है और अन्य सब समक्ष सरुता है । बृहस्पति जिस यजमान का भय का कहकर ग्रहण करने है, उसका पुत्र और पौत्र भी समृद्धि प्राप्त करता है ।

३ जैसे नदी सड़को जोड़ती है, सौँड़ जैसे घेनों की पराजित करता है, ऐसे ही बृहस्पति की सेवा करनेवाला यजमान, अपनी शक्ति से, शत्रुओं को पराभूत करता है । जैसे आग्नि-शस्त्रों का निवारण नहीं किया जाता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति जिस यजमान को सखा कहकर ग्रहण करने है, उसका भी निवारण नहीं किया जा सकता ।

४ जिस यजमान का बृहस्पति सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसके पास, अर्घातहस्त निर्माणों होकर, स्वर्गीय जल आता है । परिचर्या-कारिणों में भी वही सबसे पहले साधन प्राप्त करता है । उनका बल अनिवार्य है । वह बल द्वारा शत्रुओं का विनाश करते हैं ।

५ जिस यजमान को सखा रूप से ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं उसकी ओर सारी नदियाँ प्रवाहित होती हैं । वह सखा नानाविध सुख का उपभोग करता है । वह सौभाग्यशाली है । वह देवी द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त कर समृद्धि पाता है ।

१ ब्रह्मणस्पतिको भयल भयोता शत्रुओं का विनाश कर उन देवताओं की अदेवताओं को पराभूत कर डाले । जो बृहस्पतिको अच्छी तरह नृत्त करता है, वह युद्ध में शत्रुओं का विनाश करता है । यज्ञपरायण अयाजिकों के जनका उपभोग कर सके ।

यजस्य वीरि प्रविहि मनायतो मद्रं मनः कृणुत्व वृत्रतृणं ।
 वीर्यकृणुत्व सुमर्गो यथास्मि ब्रह्मणस्पतिरय आ वृणांसहे ॥ २ ॥
 स इज्जन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाज भरते धनानृभः ।
 देवानां यः पितरमाविवासति अजमना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥
 यो अस्मै हव्येष्टुं तवदमिरावधन् प्रतं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
 उरुष्यतीमहसो रक्षतीरिषोहाश्चिदस्मा उरुचकिरद्भुतः ॥ ४ ॥



२७ सूक्त । आदित्यगण देवता । विष्टुप् छन्द ।
 इमा गिर आदित्येभ्यो घृतसूतः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
 अणोतु मित्रो अयमा भगो नमूतुवजातो वरुणो दक्षा अंशः ॥ १ ॥
 इमं स्तोमं सकृत्तपो मे अय मित्रो अयमो वरुणा जुपन्त ।
 आदित्यासः शुचयो धारपूता अर्वाजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥
 न आदित्यास उगवो गभीरा अद्वयामो दिप्सन्तो भूयक्षा ।
 अन्तः पश्यन्ति वृजिनां सन्धु स्रवे राजस्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

२ वीर, तुम वीरगणस्पतिको मूर्ति करो : अभिमानी शत्रुओंके विरुद्ध यात्रा करो । शत्रुओंके साथ संघाममें मनको हृद करो । ब्रह्मणस्पतिके लिये हव्य मैथार करो । देवा करनेपर तुम उत्तम धन पाओगे । इस ब्रह्मणस्पतिके पाशमें रक्षा चाहते हैं ।

३ जो यजमान अर्वाजान हाथ देवोंके पिता ब्रह्मणस्पतिकी, हव्य दुवाश, परिचर्या करता है, वह अपने अनुष्य और आत्मीय, अपने पुत्र और अन्योन्य परिचारकोंके अन्तर्गत और धन उपगत करता है ।

४ जो ब्रह्मणस्पतिकी पारवर्त्यो पत युक्त पश्यतो करता है, पत ब्रह्मणस्पति पाशमें सरल मार्गसे ले जाते हैं । उसे ये पाप, शत्रु और दुरिहतासे बचाते हैं । अन्तर्गत ब्रह्मणस्पति हमका महान् उपकार करते हैं ।

१ मैं हृद द्वारा, मदक्ष शोभमान आदित्योंको लक्ष्य कर, पत छाविणी स्मृति अर्पण करता हूँ । मित्र, अयमा, भग, बहुव्यापक वरुण, दक्ष यौरे अंश मेरी अस्ति धर्म ।

२ आदिमान, वृष्टपूत, नमूतवजायज, अरिष्टनाम, पिता मदक्ष दात पारमिध उमेकतो मित्र, अयमा और वरुणनामक आदित्य आज मेरे हव्य स्तोत्रका अयमोऽय १२ ।

३ महान्, गभीर, दुर्दमनीय, दमनकारी जैसे अनुष्टुप्छन्दस्य आदिद्वयगण प्रार्थनार्थका अन्तःकरण देवते हैं । दूरदेशस्थित पदार्थ भी आदित्योंके पास निकट है ।

नारायणः आदिह्यामी उग्रस्थः देवा विराजस्य भुवनस्य सायाः ।
 दद्यात्तु यः कश्चिन्मृता अग्र्यमृतावानश्चरामातः ऋणानि ॥ ५ ॥
 विद्यामादित्या अदसी वा अस्य यदस्य सः सा चिन्मयोभु ।
 गुणमाजं मिवावहणा प्रणीतौ परि श्वभ्रं च ददितानि नज्याम ॥ ५ ॥
 सुगो ति दो अयमन्मित्र पत्न्या वतुक्षरो वरुण साधुरस्मि ।
 तेनादिह्या अश्विनोमना नो गच्छता नो दुःपरिणन्तु शर्म ॥ ६ ॥
 विपत्तौ नो अदितौ गार्ग्यवर्तिते पांसुयुग्मा सुगेभिः ।
 वतन्मित्रवत् वरुणस्य शर्मोदित्यावः पुरुषोराः करिष्ठाः ॥ ७ ॥
 तिस्रो भूमौ रंगन्त्रास्तद्वज्रिणी वताविद्ये यत्नरेणम ।
 अनेनादिह्या मति वो मणितो अदयस्त्वामणमित्र नार ॥ ८ ॥
 त्री रानेना दिव्या आरयन्तः शिरययाः शुनयो धारयताः ।
 अस्त्रप्रतो यन्मित्रा अश्विनो रुशंसा अजो भवर्ग्य ॥ ९ ॥
 च विष्णवे पां वरुणासि राता ये च देवा असुर ये च मर्षाः ।
 शतं नो अस्त्र शरदो विच्छेदयन्मायुषि सुधितानि पुरा ॥ १० ॥

४ आदित्यगण, स्यात् और जंगमको अवस्थापित करने और सारे भुवनोंकी रक्षा करने हैं । वे बहुत ही कामे और कष्टों भयवा प्रणके देवसुत जनकी रक्षा करते हैं । वे अन्नप्राप्ति और वृद्धि-परिपोषक हैं ।

५ आदित्यगण, इस दुष्टद्वारा आश्रय प्राप्त करें । अथ यन्त्रेण तप्तद्वारा आश्रय स्वरूप प्रदान करता है । हे अग्र्यमा मित्र और वरुण, तुम्हारा अनुमोदन करके मैं सृष्टिकी तप्त पादोंकी दत्त कर दूँ ।

६ अग्र्यमा, मित्र और वरुण, अद्विष्टा अर्थात् शुभरा, अन्नप्राप्ति और सुन्दर हैं । आदित्यगण, उसी मार्गमें तुम हमें से जाओ, गीत वचन लेलो और विराजो सत्य हो ।

७ शतमात्र आदिति शम्भुभार्यो नाविवर हमें दुर्गम देशमें से जाके अग्र्यमा हमें समस्त मार्गमें से जाये । इस गृहवीर-युद्ध और आदिह्या के द्वारा मैं और वरुणका सुख प्राप्त करे ।

८ ये पृथिवी, जलविश्व और अग्र्यमा मर्षा, इस और अन्य लोकोंको आरक्षण करते हैं । इनके यत्नमें तीन व्रत (तीन मन्त्र) हैं । आदित्यगण, यत्न द्वारा अग्र्यमा को बहुत छोटा हुई है । अग्र्यमा मित्र और वरुण तुम्हारा वह महत्त्व सुन्दर है ।

९ एवर्णातृकार-सृष्टि, रक्षित, सृष्टि, विद्वत्पण, प्रतिपेक्षक, विप्रा-रहित और मन्त्रके स्तुतियोग्य आदित्यगण सत्य-मन्त्राव को अन्न-विश्व-प्राप्त करे । अन्न-विश्व में सृष्टि के अन्तर्गत वे प्रारण करते हैं ।

१० अश्वर वरुण, तुम देवता हो या असुर, सबके राजा हो । हमें सौ वर्ष देखने दो, ताकि हम पूर्वजोंकी उपभुक्त आयुको प्राप्त कर सकें ।

न दक्षिणा विचिकिते न सत्या न प्राज्ञो न मादित्वा नान इत्या ।
 पावया चित्तसतो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्यातिरश्याम् ॥ ११ ॥
 यो राक्षस्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
 स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुधाया विवधेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥
 शुचिरपः सूर्यवसा अद्वय उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
 न किष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥
 अदिते मित्रवरुणो न मृत्यु यद्वा जय चक्रमा कच्चिद्वामः ।
 उर्वश्यामभयं ज्यातिरिन्द्र मा नो दोषो अभिनशन्तमिन्द्राः ॥ १४ ॥
 इमे अस्मै पीपयतः समीचीनो वृष्टिः स्वभगो नाम पुण्यन ।
 उष्मा श्यामाज्यन यानि प्रत्यूभाधर्षी भवनः साधु अरमै ॥ १५ ॥
 यो नो माया अभिद्रुहे रुजत्राः पाशा आदिरया रिपुषे विचृन्ताः ।
 अश्वीय तौ कश्चि मेघं रथेनारिण्य जरा वा शर्जन्तु स्वयम् ॥ १६ ॥

११ वास-प्रदाता आदिभ्यो, हम व मा आदिने जानते, न वागे जानते, न सामने जानते और न पीछे जानते । १२ म उपशित वृद्ध और महीन कानर हैं । मुने हम ने जाओगे, तो मैं निर्भय ज्योतिको प्राप्त करूँगा ।

१३ रुजके नायक और राजा आदिभ्योको जो इन्द्र प्रदान करता है, उनका नित्य अनुवह जिसकी पुष्टि करता है । जो कश्चि घनकान्, विरुणात्, सदान्, और यद्विचिद्रुहेक तथा रथेन चक्रम् चक्रकर रुजस्थले जाता है ।

१४ वर दोसिमान्, हिंसा-रहित, पुत्र-जनकाली और सुव्रत न श्रेष्ठा उत्तम शम्भुवासे जलने पास निवास करता है । जो आदिभ्योका अनुसरण करता है, उसका तप या विकल्पादः, तप नहीं का सकता ।

१५ अदिति, मित्र, वरुण, जो यदि तुम्हारे वर का कार्य कराने में न सके तो कदा कर समस्त पापों को नष्ट कर देंगे और निर्भय ज्योति प्रदान कर सकेंगे । उष्मा पावनी, यो नो दोषो नो लिप्ता नो मयः ।

१६ जो आदिभ्योका अनुसरण करता है, उसकी शक्ति अधिक एकत्र होकर, पुष्टि करती है । वह सीमावशाल है और स्वर्गीय जल प्राप्त करने समर्था होता है । युद्धकाली वह उत्तम विरुणात् करके अपने और शत्रु के निवास-स्थान पर जाता है । स्वर्गाका आवा भय ही इन्द्रका मेलन-कारण है ।

१७ पुत्रनीय आदित्यगण, दोह कार्याधिक लिये तुम्हारी क माया बनाती गयी है । अगर जो पाश शत्रुओंके लिये बधिय हुआ है, हम उनको, अवरोही पुरुषको सहजः कलायक लिये जायेंगे । प्रम हिंसाशून्य होकर परम सुखमें निवास करेंगे ।

माहं मघोनी वरुण प्रियस्य भृगिदावन् आ विदं शूनमापेः ।

मा रायो गजन्तसुयमादवस्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीगोः ॥१७॥

२८ सूक्त । वरुण देवता । तिष्ठत्प छन्द ।

इदं कथं रावित्थारय स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु महमा ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं मिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥

तव व्रते सुभगासः स्थाम स्वाध्वो वरुण तुष्टुवांसः ।

उपायन् उपसां सोमनीनामश्रयो न जग्माणा अनु ध्रुव ॥२॥

तव स्थाम पुरुतीरस्य शर्मन्तुरशंसस्य वरुण प्रणेतः ।

यूयं नः पुत्रा आदितेरदध्या अभि श्रमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥

प्र सीमादिभ्यो असृजद्विधतो अतं स्थिध्वो वरुणस्य यन्त्रि ।

न ध्राग्यन्ति न विमुच्यन्त्येते वयो न पतु रघुया परिष्मन् ॥४॥

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाय ऋध्याम ते वरुण ग्यमृतस्य ।

मानन्तुश्चदिवयतो ध्रियं ते मा माता शायवन्तः पुरश्चरन् ॥५॥

१७ वरुण, मुझे किसी घबो और प्रभूत-दानशील व्यक्तिके पास जातिकी वसिष्ठताकी बात न कहनी पड़े । राजन, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो । इस दान और पौत्रवाने जाति इस पजनने प्रभूत स्तुति करेगा ।

१ कवि और स्वयं सशोभित वरुणके लिये यह हृदय है । वह अपनी महिमाके द्वारा सारे भूतोको पराजित करते हैं । प्रकाशमान स्वामी वरुण यजमानको प्रयत्नरूप प्रदान करते हैं । मैं हमारे स्तुतिकी शार्धना करता हूँ ।

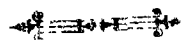
२ वरुण, हम मली भूमि तुम्हारी स्तुति, धन्यता और पवित्रता वरुण स्तौभारप्रणाली हो सकें । किरण-युक्त उषाके आनेपर अग्निकी तरह इस प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करके प्रकाशमान हों ।

३ विश्व-नायक वरुण, तुम किसे ही कोशिकाये हो, वरुण आज तुम्हारी स्तुति करते हैं । हम तुम्हारे घरमें निवास कर सकें । हिंसा-शून्य और दासिन्तु अद्वितीय तुम, तुम, हमारी देवताके लिये, हमारे अपराधको मिटा दो ।

४ विश्व-प्राणक और अद्वितीय वरुणने अच्छी तरह हमको सृष्टि की है । वरुणकी महिमामें नवियाँ प्रवाहित होती हैं । ये कभी विश्राम नहीं करते, लौटाने की नहीं । ये, ये ज्यों । ताह, वेगके साथ पृथिवीपर जाती हैं ।

५ वरुण, मेरे पापमें मुझे रक्षो हो, तरह बोर रखा है । मुझे बुराया । हम तुम्हारी जलपूर्ण नदी प्राप्त करें । यज्ञके धननेके समय हमारा तन्तु कभी टूटन न पावे । अरुमय-यज्ञकी मात्रा कभी विकल न हो ।

अपः २ स्यश्च वरुण नियम मत् सघ्राद् श्रुतावोतु मा गृभाय ।
 दामेन वत्साति सुमुग्ध्यहो तद्वि न्वदारे निमिषध्वनेशे ॥६॥
 मा नः पश्यादण ये न इष्टावना कृण्वन्मससुर भ्रौणन्ति ।
 मा ज्योतिषा प्रवसथानि गन्म विपुमृधः शिश्रथा जीवसे नः ॥७॥
 नमः पुरा ते वरुणानि नूतमुतापरा तुविजानि प्रवाम ।
 न्व हि कम्पवर्धन न श्रुतस्यश्चवुतानि दुङ्ग व वदानि ॥८॥
 पर शृणासा शीरधमत्कृतानि माहं राजन्नर्यकृतेन भाजम् ।
 जवुष्टा इत्यु भूयमाकषस आ ना जीवान् वरुण तासु शान्ति ॥९॥
 यो मे राजन्पुत्रो वा सखा वा स्वप्न भयं भारये मह्यमाह ।
 स्नेना वा यो दिप्सन्ति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाहास्मान् ॥१०॥
 माह मघोना वरुण प्रप्रस्थ भूदिदावन् आ विद् शूनमापेः ।
 मा भाया राजन्तसु गमद्विस्थानं वृहददेम विद्वय सुवीर्य ॥११॥



६ वरुण मेरा पक्षीय जगत् का दूत है, वरुण मेरे अन्तर्धान मुझसे क्या करे । जैसे रस्मीमे बछड़ेको झुकाया जाता है, वैसे ही वरुण मुझे लवनाय; क्योंकि वरुण प्रलय होकर कोई एक पलके लिये भी आधिपत्य नहीं कर सकता ।

७ अरुण वरुण, तुम्हारे वरुणों अरुणों करनेवालों को जो आहुति मारते हैं, वे हमें न मारें । हम प्रकाशसे निर्वासित न हों । हमारे जीवने के लिए हिंसकता छोड़ो ।

८ हे बहुमथानोत्पन्न वरुण, हम भूत, वस्तमान और मानव्यसु समर्थों के दुःखों के लिये नमस्कार करेंगे ; क्योंकि हे अहिंसनीय वरुण पर्वतकी तरह तुम्हारे साथ अकटुत कम आश्रित हैं ।

९ वरुण, पूर्वजोंने जो दण्ड किया था, उसका पक्षधर करो । हम सत्य में जो श्रुण करता हूँ, उसका मेरे परिशोध करो; ताकि वरुण, मुझे दूतकर अपनी सत्ता पर जोन करनेकी आवश्यकता न हो । शृणके कारण शृणकताके लिये मारो अनेक उपायोंका प्रयत्न हो नहीं हुआ । वरुण, हम उन स्त्री उपायोंमें जीवित रहें, ऐसी आज्ञा करो ।

१० राजा वरुण, मैं श्रुत हूँ । भूमि जो लम्बु जोश स्पन्दही भयंकर बात कहते हैं, उनसे मुझे बचाओ । तस्कर या बृक मुझे मारना चाहता है । उससे मुझे बचाओ ।

११ वरुण, मुझे विमल घनो और प्रभु-दानशाली ज्वन्तेक पास जातिकी दग्धिकाकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे आवश्यक घनका अभाव न हो । हम पुत्र भी पौत्रत्वसे होकर हम यज्ञमें प्रभुत्व स्तुति करेंगे ।

२८ सूक्तः विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

धृतावता आद्रया शिपिभारं मत्कन्त रत्नसूरिवराः ।
 शृण्वता वा वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वां अवसे बुवेवः ॥१॥
 यूयं देवाः प्रमातयूयमोजा यूयं द्वेषांसि सनुतयुष्येन ।
 क्षमिष्यन्तारा आमचक्षमममयाचनो मूलानां परं च ॥२॥
 किमुतुः कृणवामापरं किं रुनेन वसध आप्येन ।
 यूयं नो मित्रावरुणादिने च स्वस्तिमिन्द्रामरुता दधात ॥३॥
 ह्ये देवाः यूयमिदापयः स्थ न मूलत नाधमानाय मह्यम् ।
 मा वो रथो मध्यमवाहुने भून्मा युष्माश्चत्स्वापिप् श्रमिष्म ॥४॥
 प्र त एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
 आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माश्चि पुत्रं विमिव प्रभाष्ट ॥५॥
 अर्वाञ्चा अद्या भवता यजत्रा आ वा हार्दि मयशना व्ययेथम् ।
 द्राधं नो देवा निजुरो वृकस्य द्राधं कर्तादवपता यजत्राः ॥६॥

१ हे वतकारी, शीघ्र समस्तशक्ति और सबके प्राप्तिनी आर्पण, तुम पातला चाँक शम्भेकी तरह मेरा अपराध दूर देणमें फेंक दो । मित्र और वरुण, तुम्हारे मंगल-कथनों में जाकर, इन्द्रके पल्लवे, तुम्हें बुलाता हूँ । तुम हमारी स्तुति सुनो ।

२ देवगण, तुम्हीं अनुप्रादक और बल हो । तुम होयशक्ति हम पर पावने अलग करो । शत्रु-निमिष, शत्रुओंको पराजित करो । वर्तमान और भविष्यतुम्हें हमें सुखी करो ।

३ देवगण, अब और पीछे तुम्हारा कौन कार्य हम विद्ध कर सकेंगे ? वध और सनातन प्राप्त्य कार्य द्वारा हम तुम्हारा कौन कार्य सिद्ध कर सकेंगे ? मित्रावरुण, अर्दिष्टि, इन्द्र और मरुद्गण, तुम हमारा मंगल करो ।

४ देवगण, तुम्हीं हमारे बन्धु हो । हम तुम्हारे प्रार्थना करने हैं । कृपा करा । हमारे यज्ञमें आनेमें तुम्हारा श्व मन्व-गति न हो । तुम्हारे समान बन्धु पाकर हम आस्त रहें ।

५ देवगण, तुम लोगीक बीच एक मनुष्य होकर मैंने अनेकविध पाप नष्ट कर डाले । जैसे पिता कुमार्गगामी पुत्रको उपदेश देता है, वैसे तुमने मुझे उपदेश दिया है । देवी, मागे पाश और पाप दूर हैं । जैसे व्याध बन्धके सामने पक्षीको मारता है, वैसे ही मुझे नहीं मारना ।

६ पूजनीय देवा, आज हमारे सामने आओ । मैं इन्द्र तुम्हारे तद्व्यावर्जित आश्रयको प्राप्त करूँ । देवी, वृकके हाथसे मारे जानेसे हमें बचाओ । पूजनीयो, जो हमें आपदुर्म फेंक देता है, उसके हाथसे हमें बचाओ ।

माहं मघानां वरुणस्यैव भूमिद्वयं भाविर्व सूनमापे ।

मा रायां राजनन्तुधमाः पश्य । उहन्तेम । प्रदधे सुवीर्यः ॥५॥

३० सूक्त । १—५ तकके इन्द्र, ६-५ सोम और इन्द्र, ७ के इन्द्र, ८ के सख्स्वती और इन्द्र, ९ के बृहस्पति, १० के इन्द्र और ११ मंत्रके मरुद्गण देवता हैं ।

जगती और षष्ठ्य छन्द ।

सूतं देवाय कृण्वते जायते इन्द्रः र हिमं न समन्व आपः ।

अहर्हृदन्विष्टः पुरो किराया प्रथमः सग आसाम ॥१॥

यो वृत्राय स्निमव्रामोरप्यतु प्र तं जानत्रा चिदुष उवाचः ।

पथा रवन्ताः सुतोपतस्मै दिविदिः धनया यन्वथम् ॥२॥

ऊर्वो ह्यस्यादयन्तश्चिध भः वृत्राय प्र वध अभाम ।

मिहं वसान उपसीमदुदुर्गतिमापुधः वज्रयच्छत्र मिन्द्रः ॥३॥

बृहस्पते ननुयश्चर विष्य वृकद्वन्तो अमुरस्य वीरान ।

यथा जघन्य वृषणा पु निदिश जहि शत्रु मस्माकामन्द्र ॥४॥

० वरुण, मुझे किन्हीं धन और प्रभुत्व इत्यादि प्राप्त करने के लिये अपनी आज्ञाओं की दृष्टि से बातें न कहनी पड़ें । राजन, मुझे नियमित या आवश्यक धन की आवश्यकता है । इस पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत्व स्थापित करेंगे ।

१ वृष्टिकारी, वातमान, स्वर्ग के देव और पुत्र-पौत्र के इन्द्र के यज्ञ के लिये कभी भी जल नहीं रुकता, उसका वात प्रतिदिन चलता रहता है । कभी उसकी पहली सृष्टि हो या ?

२ जिस व्यक्तिने वृत्रका अन्त किया था, उसकी पत्नी माता आदिनिने इन्द्रमें कह दी थी । इन्द्रकी इच्छाके अनुसार नदियाँ, अपना मार्ग बनाती हुई, प्रतिदिन समुद्रकी ओर जाती हैं ।

३ चूंकि अन्तरिक्षमें इन्द्रके वृत्रने मात्र पदार्थों के पर-दण्ड था, इसलिए इन्द्रने उसके उपर वज्र पंका । वृष्टि-प्रद मेघमें आच्छादित होकर वृत्र इन्द्रके सामने होड़ा था । उसी समय ताज्ज्यायुधवाली इन्द्रने उसको पराजित किया था ।

४ बृहस्पति, वज्रके समान शक्ति अन्तरिक्ष के द्वारा भूतलके पुत्रोंको देता । इन्द्र, जैसे प्राचीन समयमें तुमने शक्ति द्वारा शत्रुओंको जीता था, उन्हीं प्रकार इस समय हमारे शत्रुओंका विनाश करो ।

अर्वाक्षद दिवा अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वा ।
 तोक्षस्य सातो तनयस्य भूररस्माँ अर्धं कृणुताविन्द्र गोनाम् ॥५॥
 प्र हि क्रतुं बृहथा यं वसुधा रभस्यस्थां यजमानस्य चोदौ ।
 इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टर्मास्मिन् भयस्य कृणुदमुलाकम् ॥६॥
 न मा तमन्तश्रमन्तात तन्द्रन्त वाचाम मा सुनन्तेति सांमम् ।
 यो मे वृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुस्वन्ममुप गोमिरायन् ॥७॥
 सगस्वति न्वमस्माँ अविडहि मरुस्वना भृषनी जेषि शत्रून् ।
 त्यं निच्छर्धन्तं तविपीषमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभ शरिडकानाम् ॥८॥
 यो नः सनुत्य उत वा जिघत्स्वमिषयाय तं तिगितेन विध्य ।
 बृहस्पत आयुधेर्जपि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परिधेहि राजन् ॥९॥
 अस्माकेभिः सन्धभिः शस्त्रैर्वीर्यं कृषि यानि ते कर्त्यानि ।
 ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हस्वो तेषामाभरा नो वसूनि ॥१०॥

५ इन्द्र, तुम उपर रहते हो । अश्मानीय को ऊपर परनेपर सुमन जिसका दुबारा शत्रु का विनाश किया था, वही पक्षकी तरह कटिब वज्र धूलोको निम्न में सुव पक्ष । जिससे इस लोक अष्टष्ट पुत्र, पौत्र और गोघन प्राप्त कर सकें, वेसी ही इधे तुम समृद्धि हो ।

६ इन्द्र और सोम, जिसका तुम भंडार करो । तुम द्वयोको सम्मिलित करो । यजमानोंको शत्रुओंके विरुद्ध प्रेरित करो । इन्द्र और सोम, तुम मेरी रक्षा करो । हम अयस्यन्तर्मे भय-शुभ स्थान बनाओ ।

७ इन्द्र मुझे कृपा न दे, अरु न कर, लाजसी न बनाए । इस कमी यह न करो कि, सोमाभिषेक न करो । इन्द्र मेरी अभिलाषा पूरा करो, दमोष्ट हान करो, यज्ञको जानते और गो-समुह लेकर अभिषेक-कृतिक पास उपस्थित होते हैं ।

८ मरुद्वती, तुम हमें बच आ । मरुतीं साथ दृक्छे हाकर दृक्छा-पूर्वक शत्रुओंको जीतो । इन्द्रने शुराभिमानों और स्पृष्टावान् शमिडोति प्रघात (शयडःसर्व) को मारा था ।

९ बृहस्पति, जो अमर्षित शर्मे छिपकर द्वारा प्राण-नाश करनेका अभिलाषी है, उसे खोजकर तीखे हथिहारसे छेदो । आयुधसे हमारे शत्रुओंको जीतो । राजा बृहस्पति, दोहकारियोंके विरुद्ध प्राण-नाशक वज्र चारो ओर फेंको ।

१० शूर इन्द्र हमारे शत्रु-इन्द्रा वारोंके साथ अपने सन्ध द्वातीय वीर-कार्योंको सम्पन्न करो । हमारे शत्रु बहुत दिनोंसे गर्वपूर्ण हो रहे हैं । उनका विनाश कर उनका धन हमें हो ।

तं वः शर्धं मारुतं सुस्रुगिणापनुर्वं नमसा देव्यं जन्म ।
यथा रधि स्रजनीर नशामहा अपत्यसक्तं श्रुत्यं दिव्येति ॥ ११ ॥

—००००००००—

३१ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।
अस्माकं मित्रावरुणांतं रथमादित्यैरद्वैतं सुभिः सन्नाभुषा ।
प्र यद्वयो न पृथग् दस्मदस्पांश्च श्रवस्पांश्च हृषीयन्ता ननपद् ॥ १ ॥
अथामान उदेवता सजोपसा रथं देवासा अभिनिक्ष्वाजयुम् ।
यदाशवः पथामिस्तिवता रजः पृथिव्याः सानी जहुनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥
उनस्य न रन्द्रो विश्वत्पणिदिवः शर्धेन मारुतेन सूकनुः ।
अनु सु स्थान्यवृक्कामिरुतिमोरथं मते सनये वाजसालये ॥ ३ ॥
उनस्य देवा भुवनस्य सश्रणिस्त्वष्टा प्राभिः सजोया जनुवद्वथम् ।
इला भगो वृहद्विबोत रोदसी पूषा पुरन्धिर्गविक्वावधावती ॥ ४ ॥
उम त्वं देवी सुभगे मिथूदशापास्तनक्तो जगतामपीजुया ।
पुत्र यहा पृथिवि नव्यमा धनं स्यादुश्च वयस्त्रियया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

१। मरुतों, हम सुभगा अभि-पासों सुभि और न नक्तों द्वारा वृहदे देव और प्रादुर्भूत तथा एकत्र बल-की स्तुति करते हैं, ताकि हमके द्वारा हम प्राप्त-दत्त चीज अपत्यवाते होकर प्रकसनीय धनका उपयोग कर सकें ।

१ जिस समय हमारा रथ जन्नाभिलाषी, मदमत्त और वन-विषमण पक्षियोंकी तरह निवास-स्थानसे दूरे स्थानको जाता है, उस समय हे मित्र और वरुण, तुम लोग आदित्य, रुद्र और वसुओं साथ मिलकर उसको रक्षा करते हो ।

२ समान प्रतिभागों देवा, इस समय हमारे रथको रक्षा करो । यह अन्न स्वाजनेके लिये देहमें गया है । इस रथमें जाते हुए घोड़े कदमोंसे मार्ग से करते और विश्वतोर्ण भूमिके लम्बित प्रवेश-द्वारोंसे निकलते हैं ।

३ अथवा—सर्वेश्वरी इन्द्र—तत्त्वोंके पराक्रमसे एक ही समय में ऊपर, नीचे, बाएँ, दाएँ, आगे और पीछे, हिंसा-शून्य लावण्यके द्वारा महा-धन और अन्न-प्राप्तिके लिये हमारे रथको अनुकूल हो ।

४ अथवा—संसारके पंचमीय बह्म स्वष्टा देव, देवपत्नियों साथ, पतिव्रतों द्वारा हमारे रथको बलात् । इला, महादीर्घा इमान् भग, वावाहुवती, बहुधी पूषा और सूर्या के साथ दानों की-प्राप्ति-करके हमारा यह रथ चलाये ।

५ अथवा—प्रसिद्ध, धृतिमयी, सुभगा, परस्पर-द्वन्द्वीय और जीवित-मृत-यन्त्रों तथा और राति हमारा रथ चलावे । हे आकाश और पृथिवी, तुम दोनोंको, यह सन्तानोंसे सुकृत करवा हूँ । स्यावत मादि आदि अन्न देता हूँ । ओषधी, सोम और पशु—मेरे तीन प्रकारके अन्न हैं ।

उत ना शशसुजिनापि इत्यथिर्व्युपगज पकः दुत ।

अथ क्रमुदाः स्वातः कना दधपावपादाशुहेमा विथा शवि ॥ ६ ॥

पता वा अश्वमुद्यता यजत्रा अतक्षन्नयथा नव्यसेसम् ।

श्रवस्ववो वाजं चकानाः सतिर्न रथ्यो अहधीतिमश्याः ॥ ७ ॥



३२ सूक्त । १ के छावापृथिवी, २—३ के इन्द्र, ४—५ के राका, ६—७ के
सिनीवाली और ८ के छ वैवियाँ देवता हैं ।

अनुष्टुप् और जगती छन्द ।

अस्य मे छावापृथिवी ज्ञायता भूतमवित्री ब्रह्मः सिप सतः ।

ययोनायुः प्रवरते इदं पुनः प्रस्तुते वस्युषोमतेदधे ॥ १ ॥

आ नो गुह्या रिपः काकोरपदमन्मान आभवा रोगता दुच्छुन म्यः ।

मातोविधीः सखदा रिपि रादयः पुस्रायता यजसा तक्षेमते ॥ २ ॥

अहेलता मनसा अष्टिमापः पुदाते पेत् पिपः पामस्तश्चयः ।

पदाधिराणं वज्रभा नः कः जलं इदं लोणिः पुरुहन् विरः ॥ ३ ॥

१ देवगण, हम हमारी स्तुतिकी इच्छा करना । उस तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं । अन्मरीक्ष-जन्त अहि देवता (अहिबुध्ना), सूर्य (अतः पकपात), जिन, अश्वविगाय हन्त (राका) और अविता हमें ब्रह्म प्रदान करें । शीघ्रगामी जल-नपता (अग्नि) इसी स्तुतिसे प्रसन्न हो ।

७ यजनीय विश्वदेवगण, हम तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं । हम सर्वोपेक्षा स्तुति-योग्य हो । अन्न और बलके अभिलाषी मनुष्योंने तुम्हारे नाम स्तुति करता है । रथके अश्वकी तरह तुम्हारा बल हमारे लिये आवे ।

१ छावापृथिवी, जो अन्न, जल और सूर्य के ब्रह्मत्वसे ही ज्ञायता प्रकट होकर हमें अन्न-प्राप्त होनी । तुम्हारा अन्न सर्वोपेक्षा जगत्प्राप्त करनेवाला है । अतः अन्न-प्राप्ति के लिये हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । अन्न के अभाव में महाम्पेक्ष द्वारा तुम्हारा स्तव करेगी ।

२ इन्द्र, सूर्यकी पुष्टि करनेवाले सूर्य के अन्न के अभाव में हमें अन्न-प्राप्ति के लिये तुम्हारे वक्ष्यमें नहीं करना । हमारी मैत्री नहीं हूना । इससे अन्न-प्राप्ति के लिये हम तुम्हारे अश्वजन्त की स्तुति करना । तुम्हारे पास हम यही कामना करते हैं ।

३ इन्द्र, प्रसन्नचित्तसे सखकरी, दुरधवली, मोठी और मजबूत गायक से आना । इन्द्र, तुम्हें सब बुलाते हैं । हम बहुत जोर चलाते हैं । हम ब्रह्मभाषी हैं । मैं दिन-रात तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।

राकामहं सुहवां सुष्टुतां हुवे शृणोतु नः सुभगा बाधतु त्वम ।
 सीव्यस्वपः सूच्याच्छिद्यमानया दधातु वीरं शतवायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥
 यास्तं राके सुमतयः सुपेशसो यामिदंदासि दाशुषे वसूनि ।
 तामिनो अथ सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
 सिनोवालि पृथुष्टके या देवानामसि स्वसा ।
 जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिद्दृढिनः ॥ ६ ॥
 या सुबाहुः स्वडगुरिः सुप्रमा बहुभुवरी ।
 नस्ये विशपत्ये हविः सिनोवाले जुषोतन ॥ ७ ॥
 या प्रह्वर्या सिनोवाली या राका या सरस्वता ।
 इन्द्राणीमह उतरो वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥



४ अनुवाक । ३३ सूक्त । रुद्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।
 या ते पितृमैत्रतां स्यमन्तमानः सारथ्यं सन्तुशो युयोधः ।
 यधि नो दीरा अयन्ति क्षमेत प्रजामेमाह रुद्र प्रजार्थि ॥ १ ॥
 न्यादन्ते ही, रुद्रशक्तमेषि, पते किमा अशीय मेषजमिः ।
 नस्यमृष्टो नो निरुत यही स्वमीवाश्रानयस्वा निष्चीः ॥ २ ॥

४ में उत्कृष्ट शक्ति हुवान् आरुण्य-योग्य राका या पुणिमा रात्रि देवीको बुलाता है । वह सुभगा है, हमारा गणवान् एवम् । वह स्वर्गो हमारा अभिप्रेत जानकर अच्युत पृथ्वीके हुवान् हमारे कर्मको बुने । वह विमान् वसुधैवकुतूबान् और वीर्यवान् पुत्र पदान् कर ।

५ रा देवी, हम सन्निभ हस्वन् अलमृष्टो हव्यवासी या देवि । हा आत्र प्रथन्त निनमे, सस्ये अनुपहके साथ, यथाहा शोभन्त-भाग्यवती हुवान् उवाचमे रुद्र प्रजां यधि रात्री नः ।

६ हा प्रभुल ज्ञाता सिनोवाले (सर्वदायक) नस्ये हव्यं । हा देवि प्रदत्त हव्यको सेवा करो । हमें अपना दो ।

७ सिनोवाली (जिस दाज्य या देवताको) सुप्रमा नस्ये हव्योवासा, सुप्रमावती और बहुभुववित्री है । सन्तो लोक हविषा वीर्य पदम् एवम् इन्द्राणी ।

८ या सुहृग्, वहु भुवना (भुवना) है, हा प्रजां देवि । हा अत्र सरस्वती, इन्द्राणी बुलाता है । मैं आश्रयके त्वय इन्द्राणी और स्वस्ति त्वय वरुणाणी बुलाता हूँ ।

१ मरुतोके पिता रुद्र, सुबाहु विष्णु हुआ सुभगा हमारे । हा काय । सूर्य-वर्धने हमें अलग नहीं करनः । हमारे वीर पुत्र रुद्र, ओंको पराजित कर । रुद्र, हा सुभगे और देविदेवि प्रजां देवि ।

२ रुद्र, हम सुभगरी ही तुम सुवकारी जीवितके द्वारा सौ जय जीवित गये । हमारे शत्रुओंको विनाश करो । हमारा पाप सन्निशतः दूर कर दो । सन्निशरीर्यपी व्यापकता भी दूर करा ।

श्रेष्ठो ज्ञातस्य रुद्रः श्रियांसि तवस्त्वमस्त्वसं वज्रवाहा ।
 पापिणः पारमहंसः स्वान्त दिव्या अशोनीरपमो युगोपि ॥ ३ ॥
 माता रुद्रं चुकुलमा नमोभिर्मा दुष्टं पी तपसा मा महती ।
 उन्नो वीर्यं अपेयं भेषजं भिषिपत्तमं स्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥
 हवीमभिर्हवने यो हविर्भिर्गव स्तोमो रुद्रं दिवीय ।
 ऋदुदरः रुद्रता मा नां अयं वधुः सुशिवां शोभन्मताये ॥ ५ ॥
 उन्मा ममन्द वृषभा मरुत्वान्तवश्रीयसा वयसा नाभसानम ।
 पूर्णाचिच्छामरपा अशीया विद्यानेयं रुद्रस्य सन्नम ॥ ६ ॥
 कस्य ते रुद्र मृतकाकुंस्त्वो यो अस्ति भेषजां जलाषा ।
 अपमर्ता रक्षो वेत्यस्याभो नृ पा वृषभा लक्षणीयाः ॥ ७ ॥
 प्र वधुवं वृषभाय दिवनीचं महो मां रुद्रं निमीर्यामि ।
 नमस्वा इन्मन्तीकितं नमोभिमृ तामास्ति त्वमं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥
 स्थिरंभिर्ग्रीः पुरुषाय उदा पञ्च शुक मिः पिपा रो विरुहो
 ईशानादस्य भवतस्य भूर्देवायोषट् द्वातलयमं ॥ ९ ॥

३ रुद्र, ऐश्वर्यमें तुम सबसे ऊँच हो। ते वज्रपाश, भुवनेमें तुम सर्वोच्च भूतृक्ष ॥१॥ पास पापन उस पास में रहने हमारे पास पाप न आने पाव।

[illegible][illegible]

६ में प्राथम्य करता हूँ कि, जनसंख्या को संतुलित करने के लिए जनसंख्या नियंत्रण के जैसी व्यक्तियों द्वारा प्रमुख ध्यान को आश्रित करता है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि, जनसंख्या को संतुलित करने के लिए मैं सक्षम व्यक्ति बनूँगा।

● शत्रु, तुमहारा वह सम्पत्ति काट कष्टों से, पिछले १० वर्षों से तुम्हारे अन्दर बसाई जा रही है। अन्तर्गत
रुद्र, देव-पापके विचातक होकर तुम मुझ क्षत्रिय राजा करा

द वञ्चवण्, अक्षयष्टनी आदि पौष्टिक पदार्थों का अर्थ होता है। इसी प्रकार हम उच्चारण करते हैं।
हे स्तोता, नमस्कार द्वारा तेजस्वी शस्त्री तुम को इस प्रकार सम्बोधित करते हैं।

६ दृढाङ्ग, बहुरूप, उग्र और अजय्य वस्त्रों से परिधान किये हुए व्यक्ति के रूप में प्रकट होते हैं। स्वयं सामे भुवनोक्ति अधिपति और भक्त हैं। इनका बल अस्त्रों से होता है।

अहं नमस्य साधकानि धन्यतन्त्रिणो यजते विश्वरूपम् ।
 अहं नमस्त्वयै विश्वरूपे न वा आश्रीया रुद्र रुद्रस्मि ॥१०॥
 सृष्टिं प्रते नतसदं धृवानं सृष्टं तं साधुगुणजमुग्रम् ।
 सृष्टा जायते रुद्रस्त्वानांशे ते अस्मन्निगमन् संताः ॥११॥
 कुमारश्चैव ऐतरे वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रा पयन्तम् ।
 भूरेदीताय स्तुतिं गुणान् स्तुतस्त्वं भयजा गम्यस्मे ॥१२॥
 या वा भयजा मरुतः शून्यानि या शन्तमा नृपणा या मयोभु ।
 याति मनुगुणाना पिता नस्ता शं न योश्च रुद्रस्य वशिम् ॥१३॥
 परिणो देता रुद्रस्य वृज्या परि रूपस्य कुर्मदिमंही गान्
 अवीक्ष्यता मध्वद्वयस्तनुषा साद्वस्तोकाय ननयाय मूल ॥१४॥
 एव वभ्रा त्वयमर्चकितान यथा देव न हृणाप न होंस
 हवनधून्ना रुद्र ह वोधि बृहददेम विदथ सुवीराः ॥१५॥



१० पूजायोग्य रुद्र, तन्त्र प्रार्थना है । पूजक, तम नाना कर्षिताने ही और पूजनीय निष्कको धारण किया है । अर्चनाएँ, तम भाग व्यापक नमस्कारों रक्षा करते हैं । तम भाग अप्रज्य अधिक बली दोरे नहीं है ।

११ हे स्तोता, विश्वरूप नमस् । तुम, गुणों के सह मयस्क और शब्दार्थक विनाशक तथा उग्र रुद्र की स्तुति करो । रुद्र, स्तुति करनेपर तम इष्टे प्रसाद करते हैं । तम भाग तम रुद्र का विनाश करे ।

१२ जैसे आशीर्वाद तम समय विनाशो पुत्र परस्पर करवा है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आनेके समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । रुद्र, तुम वृद्धनदाता और साधुर्गोप दाता हो ; स्तुति करनेपर तम इष्टे आपधि देते हो ।

१३ मरुतो, तुम्हारे ही नामके आर्षाध है, हे प्रमाणदर्शितज्ञ तुम्हारी ही आर्षाधि अतीव सुखदात्री है, जिस आर्षाधिको हमारे पिता मनुगुणाना न पढ़ा धनदत्त और भयानक आर्षाध हम चाहते हैं ।

१४ रुद्रका हेमि-आधुष रूप झाड़ू की दीप रुद्रका मनुष्य पुनर्निर्माण करने होते हैं । मेवन-समर्थ रुद्र, धनवान् यजमानके प्रति अपने धनपुत्रों का उग्र शिष्यता प्रकाश हमारे पुत्रों और पौत्रोंको सुखी करो ।

१५ अभीष्टवर्षी, वज्र शर्मा, शीतमान, सर्वज्ञ योग्य और न आहवन्, जानेकारने रुद्र, हमारे लिए तुम यहाँ अभीष्ट विवेचना करो कि, हमारे पुत्र, कली लक्ष्मी, न केवल विष्ट न करो । हम पुत्र और पौत्रवासे होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

३ । सूक्त । मरुद्गण देवता । जगतः और त्रिष्टुप् छन्दः ।
 धाराधरा मरुतो धृष्टवाजसो मृता न भीमास्तविषोभिर्गच्छन्तः ।
 अग्नयो न शुशुचाना अजीपिणो भूमि धमन्तो अप गा अकृण्वन् ॥१॥
 द्यावो न स्तुभिश्चितयन्त स्वादिनो व्यभ्रिया न न्युतयन्त वृष्टयः ।
 रुदो यद्वो मरुतो स्वस्वभस्मा कृपाजनि पृथ्याः शुक्र उच्यन्ति ॥२॥
 उक्षन्ते अश्वाँ अन्यौ इवाजिप् नदस्य कर्णं स्तुग्यन्त आशुभिः ।
 हिरण्यशिप्रा मरुतो दन्तिध्वजः पृक्षं याधपृषतीभिः समन्यवः ॥३॥
 पृक्ष ना विश्वा भुवना त्वक्षिणं मिश्राय वा सदमा जीमदानवः ।
 पृषवश्वासो अतवभ्राघस ऋजिप्याना न न्युनेप् धृपदः ॥४॥
 इध्वन्वभिर्धनुभी रप्सादूर्ध्वभिर्वस्वभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
 आ हंसासो न स्वसराणि गन्त न मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥
 आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवा नरा न शंसः स्वनानि गन्तन ।
 अश्यामिद पिप्यन् धेनुमूधनि कर्ता धिर्य जरिते वाजपेशस्तम ॥६॥

१ जलधाराले मरुत लोग आकाशको छिपा लेते हैं । उनका बल दुष्मणों पराजित करता है । वह पशुकी तरह भयंकर हैं । वे बल दुबारा संसारको व्याप्त कर लेते हैं । वे वहिबी तरह हीमिमान् और जलमे परिपूर्ण हैं । ये अमणकत्तों मेघको इधर-उधर भेजकर जलको गिराते हैं ।

२ छवर्णहृदय मरुतो, चूंकि मेघन-समर्थ होने प्रसन्न । रिमिल उदरमें दुग्ध उत्पन्न किया है, इसलिए, उस आकाश नक्षत्रोंसे छायाभित होता है, वैसे ही, तुम भी अपने आभरणसे छायाभित होओ । तुम शत्रु-भक्षक और जल-प्रेरक हो । तुम मेघरूप विद्युत्तुको तरह शोभित होओ ।

३ तुममें शूजकी तरह मरुद्गण विशाल भुवनको पार करते हैं । वे पक्षिपर चढ़कर शब्दायमान मेघके कानके पाससे होकर द्रुत वेगसे जाते हैं । मरुता, तुम हिरण्य-क्षरस्त्राणवाले और समान-क्रोधवाले हो । तुम वृक्ष आदि कम्पित करते हो । तुम पृषती (बिन्दु-चिह्नित) मृगपर चढ़कर अन्नको लिये जाते हो ।

४ मरुद्गण मित्रकी तरह, हव्ययुक्त यजमानके लिये, सर्वदा समस्त जल लाते हैं । वे दानशील, पृषती-मृग वाले, अक्षय, अन्नवाले और अकुटिलगामी अश्वकी तरह पथिकोंके आगे जाते हैं ।

५ हे समान-क्रोध और शीतमान् आयुधवाले मरुतो, जैसे हम अपने निवास-स्थानपर जाता है, वैसे ही तुम भी महाजलस्रोतवाले मेघोंके साथ और धनु-युक्त होकर विप्र-शून्य मार्गमें, मधुर सोम-रसमे हृत्पन्न हर्ष-काभके लिये, आओ ।

६ हे समान-क्रोधवाले मरुतो, जैसे तुम स्तोत्रमे आते हो, वैसे ही हमारे अभिपूज्य अन्नके पास आओ । घोड़ीकी तरह गायका अघोरेष्ट पुष्ट करो और यजमानका यज्ञ अन्नवाला करा ।

तत्तं शतं प्रसक्तं वाजिनं २० ॥ अथ तत्र ॥ अथर्ववेदिनेः ।
 इह स्तोताभ्यो वृजनेषु कार ॥ अथि ॥ अथर्वमण्ड ॥ अथर्वमण्ड ॥ ७॥
 यद्युज्जते मरुतो कवमरुदभ्योश्चानुयुष ॥ अथर्वमण्ड ॥ ८ ॥
 यनुने शिपो स्वभरेषु विमानं जगत् ॥ अथर्वमण्ड ॥ ९ ॥
 यः नो मरुतो वृकतानि अन्ता निदुधं तस्मा रघुनाथिषः ॥
 कतयन् तपुषा चक्रिषामि तमव रुद्रः अश्वतो वनतः दधः ॥ १० ॥
 निजं कृतं मरुतो यथा चेदितं पृथग्यः यदुदरप्ययसो रुद्रः ॥
 यदा निहं जवमभ्यस्य रुद्रिषामिन्त जगत् ॥ अथर्वमण्ड ॥ ११ ॥
 तान्वा मरुः मरुत एवमभ्यो विष्णु उपवस्य प्रभृथं जगत् ॥
 हिमपथनीनं ककुभन्यतस्त्रुः ॥ अथर्वमण्ड ॥ १२ ॥
 ते वृषावाः प्रथमा यजुर्भुविरे ॥ ते तं हिन्वन्त्ययो वृष्टिपिबुः ॥
 अथ न मरुतो वृषाणां जगत् ॥ अथर्वमण्ड ॥ १३ ॥
 ते धोणीभिर्मरुतभिर्नाद्विर्भुवः ॥ अथर्वमण्ड ॥ १४ ॥
 विष्णुममना अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

७ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

८ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

९ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

१० मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

११ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

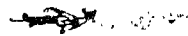
१२ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

१३ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

१४ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

१५ मरुतो, तुम इमे अन्त्येन पातन्ता सुकान्द्र ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥ अथर्वमण्ड ॥ १५ ॥

तां दधाना महि बहूनामृतं स्पृशद्वा नमसा गृणीमसि ।
 त्रिना न यान पञ्चहोतृनामृतं अग्नितद्वराश्वक्रिवावसे ॥ १४ ॥
 यथाग्निं पाययथात्यं हो यथा निदा मुञ्चथ चन्दितारम् ।
 अर्वाचो सा मरुता या व ऊतिरोषु वाध्रं व सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥



१४ सूक्त । अपां नपात् देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
 उपेमस्तुक्षि वाजयुवचस्यां चनो दधीत नाद्या गिरौ मे ।
 अपां नपादाशुहेमा कुचित् स सुपेशसस्करति अपिपिञ्जि ॥ १ ॥
 इमं स्वर्गमेतद् आसुनष्टं यत्नं वोच्यते कुचितस्थ वेदत् ।
 अपां नपात्सूर्यस्य मह्यः विश्वान्यस्यां भुवनं अजान ॥ २ ॥
 समन्वाध्वन्युपवृत्त्यस्याः सप्तारयुर्वे नरा पृणन्ति ।
 तमुशुचि शुचयो दीदिवसि मया अपानं पारतरुधुरापः ॥ ३ ॥
 तमस्मेरा युवतयो युवानं ममृज्यमानाः परियन्त्यपः ।
 मशुकमिः शिकमीरेवदस्मै दावायानिधमा वृषतिर्जिगातु ॥ ४ ॥

१४ मरुतोमे वरणीय एतको दावायां करते हैं, अर्वाचो उद्योतं गिरौ, अर्वाचो द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं ।
 अमोघ-सिद्धि के लिये, वक्र द्वारा, त्रिना न यान सुन्दर प्राण, अजान, समान, वरुण और उद्योत जादू पाँच होनाओं (मरुतो) को आवृत्ति करते हैं ।

१५ मरुता, तम त्रिष्य आश्वानो नावावक्रं पारतरुधुरापः, जिससे स्वर्गाको शङ्कुके हाथों गन्क करते हैं, मरुतो, तुम्हारा वही आश्रय हमारे भगवान् करते ।

१ मैं अन्नकी इच्छासे इस स्तुतिसे उन्नीत करता हूँ । अष्टादश्या और श्रद्धा जता अपा नपात् (जल-पौष्टि अग्नि) नामके देवता हमें दया अन्न और सुन्दर स्वरूप की उनको प्रार्थना करता हूँ । वह स्तुतिको पसन्द करते हैं ।

२ उनके लिये हम हाथों उद्योत इस मीठा अन्न तद् उन्नीत को गेद वह हमें बार-बार जान । स्वामी अपां नपात्ने शत्रु-क्षपणकारी अन्नो समस्त भुवनको उपरक्त करता है ।

३ कोई-कोई जल इच्छा होता है, उल्लस स्थाय कृपा, मित्रता इत्यादि सब समुद्रों बबबानलको प्रसन्न करते हैं ।
 विशुद्ध जल निर्मल और दीर्घमान् अपां नपात् नामके देवताको पारा और देकर रहता है ।

४ उपरहित युवतो जल-संश्लिषि, युवाको तरफ, अपां नपात् देवताको अलङ्कृत और परिप्रेषित करती है । इन्धन-रहित और धूल-पूत अपां नपात् हमारे जनजाति अन्नको उत्पत्तिके लिये जलके बाध निर्मल तेजा बलसे दीप्त है ।

अस्मै बहूनामनामाय सरस्ये यज्ञैर्विधेय नमसा हविभि ।
 संस्तानुमाजिमे दिक्षिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परिवन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥
 स ईं वृषाजलयत्तासुगर्भं स ईं शिशुर्धर्षति तं रिदन्ति ।
 सो अपां नपादनभि म्हातवर्णोन्यस्येवैह तन्वा बिवेप ॥ १३ ॥
 अस्मिन् पदै परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीक्षांसम् ।
 आपोनप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परिदोषन्ति यहीः ॥ १४ ॥
 अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायाशांसमुमितिमघ वज्रयः सुवृक्तिं ।
 विश्वं मृद्धं यद्वन्ति देवा बृहद्वदेम विदध सुवीरः ॥ १५ ॥



३६ सूक्त । १ के इन्द्र २ और मधु, के मरुद्गण और माध्व, ३ के त्वष्टा और
 शुक्र, ४ के अग्नि और शुचि, ५ के इन्द्र और नम तथा
 ६ मंत्रके नमस्स्य देवता हैं । जगती छन्द ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपोधुक्षन्त सीम विभिरद्रिभिर्नरः ।

पिवेन्द्र स्वाहा प्रहृतं वषट्कृतं होत्रादासोमं प्रथमोय ईशिपे ॥ १ ॥

१२ अपने भित्त और बहुत देवोंके आति कर्षा यजाम देवताकी, यज्ञ इन्द्र और नमस्कार द्वारा, हम परिचर्या करेंगे । मैं उनके उन्नत प्रदेशको सली सीमा अंकित करूंगा । मैं काष्ठ और अन्न द्वारा उनको पारण करता और मंत्र द्वारा उनकी स्तुति करता हूँ ।

१३ सेवन-ममथे उन अपां नपात्ने इस बार जलके तीन गर्भ उत्पन्न किया है । वही कभी पुत्ररूप होकर जल पीते हैं । सारे जल उन्हींकी जायता है । दीप्तियुक्त वही स्वर्गीय अग्नि हम पृथिवीपर अन्य शरीरसे व्याप्त है ।

१४ अपां नपात् उत्कृष्ट अन्न यज्ञ में दृष्ट है । यह अन्न वज्रात् प्रविशित दीप्तियुक्त है । महान् जल-समूह उनके लिये अन्न होते हुए सत्त्वयन्त द्वारा उत्कृष्ट नैवेद्यन दिये हुए है ।

१५ अद्भुत, तुम होषर्षेय पर । पद-नमस्स्य इन्द्र, मे मरुद्गण पदम लाया हूँ । यजमानके हितके लिये धरचित स्तुति लेकर आया हूँ । समस्त देवगण मे नम्रयाग करके, जल सब प्रसार हो, पशु और पौधवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सब ।

१ इन्द्र, तुम्हारे हृद्येयसे प्रेरित यह सोम गव्य और जलसे युक्त है । यज्ञके नेता लोग इस सोमको प्रस्तरखण्ड द्वारा आभूषित करके मेष-लोममय दक्षापा द्वारा इसे संस्कृत करते हैं । इन्द्र, तुम सारे संसारके ईश्वर हो । सारे देवोंके प्रथम स्वाहाकारमें अग्निमें अक्षिप्त और वषट्कार द्वारा त्यक्त सोम होताके पाससे पान करो ।

यज्ञैः सम्मिश्रता पृथ्वीमिहृष्टिभिर्म्यामञ्छुभ्रासो अङ्गिषुप्रिया उत ।
 आसद्या बहिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादासोमं पिबतादिवो नरः ॥ २ ॥
 अमेवनः सुहृदा आहिगन्तानि बहिर्हिपि सवतनारणिपुन ।
 अथामन्स्व जुजुषाणो अश्वसस्त्वष्टर्द्वेभिर्जनिभिः सुमङ्गणः ॥ ३ ॥
 आवक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशनहोतर्निषदा योनिषु त्रिप ।
 प्रतिधीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाम्नीध्रात्तव भागस्य तृप्नुहि ॥ ४ ॥
 एषस्य ते तन्वो नृग्नवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्योर्हितः ।
 तुभ्यं सुतो मधवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादातृपत् पिब ॥ ५ ॥
 जुपेथां यज्ञं बाधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
 अच्छा राजाना नम एतवावृतं प्रशास्त्रादापिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥



२ यज्ञके साथ संयुक्त, पृथ्वीयोजित रथपर अवस्थित, अपने आयुधसे शोभित, आभरण-प्रिय, भरत वा पदके पुत्र और अन्तरीक्षके नेता महतो, तुम कुशपर घेठकर पोताके पाससे सोम पान करो ।

३ शोभन आह्वानवाले देवो, तुम हमारे साथ आओ, कुशपर घेठो और विहार करो । अनन्तर हे स्वष्टा, तुम देवों और देवपत्नियोंके शोभनीय ठलके साथ अन्नकी सेवा करके तृप्ति प्राप्त करो ।

४ मेधावी अङ्गि, इस यज्ञमें देवोंको बुलाओ और उनके लिये ब्रह्म करो । देवोंके आह्वानकारी अङ्गि, तुम हमारे हृदयके अभिलाषी होकर गार्हपत्य आदिके तीनों स्थानोंपर घेठो । होमके लिये तत्पर वेदीपर लाये हुए सोम-रूप मधु स्वीकार करो । अग्नीध्रके पाससे सोमपान करो और अपने अंशमें तृप्त होओ ।

५ धनवान् इन्द्र, तुम प्राचीन हो । जिस सोम द्वारा तुम्हारे हाथमें अश्व-विजयी सामर्थ्य और बल है, वही तुम्हारे लिये अमिषुत और आहृत हुआ है । तुम तृप्त होकर ब्राह्मण ऋत्विक्के पाससे सोम पान करो ।

६ हे मितावण, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो । होता घेठकर चिरन्तनी स्तुतिका उच्चारण करते हैं । तुम हमारा आह्वान सुनो । तुम शोभावाले हो । ऋत्विकों द्वारा परिवेष्टित अन्न तुम्हारे सामने है । इस मधुर सोमरसका, प्रशास्ताके पाससे, पान करो ।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय



३७ सूक्त । १—४ द्रविणोदा, ५ के अश्विद्वय और ६ मंत्रके

देवता अग्नि हैं । अगती छन्द ।

मन्दस्व होत्रादनुजोषमन्त्रसोऽध्वर्यवः सपूर्णा वष्टयास्त्रिचम् ।

तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१॥

यसु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्योनामपत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोमं मधुपोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२॥

मेघन्तु ते वह्नयः येभिरीयसेरिषण्यन्वीलयस्वा वनस्पते ।

आयुया धृष्णा अभिगूथा त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३॥

अपादोत्रादुतपोत्रादमत्तोऽनेष्ट्रादजुषत प्रथो हितम् ।

तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४॥

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं च युञ्जामिहवां विमोचनम् ।

पृक्तं दवीपि मधुनाद्विकं नतमथास्मामं पिबतं वाजिनोवम् ॥५॥

१ हे द्रविणोदा वा घनप्रिय अग्नि, होत्र-कृत यज्ञमें अन्न ग्रहण करके प्रमत्त और दृष्ट बनो । अध्वर्युगण, द्रविणोदा पूर्णाहुति चाहते हैं, इसलिये उनके लिये यह सोम प्रदान करो । सोमाभिलाषी द्रविणोदा अभीष्ट फल देनेवाले हैं । द्रविणोदा, होताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

२ हमने पहले जिसको बुलाया है, इस समय भी उन्हींको बुलाते हैं । वह महत्वात-योग्य है, क्योंकि वह दाता और सबके अविपति हैं । उनके लिये अध्वर्युओं द्वारा सोम-रूप मधु तैयार किया गया है । द्रविणोदा, पोताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

३ द्रविणोदा, तूम जिस अवसर जाते हो, वह शूत हो । वनस्पति, किसीकी हिंसा न करके दृढ़ होओ । वर्षणकारी, नेष्ट्राके यज्ञमें आकर ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

४ द्रविणोदा, जिन्होंने होत्राके यज्ञमें सोम पान किया है, जो पिताके यज्ञमें दृष्ट हुए हैं, जिन्होंने नेष्ट्राके यज्ञमें प्रदत्त अन्न भक्षण किया है, वही सुवर्ण-दाता ऋतुवत्क अश्वधित और मृत्यु-निवारक चतुर्थ सोम-पात्रका पान करें ।

५ अश्विनीकुमारों, जो रथ श्रीघ्रगामों, तुम्हारा वाहन और अभीष्ट स्थानपर तुम्हें उतार देनेवाला है, आज इसी रथको इस यज्ञमें हमारे सामने योजित करो । हमारा हव्य सुस्वाद करो और यहाँ आओ । अन्नवासे अश्विद्वय, हमारा सोम पान करो ।

जं पृथग् सार्वभौमं त्रोष्यद्भुतिं ज्योति प्रसज्यं ज्योति सुष्टुतिम् ।
दृष्ट्वेमि विश्वं ऋतुना वसां मह उरन्देवां उशतः पायया हविः ॥६॥

३८ सूक्त । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

उदुष्य देवः सविता सवाय शश्वन्तमं तदपा बहूनिरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो विहिधाति रत्नमथामजद्रीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥
विश्वस्य हि त्रुष्ट्यं देव ऊर्ध्वः प्रबाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आनिमुग्रा अयं चिद्रातो रमते परिज्मन् ॥२॥
आशुभिश्चिद्वान्विमुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षणां चिन्त्ययां अविष्यामनुव्रतं सवितुर्मोक्यामान् ॥३॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तार्यथाच्छकम् धीरः ।
उरुसंतायास्थाद्वयूतूरर्ध्वरमतिः सविता देव आगात् ॥४॥
ननौर्कोसि दुर्यो विश्वमायुवितिष्ठते प्रभवः शोको अग्रः ।
ज्येष्ठं माना सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिपितं सविता ॥५॥

१ अग्निदेव, तम सविधा, आहुति, लोगोंके हितकर स्तात्र और सन्धर स्तुतिमें युक्त होओ । तुम सबके आश्रय-दाता और हमारे इव्यके भूमिलाकी होओ । हमारा इव्य चाहनेवाले मार्ग देवोंको, ऋषियों और विश्वदेवोंके साथ, सोम पान कराओ ।

२ प्रकाशक और जगदुवाहक सविता वा सूर्य, प्रसवके लिये, प्रति दिन उदित होते हैं । यही उनका कर्म है । वह स्तोत्राओंको रत्न देते और अन्धर यज्ञवाले यजमानको मंगलभागी बनाते हैं ।

३ प्रलम्बबाहु और प्रकाशवाले सविता, विश्वके आनन्दके लिये, उदित होकर बाहु प्रसारित करते हैं । उनके कार्यके लिये अतोव पात्र तल-तल-प्रवाहिन हाता है और वायु भी सर्वताव्यापी अन्तरीक्षमें विहरण करता है ।

४ जाते-जाते जिस समय सविता शीघ्रगामी किर्णों द्वारा विमुक्त होते हैं, उस समय वह निरन्तरगामी पथिकों भी विरत करते हैं । जो शत्रुके विरुद्ध जाते हैं; सविता उनकी जानेकी इच्छाको भी निवृत्त करते हैं । सवितारके कर्मके अनन्तर रात्रिकार आरम्भ होता है ।

५ तस्मिन् बुननेवाली रमणीकी तरह रात्रि पुनः आकाशको, भलो भाँति, घेरन करती है । बुद्धिमान लोग जो कर्म करते हैं, वह करनेमें समर्थ होनेपर भी मध्य मार्गमें रक्षित होती है । विशाम-रहित और ऋषुविभाग-कर्ता प्रकाशक सविता जिस समय फिर उदित होते हैं, उस समय लोग शय्या द्वाङ्गत हैं ।

६ अग्निके गृहमें स्थित पशु तेज यजमानके भिन्न-भिन्न गृह और समस्त अन्नमें अधिष्ठित है । माता उवाचने सविता द्वारा प्रेरित प्रजापक यज्ञका श्रेष्ठ भाग पुत्र अग्निको दान किया है ।

समाववति विष्टितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
 शश्वीं अपो विकृतं हित्व्यागादनुव्रतं सवितुर्देवस्य ॥६॥
 स्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वितरुधः ।
 वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥
 याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निर्मिषि जभुराणः ।
 विश्वो मार्ताण्डो वज्रमापशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥
 नयस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमान मिनन्ति रुद्रः ।
 नापातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोमिः ॥९॥
 भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धि नराशंसो आस्पतिर्नो अव्याः ।
 आयेवामस्य सङ्गये रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥
 अस्मभ्यं तद्विधो अद्भ्यः पूथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राघ आगात् ।
 शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युक्तांसाय सवितर्जन्त्रि ॥११॥



६ स्वर्गीय सविताके व्रतकी समाप्ति होनेपर जयाभिलाषी राजा, युद्ध-यात्रा कर चुकनेपर भी, लौट आता है। सारे जंगम पदार्थ घरकी अभिलाषा करते और सदा कार्य-रत व्यक्ति अपने किये आधे कर्मको भी छोड़कर घरकी ओर कौलता है।

७ सविता, अन्तरीक्षमें तुमने जो जल-भाग रख छोड़ा है, जलान्तेषणकर्त्ता लोग चारो ओर इसे पाते हैं। तुमने पक्षियोंके किये बुझाका विभाग किया है। कोई भी सविताके कार्यकी हिंसा नहीं कर सकता।

८ सविताके अस्त होनेपर सदा गमनशील वरुण सारे जंगम पदार्थोंको छलकर, वाण्डनीय और सुगम वास-स्थान प्रदान करते हैं। जिस समय सविता सारे भूतोंको स्थान-स्थानपर अलग-अलग कर देते हैं, उस समय पक्षि-पक्षिगण भी अपने-अपने स्थानको जाते हैं।

९ इन्द्र जिसके व्रतकी हिंसा नहीं करते, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र भी हिंसा नहीं करते, शत्रुगण भी हिंसा नहीं करते, वन्हीं अतिमान सविताको कक्ष्याणके किये इस प्रकार नमस्कार द्वारा हम आह्वान करते हैं।

१० जिनकी स्तुति सारे मनुष्य करते हैं, जो देव-पत्नियोंके रक्षक हैं, वही सविता हमारी रक्षा करें। हम भक्त-नीय, बहुप्रशं और ध्यान-योग्य सविताको बलवान् करते हैं। हम धन और पशुकी प्राप्ति और संघके सम्बन्धमें सविताके प्रिय हों।

११ सविता, तुमने हमें जो प्रसिद्ध और रमणीय धन प्रदान किया है, वह बुलोक, भूलोक और अन्तरीक्षलोक-से हमारे पास आये। जो धन स्तोताओंके वंशजोंके किये शुभकर है, मैं बहुत-बहुत स्तुति करता हूँ कि, मुझे वही धन दो।

३६ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रावाणेष्वतदिदं जरथेगृध्रेवपृक्ष निधिमन्तमच्छ ।

ब्रह्माणेव विदथ उक्थशाभा दूतेव हव्या जन्या पुरुथा ॥१॥

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।

मेने इव तन्वा शुभमाने दम्पतीव श्रुतुविदा जनेषु ॥२॥

शृङ्गोवनः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जभुराणा तारोभिः ।

चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्त्रावाञ्जायातं रथ्येव शका ॥३॥

नावेवनः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।

श्वानेव नो अरिषव्या तनूनां खगलेव विस्त्रसः पातमस्मान् ॥४॥

वातेवाज्या नद्येवरीतिरक्षी इव चक्षपायातमर्वाक् ।

हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥

ओष्ठाविव मध्वास्त्रे वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।

नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

१ अश्विद्वय, शत्रु के प्रति प्रेरित प्रस्तर-खण्डद्वयकी तरह शत्रु की बाधा दो । जैसे दो पक्षी वृक्षपर आते हैं, वैसे ही तुम भी बजमानक निशट आओ । मंत्रोच्चारक ब्रह्मा नामके श्रुतिवक् और देशमें दो दूतोंकी तरह तुम बहुतोंके बुलाने योग्य हो ।

२ अश्विद्वय, प्रातःकाल जानेवाले दो रथियोंकी तरह तुम वीर हो, दो जग्राकी तरह यमज हो, दो स्त्रियोंकी तरह सुन्दर शरीरवाले हो, दम्पतीकी तरह संगत और सबके कमेज्जाता हो । तुम दोनों भक्तके पास आओ ।

३ देवोंमें प्रथम अश्विद्वय, तुम पशुकी दोनों सींगों वा अथवा आदिके दोनों खुरोंकी तरह वेगवान् होकर हमारे सामने आओ । शत्रु-हन्ता और स्वकर्म-समर्थ अश्विद्वय, जैसे दिनमें चक्रवाक-दम्पती आते हैं अथवा जेमे हो रही आते हैं, वैसे ही तुम हमारे सामने आओ ।

४ अश्विद्वय, नौकाकी तरह तुम हमें पार उतार दो । रथके युगकी तरह, रथचक्रके नाभि-फलककी तरह, उसके पारवन्ध फलककी तरह और चक्रके बाह्यदेशके बलयकी तरह हमें पार करा । दो कुक्करीकी तरह तुम हमारे शरीरको हिंसासे बचाओ । दो बर्मकी तरह तुम हमें जरासे बचाओ ।

५ अश्विद्वय, दो वायुओंकी तरह अक्षय, दो नदियोंकी तरह शाश्वतगामी और दो मंत्रोंकी तरह दर्शक हो । तुम हमारे सामने आओ । तुम दोनों हाथों और पैरोंकी तरह शरीरके सुखदाता हो । तुम हमें अष्ट चक्रकी ओर ले जाओ ।

६ अश्विद्वय, दोनों ओंठोंकी तरह मधुर-वाक्यका लक्षणरूप करो, दोनों स्तनोंकी तरह, हमारे जीवन चारणके किये, दूध पिकाओ, दोनों नाकोंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक होओ और दोनों कानोंकी तरह हमारे श्रोता होओ ।

हस्तेव शक्तिमभिसद्दी नः क्षामेव नः समजतं रजोसि ।
 इमा गिरा अश्विना युष्मयन्तोः क्षणोत्रेणेव स्वधिति संशिशीतम् ॥७॥
 एतानि वामाश्वना वधेनानि ब्रह्मस्तोमं गृत्समदासो अकन् ।
 तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद्वदेम विदध सुवीराः ॥८॥



४० सूक्त । सोम और पूषा देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।
 सोमापूपणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
 जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृतवन्नमृतस्य नाभिम् ॥१॥
 इमौ देवौ जायमानौ जुपन्तेमौ तमांसि गृहतामजुष्टा ।
 आभ्यामिन्द्रः पक्रमामास्वन्तः सोमापूपभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥२॥
 सोमापूपणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
 विष्णुवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥
 दिव्यन्यः सन्नं चक्र उचन्वा पृथिव्याभन्या अध्यन्तरिक्षे ।
 तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षं रायस्पोषं विष्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

७ अश्वद्वय, दोनों दायोँकी तरह हमें सामर्थ्य प्रदान करें । बावः पृथिवीको तरह हमें जल दो । अश्वद्वय, ये सब स्तुतियाँ तुम्हें चाहती हैं । तुम धान चढ़ानेके यंत्रके दुवाशा तलवारकी तरह उन्हें तीव्र करो ।

८ अश्वद्वय, गृत्समद ऋषिने तुम्हारी वृद्धिके लिये ये सब स्तोत्र और मंत्र बनाये हैं । तुम नेता और अतीव प्रोतिवाले हो । तुम्हारे पास यह सब स्तुतियाँ आँ । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

१ सोम और पूषा, तुम घन, अलोक और पृथिवीके जनक हो । जन्मके अनन्तर ही तुम सारे संसारके रक्षक हुए हो । देवोंने तुम्हें अमरताका कारण बनाया है ।

२ जनम ही अतिमान् सोम और पूषाकी देवोंने सेवा की थी । ये दोनों अप्रिय अन्धकारका विनाश करते हैं । इनके साथ इन्द्रदेव सहगी धेनुओंके अवःप्रदेशमें एक दुग्ध उत्पन्न करते हैं ।

३ अमीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम संसारके विभाजक, सप्तचक्र (सात ऋतु, मलमास लेकर) वाले संसारके लिये अविभाज्य, सर्वत्र वर्तमान, और पंचरश्मि (पाँच ऋतु, हेमन्त और शीतको एकमें करके) वाले हो । इच्छा होते ही योजित रथ हमारे सामने प्रेरित करते हो ।

४ तुममें एक जन (पूषा) दम्नत अलोकमें रहते हैं । दूसरे (सोम) ओषधि-रूपमें पृथिवी और वन्ध-रूपमें अन्धरोक्षमें रहते हैं । तुम दोनों अनन्क लोगोंमें बरणाय, चतुर्कोत्तिष्ठाकी हमारे भागका कारण और पशुरूप घन हमें दो ।

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
 सोमापूषणा ववतं धियं मे युवाम्यां विश्वाः पृनना जये ॥५॥
 धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्नो रयि सोमो रयिपतिर्दधातु ।
 अवतु देव्यदितिग्नर्वा बृहद्वदेम विदधे सुवीरा ॥६॥



४१ सूक्त । १-३ के इन्द्र और वायु, ४-६ के मित्रावरुण, ७-९ के अश्विद्वय, १०-१२ के इन्द्र, १३-१५ के विश्वदेवगण, १६-१८ के सरस्वती और १९-२१ मन्त्रके देवता छावापृथिवी हैं ।

वाया ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्वान्सोमपीतये ॥१॥
 नियुत्वान् वायवागह्यं शुको अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२॥
 शुक्रयाद्य गवाशिर इन्द्रवायु नियुत्वतः । आयातं पिबतं नरा ॥३॥
 अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम श्रुतावृथा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥
 राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे मदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥
 ता सभ्राज्जा घृतासुति आदित्यादानुनम्पता । सन्तेते अननह्वरम् ॥६॥
 गोमदृष नासन्वा शवावद्यातमश्विना । वर्तारुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

१ सोम और पूषा, तुममेंसे एक (सोम) ने और भूतार्का उत्पन्न किया है । दूसरे (पूषा) सारे संसारका पर्यवेक्षण कर जाते हैं । सोम और पूषा, तुम हमारे कर्मकी रक्षा करो । तुम्हारे द्वारा हम सारी शत्रु-सेनाकी जय कर डालें ।

२ संसारकी प्रसन्नता देनेवाले पूषा हमारे कर्मसे नृत्त प्राप्त करें । घनपति सोम हमें धन दान करें । धूमिलता और शत्रु-रहिता अर्पित हमारी रक्षा करें । हम पुत्र और पौत्रवात्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सकें ।

१ वायु, तुम्हारे पास जो हजार रथ हैं, उनके द्वारा नियुतगणसे युक्त होकर सोम पानके लिये आओ ।

२ वायु, नियुतगणसे युक्त होकर आओ । तुमने दोसिमान सोम ग्रहण किया है । सोमाभिषेककारी यजमानके घरमें तुम जाते हो ।

३ नेता इन्द्र और वायु, तुम आज नियुतगणसे युक्त होकर और सोमके लिये राकर गव्य-मिला सोम पीओ ।

४ मित्रावरुण, तुम्हारे लिये यह सोम तैयार हुआ है । सत्यवर्द्धक तुम हमारा आह्वान सुनो ।

५ शत्रुता-शून्य राजा मित्रावरुण स्थिर, उत्कृष्ट और हजार स्तम्भोंवाले इस स्थानपर बैठें ।

६ सभ्राज्जा, घृतासुतजी, अर्पित-पुत्र और दाता मित्रावरुण सरलपति यजमानकी सेवा करते हैं ।

७ अश्विद्वय, नामस्यद्वय, खद्वय, यज्ञके नेता जो सोमपान करेंगे, उसी सोमका धनु और अश्वसे युक्त करके तथा रथपर लेकर आओ ।

न यत्परो नान्तर आदर्भर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥
 तान अत्रोहलमश्विना रथिं पिशङ्गसन्दूशम् धिष्ण्या वरिवोषिदम् ॥९॥
 इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीपदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥
 इन्द्रश्च मृलयाति नो नमः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवति नः पुरः ॥११॥
 इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१२॥
 विश्वेदेवास आगत शृणुताम इमं हवम् । पदं बाहनिपीदत ॥१३॥
 तीव्रो वो मधुमौ अयं शुनहोत्रेण मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥
 इन्द्रश्चेष्टा मरुद्व्रणा देवासः पूपरायतः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥
 अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥
 त्वे विश्वा सरस्वति ध्रितायूँपि देव्याम् । शुनहोत्रेण मत्स्रप्रजां देवि दिदिङ्मनिः ॥१७॥
 इमा ब्रह्म सरस्वति जपस्व वाजिनीवति । या ते मनम गृत्समदा श्रुतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥
 प्रेतां यज्ञस्य शम्भुश गुवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

८ धनवर्षी अश्विद्वय, तुरस्थि वा समीपवर्षी मरुद्व्रणा मर्त्य रिपु जिस धनको नहीं चुरा सकता, उसे ही हमें दो ।

९ ज्ञानार्ह अश्विद्वय, तुम हमारे पास नानारूप और धन-प्रापक धन से आओ ।

१० इन्द्र अधिक और अभिभवकारी भयको दूर करते हैं । वह स्थिर और प्रज्ञावान् हैं ।

११ यदि इन्द्र हमें सुखी करें, तो हमारे साथ पाप नहीं आवेगा; हमारे सामने कल्याण उपस्थित होगा ।

१२ प्रज्ञावान् और शत्रुजेता इन्द्र चारों ओरसे हमें भय-भूय करे ।

१३ विश्वदेवगण, यहाँ आओ । हमारा आह्वान सुनो और कुशके ऊपर बैठो ।

१४ विश्वदेवगण, तीव्र मरुद्वाला, रसवाली और हर्षकर यह सोम तुम्हारे लिये गृत्समद्वंशीयोंके पास है । इस सोमन सोमका पान करो ।

१५ जिन मरुतोंमें इन्द्र छेष्ट हैं, जिनके दाता पूषा हैं, वे ही मरुद्वगण हमारा आह्वान सुनें ।

१६ मातृरामें छेष्ट, नदियोंमें छेष्ट और देवोंमें छेष्ट सरस्वती, हम द्रिष्ट हैं; हमें धनी करो ।

१७ सरस्वती, तुम घृतिमती हो । तुम्हारे आश्रयमें अन्न है । शुनहोत्रोंमें तुम सोम पान करके तृप्त होओ । देवी, तुम हमें पुत्र दो ।

१८ अन्नवती और जलवती सरस्वती, इस हव्यको स्वीकार करो । यह मननीय और देवोंके लिये प्रिय है । गृत्समद लोग इसे तुम्हें देते हैं ।

१९ यज्ञके सुख-सम्पादक धावापृथिवी, तुम आओ । हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । हम हव्यवाहन अग्निकी भी प्रार्थना करते हैं ।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्ममद्य दिविस्पृशाम् । यत्नं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥



४२ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कनिकदञ्जनुषं प्रमृवाण इत्यति बाधमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिदभिमा विश्व्या विदत् ॥१॥

मा त्वा श्येनः उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विदिदधुमान्वीरो अस्ता ।

पित्र्यामनुप्रदिशं कनिकदत् सुङ्गलो भद्रवादी वदे ॥२॥

अव कन्द दक्षिणतो गृहाणां सुङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥३॥



४३ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । जगती, मध्या, शक्ती और अष्टि छन्द ।

प्रदक्षिणिदभिगृणन्ति कारवो वया वदन्त ऋतुया शकुन्तयः ।

उभे वाची वदन्ती सामगाध्व गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति ॥१॥

० द्यावापृथिवी स्वर्ग आदिके साधक और देवोंके ओर जानेवाली हैं । हमारे इस यज्ञकी देवोंके पास ले जायें ।

२१ अग्रता-ज्ञान्य द्यावापृथिवी, सोमपानके लिये यज्ञार्ह देवगण आज तुम्हारे पास बैठे ।

१ बाण्डवार शब्दायमान और अविष्यद्वृत्ता कपिञ्जल, जैसे कर्णधार नौकाको परिचारित करता है, वैसे ही, भाक्यको प्रेरित करता है । शकुनि, सम् कल्याण-सूचक होओ । किसी ओरसे किसी प्रकारकी पराजय तुम्हारे पास न आवे ।

२ शकुनि, तुम्हें श्येन पक्षी न मारे—शकुन पक्षी भी न मारे । तब बलवान्, वीर और धनुर्धारी होकर तुम्हें न प्राप्त करे । दक्षिण दिशामें बार-बार शब्द करके और सुमङ्गल-दांसी होकर हमारे लिये प्रियवादी बनो ।

३ शकुन्ता, सुमङ्गल-सूचक और प्रियवादी होकर चरकी दक्षिण दिशामें बोलो, ताकि चोर और दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

१ समय-समयपर अश्वकी खोज करके स्तोताओंकी तरह शकुनिगण, प्रदक्षिण करके, शब्द करे । जैसे सामगायक लोग गायत्री और त्रिष्टुप् (दोनों साम) का उच्चारण करते हैं, वैसे ही कपिञ्जल भी दोनों बाण्ड उच्चारण करता और स्तोताओंको अनुरक्त करता है ।

उद्गातेव शकुने सामगायसि ब्रह्मपुत्र इव सवने, शंससि ।

वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद

विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥२॥

आषदं स्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चाकद्धिनः ।

यदुत्पतन् बहसि कर्करिपथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥



२ शकुनि, जैसे उद्गाता साम गान करते हैं, वैसे ही तुम भी गाओ । यज्ञमें ब्रह्मपुत्र अश्विक्की तरह तुम शब्द करो । जैसे तेजस-समर्थ अथ अग्नीके पास जाकर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो । शकुनि, तुम सर्वत्र हमारे लिये मंगल-सूचक और पुण्य-जनक शब्द करो ।

३ शकुनि, जिस समय तुम शब्द करते हो, उस समय हमारे लिये मंगल-सूचना करते हो । जिस समय घुप रहकर तुम बैठते हो, उस समय हमारे प्रति सुप्रसन्न रहते हो । उदनेके समय तुम कर्करि (एक वाजा) की तरह शब्द करते हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।



द्वितीय मण्डल समाप्त



तृतीय मण्डल



२ अष्टक । ३ मण्डल । ८ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । विश्वामित्र ऋषि । x त्रिष्टुप् छन्द ।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यमे वह्निं चकथं विदथे यजध्वे ।
देवाँ अच्छादीद्यद्य अग्निं शमाये अग्ने त्वं जुपस्व ॥१॥
प्राञ्चं यज्ञं चकम वधतां गोः समिद्भिरग्निं नमसा तुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साथ चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥
मयादधे मेधिरः पूतदक्षां दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नुदर्शतमप्स्वन्तर्दवांसो अग्निमपसि स्वसृणाम् ॥३॥
अवधयन्त्सुभगं समयह्नीः श्वेतं अजानमरुपं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्याकुरश्वा देवासो अग्निं जनिमग्नेवपुष्वन् ॥४॥

१ अग्निदेव, यज्ञ करनेके लिये तुमने मुझे सोमका वाहक किया है; इसलिये मुझे बलवान् करो । अग्नि, मैं प्रकाशमान होकर, देवोंको लक्ष्य कर, अग्निवज्रके लिये, पस्वरखण्ड ग्रहण और स्तव करता हूँ । अग्नि, तुम मेरे शरीरकी रक्षा करो ।

२ अग्नि हमने भली भर्ति यज्ञ किया है । हमारी स्तुति वर्द्धित हो । समिधा और हव्य द्वारा लोग अग्निकी परिचर्या करें । शुलोकसे आकर देवोंने स्तोत्रार्थोंको स्तोत्र मिलाया है । स्तोत्रागण स्तवनीय और प्रबुद्ध अग्निकी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं ।

३ जो मेधावी, विशुद्ध-बल-शाली और जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु हैं, जो सब लोकका सुत्र-विधान करते हैं, वन्हीं वक्षनीय अग्निकी, देवोंने, यज्ञ-कार्यके लिये, वहनशील नदियोंके जलके बीच, प्राप्त किया है ।

४ ऋभन घनवासे, शुभ्र और अपनी महिमामें दोषिणाकी अग्निके उत्पन्न होते ही उन्हें सात नदियोंमें संवर्द्धित किया था । जैसे अश्वी नवजात शिशुके पास जाती है, वैसे ही नदियाँ नवजात अग्निके पास गयी थीं । उत्पत्तिके साथ ही अग्निकी देवोंने दीक्षितमान् किया ।

॥ इस मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशज हैं । पाचीन भारतके अनेक ऋषियोंकी तरह विश्वामित्र भी गुरुस्व और महान् ब्रह्मा थे । विश्वामित्र और उनके वंशजोंके साथ बलिष्ठ और उनके वंशजोंकी सभी प्रतिबुद्धिबलता थी ।

शुक्रेभिर्गङ्गा रज आतनन्वान् सृत्तं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
 शोचिर्वसानः पर्यायुखां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥१॥
 वज्राजासीम नदीरद्वधा दिवो यहीरवसाना अनम्राः ।
 सना अत्र युवलयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्तवाणीः ॥६॥
 स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवधे मधूनाम् ।
 अस्थुरत्र धेनवः पितृवमाना महीदस्मस्य मातरा समीची ॥७॥
 वज्राणः सूनो सहस्रो व्यघोर्ध्वानः शुक्रा रभसा पूर्णि ।
 श्रोतन्ति धारा मधूनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काल्येन ॥८॥
 पितुश्चिदूधर्जनुषा विबेद व्यस्य धारा असृजद्विधेनाः ।
 गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यहीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥
 पितुश्च गर्भं जनितुश्च वम्भे पूर्वारेको अधयत् पीप्पानाः ।
 वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मे मनुष्ये निपाहि ॥१०॥

५ शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा अन्तरीक्षको व्याप्त करके अग्निदेव यजमानको स्तुति-योग्य और पवित्र तेजके द्वारा परिशोधित करते तथा दोसिका परिधान करके यजमानको अन्न और प्रभूत तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति देते हैं ।

६ अग्नि जलकी चारो ओर जाते हैं । वह जल अग्निको नहीं बुझाता अथवा वह अग्नि द्वारा नहीं सूखता । अन्तरीक्षके अपत्यभूत अग्नि वस्त्रसे आच्छादित नहीं हैं, तो भी, जलसे वेष्टित होनेके कारण, नष्ट भी नहीं हैं । समातन, निस्व, तपन और एक स्थानसे उत्पन्न सात नदियाँ एक अग्निका गर्भ धारण करती हैं ।

७ जल-वर्षणके अनन्तर जलके गर्भ-स्वरूप और अन्तरीक्षमें पुण्यभूत नानावर्ण अग्निकी किरणें रहती हैं । इन अग्निकी जलरूप स्थूल धेनुएँ सबकी प्रीति-दायिका होती हैं । सुन्दर और महान् आवापृथिवी दर्शनीय अग्निके माता, पिता हैं ।

८ बलके पुत्र, सवके द्वारा तुम्हें धारण करनेपर तुम डज्ज्वल और वंगवान् किरण धारण करके प्रकाशित होओ । जिस समय अग्नि यजमानके स्तोत्र द्वारा बढ़ते हैं, उस समय मघर जलधारा गिरती है ।

९ जन्मके साथ ही अग्निने पिता (अन्तरीक्ष) के अवस्थान जल-प्रदेशको जाना था और अवस्थान-सम्बन्धिनो धारा या वृष्टि और अन्तरीक्षधारा वज्रको गिराया था । अग्नि, क्षुभकतां वायु आदि वस्तुओंके साथ, अवस्थान करते और अन्तरीक्षके अपत्यभूत जलके साथ गुहामें वर्तमान रहते हैं । इन अग्निको कोई नहीं पाता ।

१० अग्नि पिता (अन्तरीक्ष) और जनयिताका गर्भ धारण करते हैं । एक अग्नि बहुतर बुद्धिको प्राप्त ओषधिका भक्षण करते हैं । सपत्नी और मनुष्योंकी हितकारिणी आवापृथिवी अभीष्टवर्षी अग्निके बन्धु हैं । अग्नि, तुम आवापृथिवी-को अच्छी तरह बचाओ ।

उरौ महौ अनिवाधे ववर्धोपो अग्नि यशसः संहि पूर्वोः
 ऋतस्य योनावशयद्मूना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम् ॥११॥
 अक्रो न बभ्रिः समिधे महीनां विद्वक्षेयः सूनव भाऋजीकः ।
 उदुन्विय जमिता यो जजनापां गर्भो नृतमो यहो अग्निः ॥१२॥
 अपां गर्भं दर्शतमोपधोनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
 देवासश्चिन्मनसा संहि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवश्यन् ॥१३॥
 ब्रह्मन् इन्द्रानवो भाऋजीकमग्नि सन्नन्त विद्युतो न शुकाः ।
 गुहेव वृद्धं सदर्शस्वे अन्तरपार ऊर्ध्व अमृतं दुहानाः ॥१४॥
 ईले च त्वा याजमानो हविर्भिरीले सखित्वं सुमतिं निकामः ।
 हेवरेवो मिमीहि संजरित्रे रक्षा च नो दम्येमिरनीकैः ॥१५॥
 उपक्षतारुतव सुप्रणीतंमे विश्वानि धन्या दधानाः ।
 सुरेतसा श्रवसा तुजमाना अभिष्याम पृतनार्यूरदेवान् ॥१६॥

११ महान् अग्नि असम्बाध और विस्तारण अन्तरीक्षमें वदित हाते हैं; क्योंकि बहु-अन्नवान् जन उतको अच्छी तरह वदित करता है । जलके जन्मस्थान अन्तरीक्षमें स्थित अग्नि भगिनो-स्थानीया नदियोंके जलमें प्रक्षालित चित्तमें शयन करते हैं ।

१२ जो अग्निदेव समस्त संसारके जनक, जलके गर्भभूत, मनुष्योंके सुरक्षक, महान्, बलशाली आक्रमणकर्ता, संघाममें अपनी महती सेनाके रक्षक, सबके दशनीय और अपनी दोस्तोंमें प्रकाशमान हैं, उन्होंने ही यजमानके लिये जल उत्पन्न किया है ।

१३ सौभाग्यशाली अग्निने दशनीय, विविध रूपवान् तथा जल और औषधियोंके गर्भभूत अग्निको उत्पन्न किया है । सारे देवता लोग भी स्तुति-योग्य, प्रबुद्ध तथा सघोजाल अग्निके पास, स्तुति-सम्पन्न होकर, गये थे । उन्होंने अग्निकी परिचर्या भी की थी ।

१४ दीप्तिशाली विजकीकी तरह महान् सूर्यगण अगाध समुद्रके बीच अमृतका दोहन करके, गुहाकी तरह, अपने भवन अन्तरीक्षमें प्रबुद्ध और प्रभा द्वारा प्रदीप्त अग्निकी आश्रय करते हैं ।

१५ इष्य द्वारा मैं यजमान तुम्हारे स्तुति करना हूँ । धर्म-क्षेत्रमें बुद्धि पानकी इच्छासे तुम्हारे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ । देवोंके साथ मुझ स्तोत्रोंके पशु आदिकी और मेरी, दुर्दम्य तेजके द्वारा, रक्षा करो ।

१६ खनेता अग्नि, हम तुम्हारा आश्रय चाहते हैं । हम समस्त जनकी प्राप्तिका कारणीभूत कर्म करते और इष्य प्रदान करते हैं । हम तुम्हें वीर्यशाली अन्न प्रदान करके अर्द्धा और अहितकारी बन्धुओंकी जीत सकें ।

आ देवतामभवः केतुरग्ने मन्द्रा विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
 प्रतिमतीं अवासयो दमूना अनुदेवाग्रथिरा यासि साधन ॥१७॥
 निदुरोण अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विद्वानि साधन ।
 घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निविश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥
 आ नो गहि सूर्येभिः शिर्भिर्महान्महीभिरूर्तभिः सरण्यन् ।
 अस्मे रयि बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधो नः ॥१९॥
 पता ते अग्ने जनिमा सनानि प्रपूठयि नूतनानि वाचम् ।
 महान्ति वृष्णे सवता कृतेमा जन्मजन्मन्निहितो जातवेदाः ॥२०॥
 जन्मजन्मन्निहतो जातवेदा विश्वामित्रे भिरिद्यते अजस्रः ।
 तस्य वयं सुमनी यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥
 इमं यज्ञं सहसाधन्त्वं नो देवत्रा धेहि सुकृतो रराणः ।
 प्रयंसि होतवृहतीरियो नोम्ने महि द्रविणमायजस्व ॥२२॥
 इलामग्ने पुरुषंसं सनिं गीः शश्वन्तम हवमानाय साध ।
 स्यान्नः मृनुस्तनयो विजाग्रो सा ते सुमानभून्वस्म ॥२३॥

—ॐ नमः शिवाय—

१७ अग्नि, तुम देवोंके स्ववनीय दूत हो । तुम सारे स्तोत्रोंके ज्ञाता हो । तुम मनुष्योंको उनके अपने-अपने गृहमें वास देने हो । तुम रथी हो । तुम देवोंका कार्य-वाचन करके उनके पीछे-पीछे जाते हो ।

१८ नित्य राजा अग्नि यज्ञका साधन करके मनुष्योंके गृहमें घेड़ते हैं । अग्नि सारे स्तोत्र जानते हैं । अग्निका अंग ब्रह्मके द्वारा दीप्तियुक्त है । विश्वका अग्नि प्रकाशमान होते हैं ।

१९ गमनेच्छु महान् अग्नि, मङ्गलमयी मैत्री और महान् रक्षाके साथ हमारे पास आओ और हमें बहुत, निरुप-द्रव, सोमनस्तुतिवाला और कीर्तिशाली बन दो ।

२० अग्नि, तुम पुराण पुरुष हो । तुम्हें लक्ष्य करके इन सब सनातन और नवीन स्तोत्रका हम पाठ करते हैं । सब-भूतका अग्नि मनुष्योंके बीच निहित है । उन अभीष्टरथी अग्निका लक्ष्य करके हमने यह सब सवन किया है ।

२१ सारे मनुष्योंमें निहित और सर्व-भूतका अग्नि विश्वामित्र द्वारा अनवरत प्रदीप्त होते हैं । हम उनका अनुग्रह प्राप्त करके यज्ञार्ह अग्निका अभिलषणीय अनुग्रह प्राप्त करें ।

२२ बलवान् और शासन करनेवाले अग्नि, तुम सदा बिहार करते-करते हमारे यज्ञको देवोंके पास ले जाओ । देवकी बुलानेवाले अग्नि, हमें अन्न दो । अग्नि, हमें महान् बन दो ।

२३ अग्नि, स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुप्रदायी भूमि हमें, चिर काल, दो । हमारे वंशका विस्तार करनेवाला और सम्पत्ति-जनयिता एक पुत्र उत्पन्न हो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

२ सूक्त । वश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।
 वश्वानराय धिषणासृतावधे घृतं न पृतमग्नये जनामसि ।
 द्विता हातारं मनुष्यं वाधतो धिया रथं न कुलिशः समृत्त्वति ॥१॥
 सरोचयज्जनुपा रोदसी उभं स माश्रोमभवत् पुत्रव्यः ।
 हव्यवाललग्निर्जरश्चनाहितो दूतमो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥
 ऋत्वा दध्नस्य तरुणो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
 रुक्मानं भानुना ज्यातिषा माम यं न वाजं स्निष्यन्नुपम वे ॥३॥
 आ मन्द्रस्य स्निष्यन्तो वरेण्यं हृणोमहे अहयं वाजमृगिमयम् ।
 राति भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोक्तिषा ॥४॥
 अग्निं सुस्राय दधिरे पुराजना वाजश्रवसमिह वृक्तवर्हिषः ।
 यतस्तु चः सुस्रुचं । वश्वदेव्यं रुद्रं धजानां साधर्दिष्टमपसाध ॥५॥
 पावकशोचे तव हि क्षयं परि रीतयज्ञेषु वृक्तवर्हिषो नरः ।
 अग्निं दुष इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥
 आ रोदसी अपृणदास्वर्महजानं यदेनमपसां अधारयन् ।
 सो अश्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

१ हम यज्ञ-वर्द्धक देवानरको लक्ष्य करके विष्टुद घृतकी तरह प्रसन्नता-शायक स्तुति करेंगे । जैसे कुटार रथका संस्कार करता है, वैसे ही मनुष्य और आग्नि के लक्ष्य देवोंकी तुलानेवाले गार्हपत्य और आहवनीय, इन दो प्रकारके रूपोंवाले अग्निका संस्कार करते हैं ।

२ जन्मके साथ ही वह धावापृथिवीको प्रकाशित करने हैं । वह पता-साताकी प्रशंसाके अनुकूल पुत्र हुए थे । हव्यवाही, जरा-रहित, अन्नदाता, अहिंसित और प्रभाघन अग्नि मनुष्योंके, अतिगिर्ण ममान, पुत्र्य हैं ।

३ ज्ञानी देवता लोग विपद्में उद्धार करनेवाले बलके द्वारा यज्ञमें अग्निको उत्पन्न करते हैं । जैसे भार-वाही अश्वकी स्तुति करता हूँ, वैसे ही अन्नाभिलाषी होकर दीप्तिमान् तेजके द्वारा प्रशंसमान और महान् अग्निकी स्तुति करता हूँ ।

४ हम स्तुति-योग्य वेश्वानरके श्रेष्ठ, लज्जा-रहित और प्रशंसनीय अन्नके अभिलाषी होकर भृगु-वर्द्धियोंके अभिलाषप्रद, अभिलषणीय, प्रज्ञावान् और स्वर्गीय दीप्तिके द्वारा शोभावाले अग्निका भजन करता हूँ ।

५ घृतकी प्राप्तिके लिये अस्तिव् लाग डूबकी फेलाकर और चयक उठाकर अन्नदाता, असीव प्रकाशक, सारे देवोंके हितधी, दुःखनाशक और यज्ञमार्गके यज्ञ-साधक अग्नि स्तुति करते हैं ।

६ पवित्र दीप्तिवाले और देवोंकी तुलानेवाले पाश, रुम्डारों में भी आभिलाषी यज्ञमान लोग यज्ञमें कुछ फेलाकर सुम्हारे योग्य याग-गृहकी सेवा करते हैं । उन्हें धन दो ।

७ अग्निने धावापृथिवी और विशाल आकाशको भी पूर्ण किया था । यज्ञमार्गोंने इन नवजात अग्निको धारण किया था । सर्वत्र व्याप्त और अन्नदाता यही अग्नि, अश्वकी तरह अन्न लाभके लिये, लाये जाते हैं ।

नमस्यत हव्यदाति स्वध्वरं दुवस्यत दग्धं जातवेदसम् ।
 रथीञ्च तस्य बृहतो विचपेणिरग्निदधानामभवत् पुरोहितः ॥८॥
 तिस्रो यद्वस्य समिधः परिष्मनोश्च रपुनगुशिजो अमृत्यवः ।
 तासामेका मधुमस्य भुजमुलोकमुद्वे उप जामिमीषतुः ॥९॥
 विशां कवि विशपति मानुषीरिषः संसीमकृण्वन्स्वधिति न तेजसे ।
 स उद्वतो निवतो याति वेविपत् स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥
 स जिव्वते जठरेषु प्रजाक्षिषान्वृषा वित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
 वैश्वानरः पृथुपाजा अमस्योवसु रक्षा द्यमानो वि दाशुषे ॥११॥
 वैश्वानरः प्रतयानाकमाकृद्दिव स्पृष्टं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
 स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्यति जागृचिः ॥१२॥
 श्रुतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य मायं दधे मातरिश्वा दिविक्षयम् ।
 तं नित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥
 सुचिं न यामं निषिरं स्वदृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुपवृधम् ।
 अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥

८ नेता और महान् यज्ञके दशक जो अग्नि देवोंके सम्मुख उपस्थित हुए थे, उन्होंने हव्यदाता, शोभन यज्ञवाले, गृहके हितेषी और सर्वभूतज्ञता अग्निकी पूजा और परिचर्या करो ।

९ अमर देवोंने अग्निकी इच्छा करके महान् और जगदुदधापी अग्निकी पार्थिव, वैद्युतिक और सूर्यरूप तीन मूर्तियोंको शोभित किया था । उन्होंने तीनों मूर्तियोंमें से जगदुपात्मिका पार्थिव मूर्तिको मर्त्यलोकमें: रक्षा, शेष दो अन्तरीक्षमें गर्थी ।

१० घनाभिलाषी प्रजाओंने अपने प्रभु मेधावी अग्निको तलवारकी तरह तीक्ष्ण करनेके लिये संस्कृत किया था । वह उन्नत और निम्न प्रदेशोंको व्याप्त करके गमन करते और सारे भुवनोंका गर्भ धारण करते हैं ।

११ नवजात और अमीष्टवर्षी वैश्वानर अग्नि नाना स्थानोंमें सिङ्घकी तरह गर्जन करके अनेक जठरोंमें वदित होते हैं । वह अत्यन्त तेजस्वी और अमर हैं । वह यज्ञमानको रमणीय वस्तु प्रदान करते हैं ।

१२ स्तोताओं द्वारा स्तुति किये जानेवाले वैश्वानर अग्नि तिरग्ननकी तरह अन्तरीक्षकी पीठ—स्वर्ग—पर चढ़ते हैं । प्राचीन ऋषियोंके सट्टण यज्ञमानोंको धन देकर वह जागरूक होकर देवोंके साधारण मार्गपर, सूर्य रूपसे, भ्रमण करते हैं ।

१३ बलवान्, यज्ञार्ह, मेधावी, स्तुतियोग्य और अलोक-वासी जिन अग्निको अलोकसे लाकर वायुने पृथिवी पर स्थापित किया है, हम उन्हीं नाना गतिवाले, पिङ्गलवर्ण किरणसे युक्त और प्रकाशमान अग्निसे नया धन चाहते हैं ।

१४ प्रदीप्त, बज्रमें गमनकारी, सारे पदार्थोंके ज्ञानभूत, अलोकके पताका-स्वरूप, सूर्यमें अवस्थित, उषाकालमें जाग, रूक, अन्नदान और महान् अग्निकी, स्तोत्र द्वारा, याचना करता है ।

मन्द्रं होतारं शुक्मिष्ठयाविनं दमूनसमुक्थं विश्ववर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुहितं सदमिद्राय ईमहे ॥१॥



३ सूक्त । वैश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निहि देवां अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥
अन्नदूर्तो रोदसी द्रुम ईयते होता निपत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं वृहन्तं परिभूयति शुमिर्दवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधिसन्दधुगिरस्तस्मिन्सुप्तानि यजमान आन्वे ॥३॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च बाधताम् ।
आ विवेश रोदसी भूगिर्वसा पुरुप्रियो भन्वते धामभिः कविः ॥४॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिष्ठं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्चिदम् ।
विगाहं तूर्णं तविणीभिगवृतं भूर्णि देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥

१५ स्तुत्य, देवाङ्गवानकारी, सर्वदा शुद्ध, अकुटिल, दाता, अष्ट, विश्ववर्षक, रथकी तरह जाना वर्णवाले, ईश-
नीय रूपवाले और मनुष्योंके सदा कल्याणकर्ता उन अग्निदेवके पास में इनकी याचना करता हूँ ।

१ मेधावी स्तोता लोग, सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये, बहु-बलशाली वैश्वानरको लक्ष्य कर यज्ञमें समर्पण स्तोत्रोंका पाठ करते हैं । अमर अग्नि हव्य प्रदानके द्वारा देवोंकी परिचर्या करते हैं । इसलिये कोई सनातन यज्ञकी कृति नष्ट कर सकता ।

२ दर्शनीय होता अग्नि, देवोंके दूत होकर, द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं । देवों द्वारा प्ररित धीमान् अग्नि यजमानके सामने स्थापित और उपविष्ट होकर महान् यज्ञ-गृहको अलंकृत करते हैं ।

३ मेधावी लोग यज्ञके केतु-स्वरूप और यज्ञके साधनभूत अग्निको अपने वीर रथ द्वारा युजित करते हैं । जिन अग्निमें स्तोता लोग अपने-अपने करने योग्य कर्मोंको अर्पण करते हैं, उन्हीं अग्निमें यजमान सुखकी आशा करते हैं ।

४ यज्ञके पिता, स्तोताओंके बलदाता, अतिवर्षकोंके जानहेतु और यज्ञादि कर्मोंके साधनभूत अग्नि पार्थिव और वैष्णवादि रूपके द्वारा द्यावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं । अत्यन्त प्रिय और तेजस्वी अग्नि यजमान द्वारा स्तुत होते हैं ।

५ आङ्गलाङ्क, आङ्गलादजनक रथवाले, पिङ्गलवर्ण, जलके बीच निवास करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वश व्याप्त, शीघ्र-
गामी, बलशाली, भक्ता और दीप्तिवाले वैश्वानर अग्निको देवोंने इस लोकमें स्थापित किया है ।

अग्निर्देवेभिर्मनुष्यञ्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
 रथीरन्तरीयते साधद्विष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिन्नातनः ॥६॥
 अग्ने जरस्व स्वपश्य आयून्यूजां पिन्वस्व समिषा दिक्षोहि नः ।
 वयांसि जिन्व वृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुकतुर्विषाम् ॥७॥
 विश्वपतिं यद्वहमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
 अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८॥
 विभावा देवः सुरणः परिक्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
 तस्य व्रतानि भूरिपोदिणो वयमुपभूयेम दम आ सुवृत्तिभिः ॥९॥
 वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्धिर्दभवो विचक्षणः ।
 जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥
 वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहद्वरिणादेकः स्वपरुयया कविः ।
 उभा पितरा मध्वयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥



६ जो यज्ञ-साधक देवों और ऋत्विगोंके साथ कर्म द्वारा यजमानके नाकाविध यज्ञोंका सम्पादन करते हैं, जो नेता, शीघ्रगामी, दानशील और शत्रुओंके नाशक हैं, वही अग्नि द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं ।

७ हम सुपुत्र और दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे; इसलिये, हे अग्नि, तुम देवोंकी स्तुति करो । अग्नि द्वारा उन्हें प्रीत करो । हमारे घाम्यके लिये भली भौति वृष्टिको संचालित करो । अन्न दान करो । मदा जागरण-शील अग्नि, तुम महान् यजमानको अन्न दो; क्योंकि तुम सुकर्मा और देवोंके प्रिय हो ।

८ मनुष्योंके पति, महान्, अतिथि-भूत, बुद्धि-नियन्ता, ऋत्विगोंके प्रिय, यज्ञके ज्ञापक, वेगयुक्त और सर्वभूतज्ञ अग्निही, नेता लोग, समृद्धिके लिये, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा, प्रशंसा करते हैं ।

९ दीप्तिमान्, स्तूयमान, कमनीय और सुन्दर रथवाले अग्नि बलके द्वारा सारी प्रजाको व्याप्त करते हैं । हम अनेकोंके पालक और गृहमें निवासी अग्निके सारे कर्मोंको, सुन्दर स्तोत्र द्वारा, प्रकाशित करेंगे ।

१० विश्व वैश्वानर, तुम जिस तेजके द्वारा सर्वज्ञ हुए हो, मैं तुम्हारे उसी तेजका स्तव करता हूँ । जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवी और सारे भुवनोंको व्याप्त कर डालते हो । अग्नि, तुम अपने सारे भूतोंको व्याप्त करते हो ।

११ वैश्वानरके सन्तोषजनक कर्मसे महान् धन होता है; क्योंकि वह सुन्दर यज्ञ आदि कर्मकी इच्छासे यजमानोंको धन देते हैं । वह वीर्यशाली हैं । पिता-माता द्यावा-पृथिवीकी पूजा करते हुए उत्पन्न हुए हैं ।

४ सुक्त । आग्नी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

समिन् समित् सुमना बोध्यस्मे शुन्ता शुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
 आ देव देवान्यजथाय नक्षि सखा सखीन्तसुमना यक्ष्यमे ॥१॥
 य ईवांस स्त्रिरक्ष्णायजन्ते दिवंदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
 सेमं यज्ञं मधुमन्तं कधी नस्तनूनपाद्घृतयानिं विधन्तम् ॥२॥
 प्र दीधितिर्विश्वानारा जिगाति हातारमिष्ठः प्रथमं यजध्यै ।
 अच्छा नमामिबुं पमं बन्ध्यै स देवान्यक्षदिपितो यजीयान् ॥३॥
 ऊर्ध्वो वां गानुरध्वरे अकार्यूर्ध्वो शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
 दिवो वा नामा न्यसादि होता स्तृणोमहि देवव्यचा विर्बाहिः ॥४॥
 सप्त होत्राणि मनसा धृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
 नृपेशसो विद्येषु प्रजासा अभीमं यज्ञं विचरन्त पूर्वीः ॥५॥
 सा मन्वमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
 यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वा उत वा महोभिः ॥६॥

१ हे समिद्ध अग्नि, अनुकूल मनसे जागो । तुम अतीव गतिशाल तेजसे युक्त होकर हमारे ऊपर घनके लिये अनुग्रह करो । द्योतमान अग्नि, देवोंको तम यज्ञमें ले आओ । अग्नि, तुम देवोंके सखा हो । अनुकूल मनसे मित्र देवोंका यज्ञ करो ।

२ वरुण, मित्र और अग्नि जिन तनूनपात नामक अग्निका, प्रतिदिन तीन बार करक, यज्ञ करते हैं, वही हमारे इस जल-कारण यज्ञको तृप्ति आदि फल दें ।

३ देवोंके आहुवानकारी अग्निके पास सर्वजन-प्रिय स्तुति गमन करें । इला, प्रसन्नता उत्पन्न करनेके लिये, प्रधान, अतीव अभ्योष्टवर्त्ता और बन्धनीय अग्निके पास जायें । यज्ञकर्ममें कुशल अग्नि, हमारे द्वारा प्रेरित होकर यज्ञ करें ।

४ अग्नि और बहिरूप अग्निके लिये यज्ञमें एक उन्नत मार्ग किया हुआ है । दीप्तियुक्त इन्ध्न ऊपर जाता है । दीप्तिमान यज्ञ-गृहके नामप्रदेशमें होता उपविष्ट हैं । हम देवोंके द्वारा उपोष कुशको विद्वान्ते ।

५ जल द्वारा संसारके प्रसन्नकर्ता देवता लोग सप्त यज्ञमें जाते हैं । वे अकपट चित्तसे वाचित होकर नरूपी यज्ञाज्ञा (अग्निकुप यज्ञ-द्वार-द्वय) प्रत्यक्ष होकर हमारे इस यज्ञमें आते ।

६ स्तुयमान अग्नि-रूप रात और दिन, परस्पर-संगत होकर अथवा पृथक् रूपसे, सबरीर प्रकाशित होकर आते । मित्र, वरुण अथवा इन्द्र हमें जिस रूपसे अनुगृहीत करते हैं, तेजस्वी होकर उसी रूपको चारण करें ।

दंतं होतारं प्रथमा न्यूञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
 श्रुतं शंसन्त श्रुतमिच्छाहुरनु वनं वनपा दोष्यानाः ॥७॥
 आ भारतो भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
 सरस्वती सारस्वनेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बहिरेदं सवन्तु ॥८॥
 तन्नभ्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टृर्वि रराणः स्यस्व ।
 एतो धीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्त्यावा जायते देवकामः ॥९॥
 वनस्पतेव सृजोप देवानग्निर्हविः शमितः सूदधाति ।
 मेदु हाता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वैद ॥१०॥
 जायाह्यग्रे समिधानो अर्वाङ्निदेण देवैः सरथं तुरेमिः ।
 बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥



५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

एतं अग्नि रूपसञ्चेकितानो बांधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।

पृथपाज्जा देवयज्ञिः समिद्धोपद्राग तमसो वह्निगवः ॥१॥

७ में १-७ अ० प्रधान अग्निरूप दोनों हाताओंको प्रसन्न करता हूँ । यज्ञामिलायी, सप्त और अन्नवान् श्रुतिवक् लोग शत्रु दुष्टा अग्निको प्रसन्न करते हैं । वनके रक्षक और दोषिणाली श्रुतिवक् लोग प्रत्येक व्रतमें यज्ञरूप अग्निको यह वचन बोलते हैं ।

८ भारती लागी (सूर्य-सम्बन्धियों) के साथ अग्नि-रूप भारती आवें, देवी और मनुष्योंके साथ इला आवें, अग्नि भी आवे । सारस्वतगणों (अन्तरीक्षस्थ वचनों) के साथ सरस्वती भी आवें । ये तीनों देवियाँ आकरसंमुखस्थ कुशपर बैठें ।

९ अग्नि रूप त्वष्टा देव, जिसमे घोर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमाभिषवके लिये प्रस्तर-इस्त और देवाभिलाषी पुत्र उत्पन्न हो गये, मनुष्ट हाकर तुम हमें वैसे ही प्राण-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो ।

१० अग्नि-रूप वनस्पति, तुम देवोंको पास ले आओ । पशुके संस्कारक अग्नि (वनस्पति) देवोंके लिये हव्य दे । ये ही यज्ञ-रूप देवता लोगोंको बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि ये ही देवोंका जन्म जानते हैं ।

११ अग्नि, तुम दोषि-युक्त होकर इन्द्र और शीघ्रताकारी देवोंके साथ एक रथपर हमारे सामने आओ । सूर्य-युक्त अग्नि हमारे कुशपर बैठें । नित्य देवगण अग्निरूप स्वहाकारवाले होकर सृष्टि प्राप्त करें ।

१ भारती उपाकी जानते हैं । मेधावी अग्नि ज्ञानियोंके मार्गपर जानेंके लिये जागते हैं । अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवाभिलाषी व्यक्तियोंके द्वारा प्रदीप्त होकर अज्ञानका दुवार उदुचाटित करते हैं ।

प्रेक्षप्रिर्वावृध्रे स्तोमेभिर्गीभिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थेः ।
 पूर्वोऽमृतस्य सन्दृशश्चकानः सन्दूतो अद्यौ दुषसो विरोके ॥२॥
 अधायथग्निर्मानुषीषु विध्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधनम् ।
 आ हव्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मनीषाम् ॥३॥
 मित्रो अग्निर्मवति यन् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
 मित्रो अधवयुं रिषिरो दमूना मित्रः सिग्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥
 पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यद्वह्न्यश्चरणं सूर्यस्य ।
 पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥
 ऋभुश्चक ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
 ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्तदिदग्नी रक्षस्थिप्रयुच्छन् ॥६॥
 आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थान् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
 दोधानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मनिरानव्यसीकः ॥७॥
 सद्योजात ओषधीभिर्ववक्षे यदा वर्धन्ति प्रेस्वो घृतेन ।
 आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थं ॥८॥

२ पूज्य अग्नि स्तोताओंकी स्तनात्र, वाक्य और मंत्र द्वारा वृद्धि पाते हैं। देव-दूत अग्नि अनेक यज्ञोंमें दोषि पात करनेकी इच्छासे प्रातःकाल प्रकाशित होते हैं।

३ यजमानोंके मित्र, यज्ञके द्वारा अभिकाषा पूरी करनेवाले और जलके पुत्र अग्नि मनुष्योंके बीच स्थापित हुए हैं। अग्नि स्पृहणीय और यजनीय हैं। वह अन्ततः स्थानपर बैठे हैं। ज्ञानी अग्नि स्तोताओंकी स्तुतिके योग्य हुए हैं।

४ जिस समय अग्नि समिद्ध होते हैं, उस समय मित्र बनते हैं। वही मित्र हो, होता और सर्वज्ञ वरुण हैं। वही, मित्र हो, दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु हैं। वह नदियाँ और पर्वतोंके मित्र हैं।

५ सृष्ट्र अग्नि सर्वव्याप्त पृथिवीके प्रिय स्थानको रक्षा करते हैं। महान् अग्नि सूर्यके विहरण-स्थान अन्तरीक्षकी रक्षा करते हैं। अन्तरीक्षके बीच मनुष्योंकी रक्षा करते हैं। वह देवोंके प्रसन्नता-कारक यज्ञकी रक्षा करते हैं।

६ महान् और सारे ज्ञातव्योंके ज्ञाता अग्नि प्रांसवीय और सृष्ट्र जल उत्पन्न करते हैं। अग्निके निहित रहनेपर भी हतका चर्म या रूप दीप्तिमान् रहता है। वही अग्नि मावधानीसे उसकी रक्षा करते हैं।

७ दीप्तिमान्, विशेष रूपसे समुत्त और स्वस्थान-प्रिय अग्नि अचिरुद्ध हुए हैं। दीप्तिवाली, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्नि पिता-माता यावापुत्रिणीको नवीनतर करते हैं।

८ जन्म लेते ही अग्नि ओषधियों द्वारा घृत होते हैं। उस समय पथ-प्रवर्धित जलकी तरह क्षामित आवाधियों जल द्वारा वद्धित होकर फल देती हैं। पिता-माता या वापुत्रिणीका काङ्क्षे बहकन अग्नि हमारा रक्षा करें।

उदुष्टुतः समिधा बहो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधिनामा पृथिव्याः ।
 मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्ष्यजयाय देवान् ॥६॥
 उदस्तम्भीत् समिधा नाकसृष्वोऽग्निर्मवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
 यदो भृगुभ्यः परिश्वा मातरिश्वा गुहासन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥
 इलामग्रे पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
 स्यान्नः सनुस्तनयो विजात्राने सा ते सुमतिर्मृत्वस्मे ॥११॥

६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र कारवो मनना वक्ष्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
 दक्षिणावाङ्वाजिनी प्राचयेति हविर्भरन्त्यग्नये घृताधी ॥१॥
 आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
 दिवश्चिदग्रे महिना पृथिव्या वक्ष्यन्तां ते बह्वयः सप्तजिह्वाः ॥२॥
 द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
 यदो विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीलते शुक्रमर्चिः ॥३॥

६ हमारे द्वारा स्तुत और दीप्ति द्वारा महान् अग्निने पृथिवीकी नामि वा उत्तर वेदीपर स्थित होकर अन्तरीक्षको प्रकाशित किया है । सबके मित्र और स्तुति-योग्य अराणि-प्रदीप्त अग्नि देवोंके दूत होकर यज्ञमें देवोंको बुलावें ।

१० जिस समय मातरिश्वाने भृगुओं वा आदिश्य-रात्रिमयोंकें किये गुहास्थित और हव्य-वाहक अग्निको प्रण्वलित किया था, उस समय तेजस्विनोंमें श्रेष्ठ महान् अग्निने तेज द्वारा स्वर्गको स्तब्ध किया था ।

११ अग्नि, तुम स्तोत्राको अनेक कर्मोंके हेतु भूत और धनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो । हमारे वंशका विस्तारक भार सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो । हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

१ यज्ञकर्त्ता लोग, तुम सोमाभिलाषी हो । मंत्र द्वारा प्रेरित होकर तुम देवाचन-साधक झुक् ले आओ । जिसे आहवनीय अग्निकी दक्षिण रिशामें ले जाया जाता है, जिसके अग्न है, जिसका अग्र भाग पूर्व दिशामें है और जो अग्निके लिये अन्न धारण करता है, वही घृतयुक्त झुक् जाता है ।

२ जन्मके । हो तुम द्यावापृथिवीको पूर्ण करो । याग-योग्य, महिमा द्वारा तुम अन्तरीक्ष और पृथिवीसे प्रकृष्टतर होओ और तुम्हारे अंशभूत विशिष्ट अग्नि—सप्त जिह्वाएँ पूजित हों ।

३ अग्नि, तुम होता हो । जिस समय देवाभिलाषी और हव्य-युक्त मनुष्य तुम्हारे दीप्त तेजकी स्तुति करने हैं, उस समय अन्तरीक्ष, पृथिवी और यज्ञ-देवगण, यज्ञ-सम्पादनके किये तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

महान्तसधस्थे ध्रुव आनियन्तान्तर्धावा माहिमे हर्यमाणः ।
 आम्को सपत्नी अजरे अमृक्ते सधर्दुधे उरुगायस्य धेनू ॥४॥
 व्रताते अग्ने महता महानि तव क्रत्वा रादसी आनतस्थ ।
 त्वं दूतो अमवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ सर्पणीनाम् ॥५॥
 ऋतस्य वा केशिना योग्यामिधृतस्नुवा रोहिता धुरि ध्रिष्व ।
 अथा वह देवाग्देव विश्वान्स्वध्वरा कृणुहि जानवेदः ॥६॥
 दिवश्चिदाने रुतबन्त रोका उषो विमानोरनु भासि पूर्वीः ।
 अपो यदप्रउशध्रग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७॥
 उगौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
 ऊमा वा ये सुहवाप्तो यजता अयैमिरे रथ्यो अग्ने अश्ववाः ॥८॥
 ऐभिर्गणे सरथं याह्यर्षाङ् नाना रथं वा विभवो हाश्ववाः ।
 पत्नीवत्स्त्रिशतं त्रीक्षं वैशाननुष्व धमावह मादयस्व ॥९॥
 स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यक्षं यक्षमभिवृधे गृणीतः ।
 प्राप्नी अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी अतञ्जातरय सत्ये ॥१०॥

४ महान् और यजमानोंके प्रिय अग्नि, यावापृथिवीके बीच, महिमावान् अपने स्थान पर, बैठे हैं। आक्रमण-शीला, सपत्नीभूता, जरा-रहिता, अहिंसिता और क्षीरप्रसविनी यावापृथिवी अत्यन्त गमन-शील अग्निकी गार्थ हैं।

५ अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा काम महान् है। तुमने यज्ञ द्वारा यावापृथिवीको विस्तृत किया है। तुम वृत्त हो। अमोघवर्षी अग्नि, उत्पन्न होनेके साथ ही तुम यजमानके नेता बनो।

६ श्रुतिमान् अग्नि, प्रशस्त केशवान्, रज्जुयुक्त और घृतसावी रोहित नामक दोनों धंकोंको यज्ञके सम्मुख योजित करो। अबन्तर तुम सारे देवोंको बुलाओ। सर्वभूतज्ञ, तुम उन्हें सुन्दर यज्ञ-युक्त करो।

७ अग्नि, जिस समय तुम वनमें जलका शोषण करते हो, उस समय सूर्यसे भी अधिक तुम्हारी दीप्ति होती है। तुम मकी भाँति प्रकाशमान पुरातन वषाके पीछे शोभित होते हो। स्तोता लोग स्तुतियोग्य होता अग्निकी स्तुति करते हैं।

८ विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें जो देवगण दृष्ट हैं, आकाशकी दीप्तिमें जो सब देवता हैं, 'उम' संज्ञक जो यजनीय पित्र-लोक मकी भाँति आदृत होकर आगमन करते हैं, रथी अग्निके जो सब अश्व हैं—

९ अग्नि, उक्त सब देवोंके साथ एक रथ अथवा नाना रथोंपर चढ़कर हमारे सामने आओ क्योंकि तुम्हारे अश्वगण समर्थ हैं। ३३ देवोंको, उनकी स्त्रियाँके साथ, अन्नके लिये, ले आओ और सोम द्वारा दृष्ट करो।

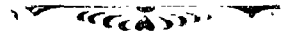
१० विशाल यावापृथिवी, पत्न्येक यज्ञमें, समृद्धिके लिये, जिन अग्निकी प्रशंसा करती हैं, वे ही देवोंके होता,। सुकृपा, जलवती और सत्यस्वरूपा यावापृथिवी, यज्ञकी तरह, सत्यसे उत्पन्न होता अग्निके अङ्गकूल हैं।

इलामग्रे पुरुवंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साधः ।
स्यान्नः सुनुस्तनयां विजाधाम्ने सा ते सुमतिर्भूस्वस्मे ॥११॥



११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुवाली भूमि सदा दो । हमारे वंशका विस्तारक और सशक्तिजनयिता एक पुत्र दो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

अष्टम अध्याय समाप्त



द्वितीय अष्टक समाप्त



“ऋग्वेद-संहिता”

(हिन्दी-टीका-सहित)

तृतीय अष्टक उप रहा है

द्वितीय अष्टक उप गया

प्रथम अष्टकका मूल्य

अन्धप्रज्ञा सरस्वती हिन्दी

प्रत्येक

रुपये, आठ आने

और

हिन्दु मानिकी सेवा

विशाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

लाला लाल बाइपासी रोड

वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

“महा”-कायालय, कल्याणक, सुन्दरानगर, भागलपुर

हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'गंगा' इसलिये है कि,

- १—संसारके जितने बड़े-बड़े विद्वान् "गंगा"में लिखते हैं, उतने हिन्दीकी किसी भी पत्रिकामें नहीं,
- २—"गंगा"की तैसी सजावट और कम्पोजीशन होता है, वैसा हिन्दीकी किसी भी पत्रिकाका नहीं,
- ३—हिन्दूधर्मके मूल—हिन्दुसभ्यता, प्राचीनतम इतिहास, संस्कृति, संस्कृत-साहित्य और हिन्दूधर्म—पर "गंगा"में जितने लेख निकलते हैं, उतने किसी भी पत्रिकामें नहीं,
- ४—विशेषाधिकृत विद्वानोंने "गंगा" और उसके अदभुत "वेदाङ्क"की जितनी प्रशंसा की है, उतनी हिन्दीकी किसी भी पत्र-पत्रिका और पुस्तकका नहीं।

कुछ प्रशंसाएँ पढ़िये—

१—देशपूज्य और विद्वान्-रत्न बाबु राजेन्द्रप्रसाद—“गङ्गाके लेख उच्च कोटिके होते हैं। इसमें बहुत गहन और रोचक विषयोंपर लेख छपा करते हैं। इसके विशेषाङ्क और भी मान्यके होते हैं। प्रामाण्यता होती है कि, विद्वानोंकी ऐसी सर्वोत्कृष्ट पत्रिका इतनी सफलता प्राप्त कर रही है।”

२—सर जार्ज एच. ग्रियर्सन (एंग्लो इण्डियन)—“गङ्गाका 'वेदाङ्क' प्रत्यक्ष रूपसे एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।”

३—डा० सी० बी० पो-एच० डी० (नारयण)—“गङ्गामें बहुत रुचिकर और सुपाठ्य प्रबन्ध रहते हैं।”

४—प्रो० रिचर्ड एम० ए० (लण्डन)—“गङ्गा द्वारा प्राचीन भारतवर्षके साहित्य, इतिहास और पुरातत्वकी प्रगतिकी आगे बढ़ाया जा रहा है।”

५—डा० बर्ट्रेट एम० ए०, डी० लि० (ब्रिटिश म्युजियम, लण्डन)—“वेदाङ्कका सम्पादन श्रेष्ठ योग्यतासे हुआ है।”

६—डा० जोसेफ स्टैन पी-एच० डा० (नैकोप्लोपेकिया)—“वेदाङ्कके सम्पादनकी प्रशंसा संस्कृतिके समर्थकोंकी तब ही आसन्न होगी।”

७—“सर्वोच्च दर्जके लेखक डा० अर्पिनाजचन्द्र दास एम० ए०, पी-एच० डी० (कलकत्ता)—“वेदाङ्कके प्रकाशनका कार्य समस्त भारतवर्षमें अपने ढङ्गका एक ही है। संदेह है कि, वेदाङ्कका प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा है।”

८—श्रीयुक्त नागयण रामचन्द्र पावरी (पूना)—“सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें 'वेदाङ्क'की समस्त सम्पत्तियाँ सही ही स्थान पर हैं। इसका सर्वोत्तम साहित्य है।”

९—भारत सरकारके “पुरातत्त्व-विभाग”के अन्तर्गत पी० डी० राजेन्द्र शास्त्री एम० ए०, एम० ए०, पी० एच० डी० (मैसूरि)—“वेदाङ्कमें वैदिक साहित्यके लेखकों की अनुसन्धानकी योग्यता है।”

१०—परिभाषाके इतिहास-संशोधकप्रो० डा० विश्वेश्वर मिश्र बाहमपुर—“वेदाङ्ककी प्रशंसा विशेषाङ्क आज तक किसी साहित्यिक पत्रिकामें नहीं प्रकाशित किया। 'वेदाङ्क'के सम्पादकप्रो० विचार प्रदीप महर्षि स्वाध्यायके निष्कर्ष हैं।”

११—राजा राजेन्द्रप्रसाद (बनारस)—“गङ्गा की प्रशंसा-पत्रिका एक है।”

“वेदाङ्क”का मूल्य रु० १० है; मात्र रु० ५ का वार्षिक मूल्य देकर जो

“गङ्गा”के प्रकाशनमें उनकी “वेदाङ्क” सुवन मिलेगा।

“गङ्गा”के प्रकाशकों “सर्वोच्च-विभाग”का पूरेके अन्तर्गत अत्यन्त उत्कृष्ट है।

मैसूर, राजा, सुन्दरानगर, भागलपुर

गङ्गा और प्रकाशक, मद्रास जेम्ससायण, दृष्टान्त, दृष्टान्तगण, भागलपुर।

सांप्रतिकानां केषां चिज्जनानां मनोवृत्त्यनुगुणा न भवतीति चेत् या तथा विधा कैश्चिन्निर्मिता भवेत्सापीतरेषां मनोवृत्त्यनुगुणा नैव भवेत् ।

किं च जैमिनिना किमियं द्वादशाध्यायी भवत्सदृशानां दुःखदित्सया विरचिता । नैव । किं तु सुखदित्सयैव विरचिता । तच्च सुखमहिकं पारलौकिकं वेत्यन्यदेतत् ।

न वयं जैमिन्युषिणा जनानां दुःखदित्सयेयं द्वादशाध्यायी प्रणीतति ब्रूमः । किं तर्हि सुखदित्सयैव । केवलं संप्रति तस्याः सकाशाद्दुःखमिदानींतनानां भवतीति । तर्हि सांप्रतिका जना एव तत्र कारणं न जैमिनिरिति भवद्वचसैव सिद्धं भवति ।

किं चानवया प्रेक्षावतां लोकानां निरूढा पद्धतिर्न्याय इत्युच्यते । तां च तथाविधां निरूढां पद्धतिं समालोच्य ततस्तेषां सुखप्राप्तिं दुःखहानिं च संवक्ष्य मन्दाधियामपि तादृशसुखप्राप्तये दुःखहानाय च प्रवृत्ताः सूत्रकारास्तादृशपूर्व-पद्धतिमेव सालभ्येन ज्ञापनाय सूत्ररूपेण संजग्रहुः । त एव च न्याया इत्युच्यन्ते । न तु न्याया नामापूर्वाः सूत्रकृता प्रतिपादिताः । तदुक्तम्—

नैव सूत्रकृता न्यायाः स्वकपोलप्रकल्पिताः ।

अनुग्रहाय मन्दानां सिद्धा एव प्रदर्शिताः ॥ इति ।

किञ्च जैमिनिस्तत्रतत्र सिद्धान्तभूतेऽर्थे हेतुं प्रदर्शयन्नित्थं संसूचयति—न मयोक्त-मित्येतावता स्वीकर्तव्यमपि तु प्रदर्शितं हेतुं परिज्ञाय युक्तियुक्तं चेत्प्रतीयेत तर्हि स्वीकर्तव्यमिति ।

अपि च यश्च कस्यामपि पद्धती दोषत्वेनाभिमतोऽर्थस्तस्य दोषत्वं च न दुःखदातृत्वेन । यश्चापि तत्र गुणत्वेनाभिमतोऽर्थस्तस्य गुणत्वं च न सुखदातृत्वेन । किं तु सा पद्धतिर्वादस्वरूपस्य तत्त्वावबोधपर्यन्तं सामीचीन्येनावस्थितये समा-श्रियते । अतस्तत्रत्यां योऽर्थस्तत्त्वावबोधायापर्याप्तो भवति स दोषः । यश्च तत्पर्याप्तो भवति स गुणः । तथा च गुणस्य गुणत्वं दोषस्य दोषत्वं च न वस्तुस्वरूप-प्रयुक्तम् । यतो यो यत्र गुणो भवति स एवान्यत्र दोषो भवति । अतो नैमित्तिकं तत् । तदुक्तम्—

अग्राभावे कथं सूच्या संधीयेत पटद्वयम् ।

व्यथादाप्यपि सूच्यग्रं न दोषत्वेन गण्यते ॥ इति ।

तदेवं या हि वादे मीमांसापद्धतः परित्यागो यश्चापीतिहासपद्धतेरुररीकार-स्तदेतदुभयमपि न प्रमाणपद्धतिमारोहमर्हतीति तदनुसारणं निर्णीतोऽर्थो न धर्मात्मतामवगाहेदिति सुव्यक्तमेव तत्र निरतानां धार्मिकजनानामिति विभावयन्तु मुधियः । यच्चाप्यन्यैः कैश्चिदुक्तं ' वेदवाक्यार्थनिर्णयाय प्रवृत्तमिदं शास्त्रं न खलु स्मृत्याद्यर्थनिर्णयविषये समादरणीयम् ' इति । तदेतद्विचारमूलकम् । यतो निर्णय-

मिन्धु- वीरमित्रोदय- व्यवहारमयूख-हेमाद्रिप्रभृतिषु निबन्धेषु मनुयाज्ञवल्क्य-पराशरादिमहर्षिप्रणीतासु च स्मृतिषु मीमांसाशास्त्रोहिताज्ञैकविधान्यायाननु-संधायिव धर्मतत्त्वनिर्णयस्य प्रतिपादितत्वात् । नेतावद्वेव किं तु काव्यप्रकाशकार-मम्मटप्रभृतय आलंकारिका अपि मीमांसितवाक्यार्थानुसारणव तत्रतत्रालंकारा-चिरणेषु । समग्रहीषुश्च तदर्थं स्वग्रन्थे मीमांसाविषयघटितान् प्रस्तावानिति नावि-ज्ञातमिदं बहुविदाम् । कैयटदीक्षितादयोऽपि व्याकरण मीमांसानुरोधेनैव सूत्रार्थं वर्णयन्तः शब्दसाधुत्वं निश्चिन्वन्ति । मञ्जुपात्रव्याकरणभूषणसदृशानां ग्रन्थाना-मध्ययनमते मीमांसापासनया दुर्धटस्तेवेति मन्ये ।

यद्यपि यागादिधर्मः श्रुतिपूर्वकः दृश्यते तथापि श्रुतिष्वेवांक्त इति न मन्तव्यम् । मनुयाज्ञवल्क्यादिभिलोकव्यवहारार्थं स्मृतिष्वपि बहुधा धर्मस्य संगृहीतत्वात् । यं हि स्मार्ता धर्म इत्याचक्षते धर्मविदः । अत एवांक्तं याज्ञवल्क्येन—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ इति ।

किञ्च वेदवाक्यान्युद्दिश्य जमिनिनाऽस्य शास्त्रस्य प्रणीतत्वेऽपि 'घटायोन्मीलितं चक्षुः पटं नहि न पश्यति' इति न्यायेन स्मार्तादिवाक्यान्तरेष्वपि प्रवर्ततेवेदं मीमांसाशास्त्रम् । यतोऽन्योद्देशेन निर्मितस्याप्यन्योपकारकत्वं लोके दृश्यते । यथा नागरिकाणां ज्ञानपानादिव्यवहारसिद्ध्यर्थं कुल्या निर्मायाऽऽनीतमप्युदकं मार्गेऽन्तराऽन्तराऽनागरिकभ्यामपि क्षेत्रार्थं दीयते एव । अध्वर्गः पश्वादिभिश्चाप्युपभुज्यते । तदुक्तं महाभाष्यकाररनुदात्तजित इति सूत्रे भाष्ये— 'अन्यार्थमपि प्रकृतमन्यार्थं भवति । तद्यथा-शाल्यार्थं कुल्याः प्रणीयन्ते ताभ्यश्च पानीयं पीयत उपस्पृश्यते शाल्यश्च भाच्यन्ते' इति ।

अथ मन्यथास्तत्रतत्र वेदवाक्यान्येवादाहृतानि दृश्यन्त इति तादृशवाक्ये-ष्वेवेदं शास्त्रमुपयोज्यतां न वाक्यान्तरेष्वतिचेदुदुहं भ्रान्तोऽसि । नहि सुष्युपास्य इत्यादि लौकिकं प्रयोगमुदाहृत्य विवरीतमिर्कोयणचीन्यादि शास्त्रं तादृशलौकिके-ष्वन्योपयोज्यतां न 'सूर्यं मुषिरामिव' इत्यादौ वेदिके इति युक्तं कल्पयितुम् ।

अपि च नैव कर्मकाण्डीयश्रुतिवाक्यान्मुपादाय प्रदर्शिता गुणदोषा वाक्या-न्तराण्याश्रित्य गुणदोषत्वं परित्यजयुरिति मांप्रतम् । नह्यात्मार्थं संपादिता स्वाद्वी रसाला शिखरिणी वा परं नरं प्राप्य माधुर्यं परित्यजति । नहि वा द्विषदर्थं निर्मितं विषमयमोषधं मित्रमुपस्थायामृतं भवति । तस्माच्छ्रीमत्याऽनया मीमांस-या महत्याऽऽरभत्या ये वेदवाक्येषु गुणदोषा विवेचितास्ते केवलं वाक्यत्वनिब-न्धना एव न वेदिकत्वमूलका इत्येव कल्पना ज्यायसी । तच्च वाक्यत्वं श्रुतिवाक्ये-ष्विव स्मृत्यादिवाक्यान्तरेष्वप्यविशिष्टम् । तत्र कथमिवेयं मीमांसा श्रुताविव वाक्यान्तरेष्वपि अर्थनिर्धारणं कर्तुं न प्रवर्ततेति त्वमेव प्रशान्तेन मनसा विचार-